की

डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

छायावादोत्तर हिन्दी कविता का दार्शनिक और वैचारिक अनुशीलन

हेमन्त राज उपाध्याय

निर्देशन

डॉ० मोहन अवस्थी

पूर्व प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

प्रस्तुति

हेमन्त राज उपाध्याय

एम० ए० (हिन्दी)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सन्-2002

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय छायावादोत्तर हिन्दी कविता का दार्शनिक और वैचारिक अनुशीलन है। इस शोध प्रबन्ध की रचना का उद्‌देश्य छायावादोत्तर हिन्दी कविता पर प्राच्य और पाश्चात्य दार्शनिक चिन्तन के प्रभाव का विवेचन और मूल्याकन है। जिस प्रकार बीसवी शताब्दी के योरोपीय साहित्य मे दर्शन की झलक दिखाई पडती है। उसी प्रकार बीसवी शताब्दी के पूर्वाध (1936 और उसके बाद) के हिन्दी कविता और साहित्य मे विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओ की अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुत इस काल की कविता यह रेखाकित करती है कि साहित्य न केवल अपने युग के समाज का बल्कि अपने समसामयिक दार्शनिक अनुशीलन का भी जीवन्त दर्पण होता है। वस्तुत किसी भी युग का साहित्य अपने धर्म, विज्ञान, और समाज के साथ–साथ दार्शनिक अथवा तत्व मीमासा चिन्तन के घात प्रतिघात से प्रभावित होता है। अत इस आलोक मे यह सहज जिज्ञासा का विषय है कि हिन्दी साहित्य को किस प्रकार और किस सीमा तक इस युग के दार्शनिक अनुशीलन ने प्रभावित किया। ऐसा प्रतीत होता है। जिस प्रकार युगानुरूप समाज को नवीन कविता की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार समय परिवर्तन के साथ–साथ प्रत्येक साहित्य के मार्ग दर्शन हेतु दार्शनिक चिन्तन और तत्व विज्ञान की भी आवश्यकता होती है। यह मान्यता केवल हिन्दी साहित्य और कविता के सन्दर्भ में ही नही प्राय हर एक साहित्य के सम्बन्ध मे सार्थक है। योरोप के प्राय सभी अस्तित्ववादी दार्शनिक साहित्यकार थे। उन्होने अपने दार्शनिक चिन्तन को उपन्यासो, कहानियो और कविता के माध्यम से ही प्रस्तुत किया। यह परम्परा पश्चिम मे किर्केगार्ड के समय से ही प्रारम्भ हो गई थी। किर्केगार्ड ने 'एडिफाइग डिस्कर्सेस मे विभिन्न प्रकार के पात्रो के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन को अभिव्यक्त किया है। इसी प्रकार नीत्शे ने 'दि ज्वाय फुल विजडम' शीर्षक से रचित लम्बी कविता मे ईश्वर की मृत्यु का समाचार नाटकीय ढग से वर्णित किया है। इसके अतिरिक्त 'दि बर्थ आफ ट्रेजडी', 'ओडिपस', 'नौसिया', आदि साहित्यिक रचनाये है जिनमे साहित्य के माध्यम से दार्शनिक चिन्तन सैद्धान्तिक दर्शन की तुलना मे अधिक प्रभावोत्पादक रहा है। इसी प्रकार अधुनातन हिन्दी साहित्य मे सामाजिक और ऐतिहासिक परम्परा के बाद मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव रहा है। इसके पीछे फ्रायड, एडलर और जुग की विचार धारा का प्रभाव रहा है। जैनेन्द्र कुमार, और

इलाचन्द्र जोशी इस प्रकार के साहित्यकारो मे अग्रणी रहे है। शेखर एक जीवनी मे अज्ञेय ने मानव के सघर्षशील जीवन का अच्छा चित्रण किया है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र शेखर जीवन के बिखरे सूत्रो को समेट कर उसे एक सार्थकता प्रदान करना चाहता है।

अस्तित्ववादी दार्शनिको ने पुराने मूल्यो का खण्डन करके नवीन मूल्यो की रचना करने की स्वतन्त्रता प्रदान की। उन्होने मनुष्य के क्रान्तिकारी स्वभाव का समर्थन किया। वे अहम् का दमन करना उचित नही समझते है। मनुष्य की काम वासना को नैतिक मानदण्डो के द्वारा कुठित करने का प्रयास निरर्थक है क्योकि यह मनुष्य की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात है। छायावदोत्तर कविता मे इन वर्जनाओ को ध्वस्त करने के लिए क्रान्ति का आवाहन किया गया है।

इसी प्रकार मार्क्सवाद को आधुनिक युग के मानव धर्म के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। किन्तु कोरी विद्रोह भावना से व्यक्ति का विकास सभव नही है। कोरा विद्रोह अभावात्मक होता है। अत उसे भावात्मक रूप देने के लिए क्रान्ति मे सूक्ष्म सवेदनशीलता का गुण होना चाहिए। इस गुण की पहचान यह है कि व्यक्ति दुख की चरम अनुभूति करता है। उसमे यातना सहन करने की अपूर्व क्षमता होती है। पश्चिमी अस्तित्ववाद मनोविश्लेषण वाद और मार्क्सवाद की इन विचार धाराओ का प्रभाव प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता और उसके बाद की कविताओ पर उपलक्षित होता है। किन्तु हिन्दी के छायावाद और छायावादोत्तर हिन्दी कविता पर कोरा पश्चिमी दर्शन का प्रभाव ही नही है बल्कि भारतीय आध्यात्मवाद विशेष रूप से वेदान्त, शैव व शाक्त मत, योगी अरविन्द के विकास वाद और आध्यात्मिक चिन्तन के प्रभाव की झलक उपलक्षित होती है। इस प्रकार पाश्चात्य और प्राच्य दोनो ही प्रकार की दार्शनिक चिन्तन धाराओ के मिश्रित प्रभाव से छायावादोन्तर हिन्दी कविता एक सर्वथा मौलिक और नूतन कालेवर धारण करती है। इसके परिणाम स्वरूप इस कविता का सौष्ठव उसके छदबद्ध आकारिक स्वरूप के कारण नही बल्कि मनुष्य की सवेदनाओ, दुख, सुख, सत्रास, त्रसदी, कुठा, आदि से मुक्ति का आवाहन करने और मर्मस्पर्शी होने मे निहित है।

इस प्रकार यह शोध प्रबन्ध, दार्शनिक अनुशीलन के आलोक मे प्रस्तुत किया जा रहा है। इस शोध प्रबन्ध की रचना करने मे हिन्दी विभाग के अवकाश प्राप्त आचार्य डॉ० मोहन अवस्थी और डॉ० हरिशकर उपाध्याय उपाचार्य दर्शनशास्त्र विभाग से महती प्रेरणा और मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त

समय–सामय हिन्दी विभाग के डॉ० सत्य प्रकाश मिश्र, डॉ० मीरा दीक्षित, डॉ० कृपाशकर पाण्डेय से प्रेरणा और मार्ग दर्शन मिलता रहा। अत मै अपने इन गुरजनो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य वरिष्ठ शोध कर्ताओ, सतीश दूबे, डॉ० अरूण दूबे आदि एव सहयोगी मित्रो अनुराग अवस्थी, अमित, अशुमान और अभिजात अवस्थी, देवानन्द त्रिपाठी तथा अनुज, रोहित उपाध्याय, वेद प्रकाश उपाध्याय, ज्ञान प्रकाश उपध्याय, पुत्री शिवागी तथा पुत्र भावेश से विभिन्न प्रकार का सहयोग प्राप्त हुआ इन सभी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, और डॉ० जटाशकर त्रिपाठी, उपाचार्य, दर्शन शास्त्र विभाग, के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्हो ने समय–समय पर मेरा मार्ग दर्शन किया। इसके साथ ही जय दुर्गे मॉ कम्प्यूटर प्वाइट, मनमोहन पार्क, कटरा, इलाहाबाद के सन्तोष दास, रमेश यादव व चन्द्रभान सिह के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्हो ने तत्परता से मेरे शोध प्रबन्ध का मुद्रण कार्य सम्पन्न किया। प्रस्तुत शोध प्रबध के रचना मे जिन प्राच्य एव पाश्चात्य विद्वानो की कृतियो का सहारा किया गया है मै उन सब के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। इसके अतिरिक्त मै अपने पूज्य पिता श्री अजनी कुमार उपाध्याय और पूज्यनीया माता श्रीमती सुशीला देवी के आर्शीवाद और प्ररेणा से ही यह ग्रन्थ लिखने मे सफल हुआ हूँ। इसके अतिरिक्त मै अपनी धर्म पत्नी श्रीमती मीनम उपाध्याय के प्रति आभार प्रकट करता हूँ क्योकि उन्होने ने इस शोध प्रबन्ध के लेखन मे अपना आविस्मरणीय सहयोग और सेवा प्रदान की है।

सधन्यवाद ।

कार्तिक पूर्णिमा सवत् 2059
इलाहाबाद

हेमन्तराज उपाध्याय
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

विषय सूची

तृतीय अध्याय–प्रयोगवाद 128–172

चतुर्थ अध्याय –नयी कविता 173–211

प्रथम–अध्याय

छायावाद एवं उत्तर छायावाद

छायावाद एवं उत्तर छायावाद

(अ) छायावाद का स्वरूप एवं विशेषताएँ

छायावाद परोक्ष जीवन की नही प्रत्यक्ष जीवन की ही अनुभूति है। वह कल्पना द्वारा उत्पादित जीवन चित्रो की सरस काव्यधारा है और सरस काव्य प्रत्यक्ष ससार से मुह मोडकर नही लिखा जा सकता है। वह लाक्षणिक शैली मात्र भी नही छायावादी कवियो ने सूक्ष्म सकेतात्मक प्रतीक योजना मे निबद्ध अभिव्यजना की विभिन्न भगिमाओ को सवेदना के सम्पुट मे प्रस्तुत किया है। उनका स्वर मानवतावादी है, वे मुक्ति चाहते है। एक ओर कविता की रूढियो से दूसरी ओर सामाजिक और राष्ट्रीय पराधीनता के बन्धनो से।

छायावाद का विकास कैसे हुआ, क्या परिस्थितियॉ थी, क्या कारण थे, यहा पर इसकी विवेचना आवश्यक हो जाती है। परम्परागत काव्य मे व्यक्ति या कवि की वैयक्तिक अनुभूतियो को स्थान नही मिलता था, जो उनके मन मे सम्पूर्ण परम्परागत मान्यताओ, धाराणाओ, विचारो आदि से सर्वथा मुक्त और निर्लिप्त रह जीवन और जगत के विभिन्न रूपो को देख उदय हुआ करती है। इन रूपो को देख कभी उनका मन हर्षित तो कभी विषादग्रस्त हो उठता। यद्यपि उसकी यह मनस्थिति समकालीन परिवेश और परिस्थितियो से प्रभावित होती रहती है, परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से ही। उसका उन्मुक्त मन अपनी वैयक्तिक सुख–दुखात्मक अनुभूतियो को अभिव्यक्त करने के लिए लालाइत बना रहता है। निज परिवेश मे भोगी गई विवशाताऍ उसके मन मे सम्पूर्ण परम्परा के प्रति आक्रोश और विद्रोह की भावना उत्पन्न कर देती है। उसे अपनी अभिव्यक्ति पर परम्पराओ का अकुश सहन नही होता और यह भावना उन्ही लोगो मे अधिक बलवती होती है जो अमित मेधावी, स्वतन्त्र विचारक और स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाले होते है ऐसे व्यक्ति जब साहित्य सृजन के क्षेत्र मे प्रवेश करते है तब उनकी रचना सर्वथा एक भिन्न रूप धारण कर लेती है। ऐसे व्यक्तियो ने जब अग्रेजी साहित्य मे प्रवेश किया था तो उनकी रचनाओ को रोमाटिक कहा गया और ऐसे ही व्यक्तियो ने जब हिन्दी साहित्य मे प्रवेश किया तो उन्हे छायावादी कहा गया।

वस्तुत छायावाद हिन्दी साहित्य की अन्तर्मुखी धारा रही है। इसमे प्रधानत बाह्य जगत की अपेक्षा अन्तर्जगत (कवि का भाव लोक), बौद्धिकता की अपेक्षा भावात्मकता, जीवन के यथार्थ की अपेक्षा मन लोक की कल्पना, नग्न सत्य की अपेक्षा कल्पना वेष्टित सौन्दर्य, सघर्ष की अपेक्षा प्रेम और परम्परा की अपेक्षा नूतनता के प्रति अधिक मोह रहा है। द्विवेदी युगीन काव्याभिव्यक्ति मे मानव की कोमल भावनाओ, मनोरम कल्पनाओ और वैयक्तिक सुख–दुखात्मक अभिव्यक्ति पर अकुश लगा दिया गया था और वह काव्य शिल्प की दृष्टि से परम्परा विरूद्ध सा दिखाई पडने वाला होते हुए भी घोर परम्परावादी था। छायावादी काव्य मे हमे इसी अकुश और परम्परा बद्धता के प्रति विद्रोह की भावना मिली। परन्तु यह विद्रोह की भावना क्यो उत्पन्न हुई इसका रहस्य उस युग की परिस्थितियो मे छिपा हुआ था।

यद्यपि कि हिन्दी का छायावादी काव्य अग्रेजी के रोमाटिक काव्य से प्रभावित था, परन्तु प्रश्न यह है कि अग्रेजी साहित्य मे स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा, हिन्दी मे छायावादी काव्यधारा के उदय से लगभग 70–80 वर्ष पूर्व समाप्त हो चुकी थी तो हिन्दी के नये छायावादी कवियो ने अपनी समकालीन अग्रेजी कविता की उपेक्षा कर उस 70–80 वर्ष पूर्व मृत हो गई काव्य धारा का अनुगमन क्यो किया? मूलत कोई भी साहित्यिक आन्दोलन अपनी समकालीन परिस्थितियो के कारण ही जन्म लेता है। जिन कारणो ने अग्रेजी रोमाटिक काव्य को जन्म दिया था वही कारण भारत मे भी सन् 1920 के आस–पास उत्पन्न हो चुके थे और उन्ही कारणो ने यहा छायावाद को जन्म दिया था। किसी भी साहित्य धारा को समझने के लिए उसके युग का अध्ययन अनिवार्य होता है। युग की विषमताये और आकाक्षाए साहित्यकार के माध्यम से उसके काव्य को स्वरूप तथा आधार प्रदान करती है। साहित्यकार ही नही चिन्तक और विचारक भी अपने युग की सीमाओ के भीतर ही कार्यशील होते है, क्योकि उनमे युग की चेतना ही पुजीभूत और साकार हो उठती है। छायावाद युग की काव्यधारा को समझने के लिए उस युग के जीवन को भी समझना होगा और उन तत्वो और मूल्यो के स्रोत तथा स्वरूप पर भी प्रकाश डालना होगा जो इस काव्यधारा के आदर्श बने। कुछ तत्व और मूल्य तो हमे उस युग मे ही प्राप्त होते है, जैसे–स्वाधीनता की भावना राष्ट्र प्रेम, अहिसा आदि और कुछ मूल्यो का शोध करने के लिए हमे अतीत की ओर देखना होगा।

इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति के जन्म के उपरान्त एक उग्र सामाजिक उथल–पुथल मच गई थी। समाज मे धन का प्रभुत्व बढ गया था। धन के सम्मुख ज्ञान अथवा कला को कोई सम्मान नही दिया जाता था। कवि और कलाकार समाज के उपेक्षित से प्राणी बन गये थे। धनाधिकारी अपने प्रभुत्व को अक्षुण बनाये रखने के लिए नीति, सदाचार, परम्परा पालन, आदि पर बल दे रहे थे, क्योकि समाज द्वारा इनका पालन करते रहने पर ही उन्हे अकूत धनार्जन, अबाध व्यापार और जन शोषण का अवसर मिल सकता था। धर्म और राज सत्ता पर भी इसी वर्ग का प्रभुत्व था। इन्ही अर्थ प्रधान परिस्थितियो ने वहा के समाज के उस युवक वर्ग को विद्रोही बना दिया था, जिन्हे ये स्वार्थ प्रेरित और रूढ परम्पराओ के बन्धन स्वीकार नही थे। यह युवक वर्ग मेधावी, स्वतन्त्रचेता, और समाज मे सम्मान पाने का महत्वाकाक्षी था। इसे यह सह्य नही था कि व्यक्ति की स्वाभाविक वैयक्तिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति पर किसी भी प्रकार का अकुश लगाया जाये। यह ऐसे समाज के विरूद्ध विद्रोह करना चाहता था, परन्तु सामाजिक उपेक्षा और परिस्थति जन्य विवशताओ ने उसके इस विद्रोह को बर्हिमुखी न बना अनर्मुखी बना दिया और वह अपनी वैयक्तिक सुखदुखात्मक अनुभूतियो को नई भाषा और नये काव्य रूप के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगा। परम्परागत साहित्य और समाज के ठेकेदारो ने उसका विरोध किया उसे अनैतिक और सस्कृति सभ्यता का द्रोही घोषित किया।

इग्लैण्ड का यह युवक वर्ग समाज के मध्य वर्ग का अश था और इसीलिए ऐकाकी भी था। उसमे वह सामूहिकता की शक्ति न आ पाई जो शोषित और निम्न वर्ग की विशेषता होती है। इसलिए इस मध्य वर्ग का यह विद्रोह सामूहिक जनचेतना का रूप न धारण कर सका। क्योकि इसमे सामूहिक स्वतन्त्रता की अपेक्षा वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भावना ही प्रमुख थी। इसी कारण उसका यह विद्रोह क्षणिक जीवन बिताकर ही समाप्त हो गया, परन्तु काव्य क्षेत्र मे एक नूतन कला का समावेश कर गया। जिसने काव्य को एक अभिनव कान्ति, दीप्ति और सौन्दर्य से मण्डित कर दिया था।

हिन्दी छायावादी काव्य के जन्म विकास और पतन की कहानी लगभग यही रही है। (लेकिन आचार्य शुक्ल ने आगे चलकर छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में भी फर्क किया है)।

व्यापक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि छायावाद युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। सदियो की दासता के कारण भारतीय जनता आत्म केन्द्रित होती हुई रूढिग्रस्त हो गई थी। भारत मे अग्रेजी साम्राज्य की स्थापना ने देश मे एक विराट तूफान पैदा कर दिया। पाश्चात्य शिक्षा और अग्रेजी साहित्य के प्रभाव स्वरूप देश के बुद्धजीवियो के सामने एक क्षितिज का उद्घाटन हुआ। हम पाश्चात्य साहित्य और जीवन मूल्यो के जनने के लिए उत्सुक हो उठे थे। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध मे अग्रेजी के रोमेटिक कवि 'शेली' 'कीट्स' आदि की रचनाये बहुत लोकप्रिय थी। अग्रेजी साहित्य उनसे बहुत प्रभावित था। श्रीधर पाठक इस प्रभाव को अपनी रचनाओ मे उतार चुके थे। उधर बीसवी सदी के आरम्भ मे अग्रेजी के रहस्यवादी कवियो से प्रभावित हो रवीन्द्र नाथ ठाकुर 'गीताजलि' की रचना कर रहे थे। शेली, कीट्स आदि रोमाटिक तथा ब्रउनिग आदि रहस्यवादी कवियो का यह सम्मिलित प्रभाव उसमे भारतीय औपनिषदिक चिन्तन के समावेश ने हिन्दी मे एक नई काव्यधारा को जन्म दिया था जो छायावाद कहलाई। हिन्दी मे इसका आरम्भिक रूप श्रीधर पाठक की रचनाओ मे अपनी झलक दिखा गया था। बीच मे कुछ वर्षो का व्यवधान पड गया। कुछ वर्ष उपरान्त भारत मे भी वही परिस्थितिया उत्पन्न हो गई जिन्होने अग्रेजी रोमेटिक काव्य को जन्म दिया।

प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के दौरान भारत मे युद्ध सामग्री के उत्पादन के लिए नए कल कारखानापे की तेजी से स्थापना हुई। इनमे बडे–बडे भारतीय पूजीपतियो ने धन लगाया। युद्ध काल मे जमीदारो और ठेकेदारो ने सरकार के लिए सैनिक और रसद जुटाकर खूब पैसा कमाया। अग्रेजो ने भारत को यह आश्वासन दिया था कि यदि भारत इस युद्ध मे जर्मनी के विरूद्ध अग्रेज की सहायता करेगा तो विजयोपरान्त उसे आजाद कर दिया जायेगा, इस आश्वासन पर महात्मा गॉधी जैसे नेताओ ने अग्रेज की सहायता की। युद्ध के दौरान कुछ व्यक्तियो द्वारा अधिक धनोपार्जन के कारण समाज मे धन का महत्व बढा। कुछ लोग बहुत अमीर बन गये परन्तु साधारण जनता विशेष रूप से किसान अधिकाधिक निर्धन बनता चला गया, सरकार ने जन साधारण की दशा सुधारने का कोई प्रयास नही किया। जमीदार साहूकार, पुलिस आदि मिलकर जनता को लूटते रहे। अग्रेज के प्रभुत्व के कारण समाज मे धनी एव अग्रेजी पढे लिखे व्यक्तियो का सम्मान था हिन्दी व समस्त भारतीय भाषाओ की कोई पूछ नही थी। इस कारण समाज के इस चेतन वर्ग मे परम्परा और रूढ मान्यताओ के

प्रति एक क्षोभ और अवहेलना की भावना भर उठी थी और इसका प्रस्फुटन साहित्य के माध्यम से यत्र–तत्र होने भी लगा था।

सन् 1918 ई०मे अग्रेजो की विजय हुई और युद्ध समाप्त हो गया, परन्तु भारतीयो ने युद्धकाल के दौरान की गई अपनी सेवा और सहायता के प्रतिदान मे अग्रेजो से आजादी मागी तो विजयोन्माद मे उद्धत बना अग्रेज साफ मुकर गया, जब भारतीयो ने आदोलन किया तो जलियॉ वाला बाग हत्याकाण्ड और रौलेट एक्ट जैसे भयकर दमनकारी अत्याचारो का सामना करना पडा। यह देख महात्मा गॉधी ने खिलाफत आन्दोलन चलाया। हिन्दू और मुसलमानो ने कधे से कधा मिलाकर इसमे भाग लिया, अग्रेजो ने कठोर दमन के साथ–साथ कूटनीति का सहारा लेते हुए हिन्दुओ और मुसलमानो मे फूट डाल दिया और धार्मिक दगे करवा दिए। इन परिस्थितियो ने देश मे एक भयकर निराशा, क्षोभ, और किकर्तव्य विमूढता की सी स्थिति उत्पन्न कर दी। सत्ता का सम्बल पाकर ईसाई धर्म प्रचारक पाश्चात्य जीवन पद्धति की गरिमा और भारतीय सास्कृतिक निस्सारता का प्रचार करने लगे, राजनीतिक दासता के साथ–साथ इस सास्कृतिक आक्रमण ने यहा के चितको को और भी अधिक आन्दोलित कर दिया, इसका परिणाम भारतीय पुनर्जागरण का व्यापक आन्दोलन था। जिसके जन्मदाता थे राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गगाधर तिलक, महात्मा गॉधी आदि इसी विराट आन्दोलन के नेता थे। इन सब महापुरूषों ने देश की अतीत परम्परा से मूल्यवान तत्वो को खोजकर उन्हे नये जीवन के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। चाहे व्यक्तिगत रूप से कवियो की आस्था इनमे से किसी एक प्रचारक पर रही हो या न रही हो यह स्पष्ट है कि ये कवि जिस वातावरण मे सास ले रहे थे उसका निर्माण इन्हे महापुरूषो के अथक प्रयत्नो के फलस्वरूप हुआ था। इसलिए ज्ञात या अज्ञात भाव से छायावाद युग के अधिकाश कवि इन लोक पुरूषो के सिद्धान्तो से प्रभावित हुए।

चेतन, शिक्षित, देश प्रेमी, युवक वर्ग परिस्थिति की इस विषमता से त्रस्त था। उसे विषमता के इस शिकंजे से मुक्ति का कोई मार्ग दिखाई नही देता था। नवीन शिक्षा पद्धति अग्रेजी प्रभाव और अग्रेजी से प्रभावित बगला साहित्य के सम्पर्क ने व्यक्तिवादी भावना को जगाया, जिससे व्यक्ति का अहम् उद्दीप्त हो उठा। उनका मानसिक क्षोभ अपनी अभिव्यक्ति की राह ढूढ रहा था।

परिस्थितियो की विषमता ने उन्हे अन्तर्मुखी बना दिया। साहित्यिक नैतिकता उनकी अपनी क्षुब्ध व्यक्तिगत भावनाओ को अभिव्यक्त का अवसर नही प्रदान करती थी। अत वे काव्य के माध्यम से कल्पना द्वारा अपनी इन अपूर्ण महत्वाकाक्षाओ की पूर्ति करने लगे। इस अन्तर्मुखी प्रवृत्ति ने उनकी सवेदना पर वैयक्तिकता का गहरा रग चढा दिया। इसीलिए एक ओर तो इस युग के काव्य मे द्विवेदी युगीन नैतिकता और स्थूलता की प्रतिक्रिया दिखाई देती है और दूसरी ओर विदेशी दासता के प्रति विद्रोह का स्वर सुनाई देता है। राष्ट्रीय सास्कृतिक धारा के कवियो ने विदेशी शासन का विरोध किया और जनता मे आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की। यह विद्रोह छायावादी कवियो मे भी व्यापक रूप से दिखाई देता है। उन्होने विषय, भाव, भाषा, छद आदि सभी क्षेत्रो मे नये मूल्यो की प्रतिष्ठा का प्रयास किया। छायावादी कवियो ने परम्परागत छन्दो का बन्धन अस्वीकार कर दिया। छन्द मे न तो वर्णो का बन्धन रहा न मात्राओ का। निराला ने तो छन्द को पूर्ण मुक्त ही कर दिया। अग्रेजी के प्रभाव से अनेक अलकार और प्रतीक अपनाये गये। मनुष्येतर पदार्थो मे मानवीय भावनाये दिखाकर उनका मानवीकरण किया गया समष्टि रूप से छायावाद के इस कला पक्ष के उत्कर्ष ने हिन्दी भाषा के शील सौन्दर्य और शक्ति को प्रकर्षित करने मे अभूतपूर्व योग दिया।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि छायावाद की शुरूआत कब से हुई और इसकी उपलब्धिया और विशेषताये कौन–कौन सी हैं?

छायावाद की शुरूआत 1918 ई० के आस–पास मानी जाती है। 1920 तक छायावाद नाम का प्रचलन हो गया था। मुकुट धर पाण्डेय ने श्री शारदा के लगातार चार अको मे छायावाद शीर्षक से एक लेख माला लिखी थी। जून 1921 ई० मे सरस्वती में 'हिन्दी मे छायावाद' शीर्षक से ही सुशील कुमार का एक व्यग्यात्मक निबध प्रकाशित हुआ। इन निबधो मे छायावाद का प्रयोग रहस्यवाद के अर्थ मे ही हुआ है। सुशील कुमार के इस व्यग्यात्मक निबध मे छायावादी कविता को टैगोर स्कूल की चित्रकला के समान अस्पष्ट कहा गया है।

छायावाद क्या है इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मुकुट धर पाण्डेय ने लिखा है कि, "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायेगे कि

यह शब्द "मिस्टिसिज्म" के लिए आया है।" इसी प्रकार सुशील कुमार वाले निबन्ध मे भी छायावादी कविता को कोरे कागद की भाति अस्पष्ट, निर्मल ब्रह्म की विषद छाया, वाणी की नीरवता, निस्तब्धता का उच्छ्वास एव अनन्त का विलास कहा गया है।

एक पत्र के जवाब मे श्री पाण्डेय ने सन् 1920 की श्री शारदा मे प्रकाशित अपने लेखो का हवाला देते हुए लिखा था कि, जो रचनाए मुझे अस्पष्ट लगी थी, उन्हे मैने छायावादी कह दिया था। मुझे क्या पता कि यह शब्द चल पडेगा। बाद मे उन्होने इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए मध्य प्रदेश सन्देश (13 जुलाई 1968) मे एक लेख भी लिखा प्रसगवश यहा उस लेख के कुछ अश को यहॉ उद्धृत करना उचित होगा।

झरना के साथ हिन्दी कविता मे एक अन्तरमुखी विचार सराणि, अन्तर्गूढ भावना और अभिनव शैली का सूत्रपात हुआ। 'मनोहर झरना कठिन गिरि कही विदारित करना' क्या यहा प्रसाद जी का अभिष्ट शब्दार्थ की अभिधानिक सीमा का उल्लघन नही करता? एक सकेत था, एक इगित था जिसे समझने के लिए कुछ सोचना पडता था, फिर भी उसका ठीक यही भाव है ऐसा नही कहा जा सकता।"[1]

"यह अभिनव शैली थी जो ग्रन्थो मे वर्गित ध्वन्यात्मक या व्यग्यात्मक शैलियो से कुछ भिन्न प्रकार की थी। वह एक कुहासे से आच्छन्न थी। उस पर आवरण पडा हुआ था। इस शैली का नामकरण नही हुआ था। न बागला मे हुआ था, न हिन्दी मे। बागला मे मेरा जहा तक ख्याल है, उसे मिस्टिक ही करते थे। आज से अर्ध शताब्दी पूर्व जब मैने इस विषय पर कुछ लिखना चाहा, तब मैने हिन्दी के कई विद्वानो से मिस्टिसिज्म का पर्यायवाची हिन्दी शब्द जानने के लिए पत्र व्यवहार किया। श्री द्विवेदी जी ने आध्यात्मवाद और वक्षी जी ने भक्तिवाद नाम सुझाया।"[2] "मेरे सामने नई शैली के गीत थे। इनके भावो मे एक धुधलापन था, मानो वे भाव नही, उनकी छाया हो। बस इसी बुनियाद पर मैने छायावाद नाम रखा।" बांगला मे मैने एक आलोचना पढी थी जिसमे नई शैली के लक्षणो मे छायावादिता भी गिनाई गई थी। पर बागला मे नई शैली को छायावाद नही कहा जाता था न कहा जाता है यह बात सही है कि मैने छायावाद का नामकरण किया।[3]

'श्री मुकुट धर पाण्डेय का ध्यान छायावाद का नामकरण करने मे इन चार तत्वो पर केन्द्रित था—धुधलापन, अन्तर्मुखी विचार सरणि, अभिधानिक सीमा का उल्लघन नई शैली।''[4]

आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी, नन्द दुलारे बाजपेयी एव राम चन्द्र शुक्ल छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय तो नही समझते पर उसे आध्यात्मिकता से जोडकर देखते जरूर है। महाबीर प्रसाद द्विवेदी छायावाद को अन्योक्ति पद्यति समझते थे। ''शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावो की छाया यदि कही अन्यत्र जाकर पडे तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।''

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद शब्द को उन्ही अर्थो मे लिया है। ''एक तो रहस्यवाद के अर्थ मे जहा उसका सम्बन्ध कथावस्तु से होता है। दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ मे। ''छायावाद का सामान्यत अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यजना करने वाली छाया के रूप मे अप्रस्तुत का कथन।'' लगता है अज्ञात के प्रति जिज्ञासा के भाव को देखकर ही शुक्ल जी ने यह परिभाषा दी जिससे छायावाद की अन्य विशेषताये उसकी परिसीमा मे नही आ पाती है।

आगे चलकर रहस्यवाद और छायावाद मे भेद किया जाने लगा। शुक्ल जी ने छायावाद और स्वच्छन्दता बाद मे भी भेद किया। पर कुछ लोग (Romantizism) भ्रमवश शुक्ल जी द्वारा गढे हुए स्वच्छन्दतावाद को भी छायावाद का पर्याय मानने लगे। यहा समझ लेना चाहिए कि छायावाद न तो रहस्यवाद है और न ही स्वच्छन्दता बाद बल्कि उसमे दोनो के कतिपय गुण धर्म शामिल है। जहा तक रहस्यवाद छायावाद, और स्वच्छन्दतावाद शब्दों के शब्दार्थ और लोक प्रचलित भाव का सम्बन्ध है। निश्चय ही इन तीनो मे थोडा—थोडा अन्तर है। रहस्यवाद अज्ञात की जिज्ञासा है। तो छायावाद चित्रण की सूक्ष्मता और स्वच्छन्दतावाद प्राचीन रूढियो से मुक्ति की आकाक्षा। शुक्ल जी ने छायावाद को नकली साबित करने के लिए जो भगीरथ प्रयत्न किया था, उसको विशेष महत्व न देकर यह जरूर स्वीकार कर लेना चाहिए कि बागला मे इस शैली की जो रचनायें होती थी उनका एक लक्षण छायावादिता भी था। अर्थात् बागला मे छायावादिता शब्द अवश्य प्रचलित था। छायावाद चाहे न रहा तो। इस प्रकार पाण्डेय जी तथा शुक्ल जी के कथन मे कोई अन्तर नही है।

डॉ० नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा है।[5] यह सही है कि छायावाद मे सूक्ष्मता है। लेकिन इस सूक्ष्मता की सीमा के कारण हम निराला और प्रसाद की उन कविताओ से वचित रह जाते है। अत यह परिभाषा भी अर्थात दोष से मुक्त नही है।

प्रसाद जी ने जो परिभाषा दी है, उसमे अभिव्यक्ति के निराले ढग तथा वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति पर बल है। छायावाद ने स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का माध्यम लिया।

छायावाद पुरानी रूढियो एव विदेशी पराधीनता से एक साथ मुक्ति का प्रयास है। यह राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। इस जागरण मे जिस तरह क्रमश विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गयी और इसके फलस्वरूप छायावाद सज्ञा का भी अर्थ विस्तार हो गया। वैसे प्रसाद, निराला, पत, महादेवी वर्मा की कविता के लिए छायावाद शब्द रूढ हो गया है। ऐसी परिस्थिति मे छायावाद शब्द का अर्थ चाहे जो हो, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह प्रसाद, निराला, पत, महादेवी की उन समस्त कविताओ का द्योतक है जो 1918 ई० से 1936 ई० तक लिखी गयी।

छायावाद की परिभाषा हम इन शब्दो मे दे सकते है—छायावाद वह अन्तर्मुखी काव्य है, जिसमे प्रकृति के माध्यम से वेदना धारित स्वानुभूति की अभिव्यक्ति कुछ अस्फुट संकेतों के साथ अभिधानिक अर्थों का उल्लघन कर निराले ढग पर की जाती है।

रामकृष्ण विवेकानन्द की आध्यात्मिकता, स्वामी दयानन्द सरस्वती का रूढि खण्डन एवं सास्कृतिक सदेश, रवीन्द्र नाथ की रहस्यमयता और विश्व मानवता, लोक मान्य तिलक की उग्रता तथा अग्रेजी शासन के प्रति अंसतोष और शासन द्वारा अभिव्यक्ति पर लगे कठोर नियन्त्रण आदि तत्वों ने विद्रोह और अर्न्तमुखता का विचित्र समन्वय उपस्थित किया। विद्रोह रूढियां तोडकर नूतन ससार निर्माण करने के रूप मे प्रकट हुआ। परिणाम स्वरूप कल्पना तथा भावुकता का आधिक्य हो गया। अर्न्तमुखता के कारण व्यक्तिगत दुख—सुख का चित्रण हुआ। रूसी क्रान्ति ने विश्व मानवता की भावना को प्रोत्साहित किया। अतैव काव्य में ये दोनो प्रभाव उभरे।

जैसा कि हम जानते है कि छायावादी काव्य और छायावादी काव्य शैली का हल्का सा आभास उन्नीसवी सदी के अन्त मे रचित श्रीधर पाठक की रचनाओ मे मिल चुका था, परन्तु उसका विकास नही हुआ था। उसके उपरान्त प्रसाद द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'इन्दु' के प्रकाशन (सन् 1909) के साथ इन नई काव्य प्रकृति का नया रूप सामने आया, परन्तु सन् 1920 तक उसके रूप मे कोई उल्लेखनीय निखार नही दिखाई पडा। सन् 1920 से इसका एक निश्चित स्वरूप उभरकर सामने आने लगा था। इसलिए आलोचको ने छायावाद का आरम्भ सन् 1920 से ही माना है। इस समय तक द्विवेदी युग समाप्त हो जाता है और छायावादी युग काव्य मे प्रधानता प्राप्त कर लेता है। मुकुट धर पाण्डेय, रामकृष्ण दास तथा प्रसाद की प्रारम्भिक कृतियो मे छायावादी प्रयोग काल रहा है। इसके प्रथम पाच वर्ष (1920–25) बहुत ही सघर्षपूर्ण और विवादग्रस्त रहे है। यह काव्य नई आशा, नया हर्ष और नई उत्तेजना लेकर उपस्थित हुआ था।

रूढियो के प्रति विद्रोह काव्य मे नई शैली का जन्मदाता सिद्ध हुआ। अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य के अध्ययन से इसे और गति मिली। विरोधियो द्वारा छायावादी काव्य को स्वप्न जीवी, पलायनवादी, निराशावादी अनैतिक, मानसिक विलास, पाश्चात्य काव्य का अनुयायी दुरुह, अस्पष्ट, परम्परा का विघातक आदि न जाने क्या–क्या घोषित किया गया, परन्तु छायावाद के जन्मदाता और पोषक साहित्यकार दब्बू या निर्बल नही थे। उन्हे अपने कृतित्व मे पूर्ण आस्था थी। उन्होने अपने विस्तृत गहन अध्ययन, अथक परिश्रम, और अपूर्व मेधा द्वारा इस नये काव्य रूप को जन्म दिया था। इसलिए प्रसाद, निराला, पत आदि ने तत्कालीन शीर्षस्थ साहित्यकारो और साहित्य के कतिपय तथा कथित ठेकेदारों (पत्रकारो) आदि के उस विरोध का तर्क और सृजन शक्ति द्वारा सामना किया। इसका परिणाम यह निकला कि छायावादी काव्य प्रवृत्ति अपने युग की सर्वप्रधान काव्य प्रवृत्ति बन गई।

सन् 1921 मे सुमित्रा नन्दन पत की उच्छवास रचना छपी थी, जिसमे लाक्षणिक प्रयोगो की धूम थी। इस रचनाा की शैली द्विवेदी कालीन कविताओं से एक दम पृथक है, द्विवेदी मण्डल के आलोचको के लिए नीरव गान सिसकते मानस, आदि प्रयोग प्रिटी नानसेंस मात्र थे। पत जी मे छायावादी शैली का निखरा हुआ उत्कृष्ट रूप मिलता है।

सन् 1925—30 तक छायावाद का प्रयोग काल समाप्त होकर उसमे स्थायित्व आने लगा। इस काल मे हिन्दी कविता मे सौन्दर्य और गाम्भीर्य का विकास हुआ। सन् 1927 मे प्रथम बार प्रकाशित प्रसाद के अमर काव्य 'ऑसू' मे छायावाद का अत्यन्त परिष्कृत और उन्नत रूप प्रस्फुटित हुआ। वास्तव मे प्रसाद मे छायावाद का कथ्य और पत जी मे कथन प्रकार अपने चरम उत्कर्ष पर है। उच्छ्वास से युगान्त (सन् 1936) तक छायावाद की विजय वैजयन्ती फहरती रही। इस बीच प्रसाद जी का 'ऑसू' हिन्दी काव्य प्रेमियो का हृदय हार बना, महादेवी के 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'साध्य गीत' के गीत गूजे, निराला ने अनामिका, 'परिमल' मे सौन्दर्य के चित्र खीचे और पत ने पल्लव तथा गुजन मे कोमल कान्त पदावली के दर्शन कराए।

प्रसाद, पत, निराला, महादेवी के अतिरिक्त राम कुमार वर्मा (काव्य सग्रह— रूप राशि', 'निशीथ', 'चित्र रेखा', 'आकाश गगा'। भगवती चरण वर्मा, मोहन लाल महतो वियोगी (काव्य सग्रह—'निर्माल्य', 'एकतारा', 'कल्पना') नरेन्द्र शर्मा, उदय शकर भट्ट, अचल, हरिकृष्ण प्रेमी, जानकी वल्लभ शास्त्री (सग्रह—'राधा', 'रूप अरूप', 'अवतिका', 'मेघगीत', चित्रधारा') केदार नाथ मिश्र प्रभात आदि की गणना भी छायावादी कवियो मे की जाती है।

शैली के क्षेत्र मे लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, नूतन छद प्रयोग, अलकारिकता, कोमल, सक्षम, तथा सुरीले शब्दो का चयन छायावाद की विशेषताये है। व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति प्रगीतात्मक होती है। अत छायावाद का बहुलाश प्रगीत शैली मे है। छदो मे पत ने अग्रेजी तथा हिन्दी लय को मिलाकर स्वच्छद छद का निर्माण किया और निराला ने लय को मुक्त कर मुक्त छद की रचना की। वैसे तो अधिकाश छायावादी काव्य मुक्तक ही रहा है। प्रसाद का 'बीती बिभावरी जागरी' जैसे गीत तथा 'ऑसू' के अनेक छद, निराला की 'जूही की कली', 'शेफाली', 'सध्या सुन्दरी', 'बादल राग', पत की 'नौका बिहार', 'चॉदनी', 'बादल', जैसी कविताए हिन्दी मुक्तक काव्य का उज्जवलतम मणिया है। इन्हे देखकर लोगो की यह धारणा बन गई थी कि छायावादी शैली केवल मुक्तक काव्य के लिए ही उपयुक्त है, उसमे प्रबध काव्यो की रचना नही हो सकती। परन्तु प्रसाद ने 'कामायनी' (1937) तथा निराला ने 'तुलसी दास' और पत ने लोकायतन जैसे प्रबध काव्यो का सृजन कर यह सिद्ध कर दिया था कि, इस शैली मे अत्यन्त उच्च कोटि के श्रेष्ठ प्रबध काव्य भी रचे जा सकते है।

लोकायतन यद्यपि बहुत बाद की सन् 1960 के आस–पास की रचना है, परन्तु छायावादी शैली मे ही है। वैसे छायावाद की समाप्ति 'कामायनी' के प्रकाशन के उपरान्त ही मान लेनी चाहिए। क्योकि उसके बाद छायावादी रचनाए समाप्त सी होने और प्रगतिवादी रचनाए अस्तित्व मे आने लगती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, छायावाद मे कुछ हल्की रहस्यमयता भी थी। लेकिन इस रहस्यमयता मे अस्पष्टता का महत्व है। वहा किसी तत्व चितन के आभास का भाव नही है। रहस्यवाद आत्मा परमात्मा के अद्वैत की भावात्मक अभिव्यक्ति है। जब यह अभिव्यक्ति भावात्मक नही होती, तो हम उसे सैद्धान्तिक रहस्यवाद कहते है। छायावाद मे जो व्यक्ति वादिता थी, वही व्यक्तिवादिता रहस्यवाद का मूल है, क्योकि व्यक्तित्व विसर्जन मे अद्वैत है रहस्यवाद नही। रहस्यवाद के लिए अद्वैत मे आस्था के साथ अह का श्रेय अनिवार्य है। तभी प्रेम निवेदन सभव हो सकेगा, तभी विरहाकुलता जागृत होगी और अभिलाषा की व्यजना होगी–

सजनि! मधुर निजत्व दे कैसे मिलूॅ अभिमानिनी मै।[6]

इस भावाकुलता या मिलनानन्द के चित्रणार्थ लौकिक उपादानो का सहारा लेना पडता है। इसलिए बाह्य रूप से देखने पर ये रचनाए भी लौकिक प्रतीत होती है। यह रहस्यवाद अधिकतर अध्ययन का फल है। महादेवी ने छायावाद का परिचय देते हुए कहा है कि, "उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदात के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के साकेतिक दाम्पत्य सूत्र मे बाधकर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य को पूर्ण अवलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सका तथा मष्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मष्तिष्क मय बना सका।"[7] छायावाद का यह स्वरूप वास्तव मे रहस्यवाद है। महादेवी की रचनाओ मे इस रहस्यवाद का रूप देखा जा सकता है। रहस्यवादी कवियो मे प्रसाद, महादेवी, तथा निराला प्रमुख है।

छायावाद एक प्रवाहमान काव्यधारा थी, एक ऐतिहासिक उत्थान के साथ उसका क्रमिक विकास तथा ह्रास हुआ। छायावाद के 18–20 वर्षों के इतिहास मे अनेक विशेषताये जो आरम्भ मे थी, वे कुछ दूर जाकर समाप्त हो गई और फिर अनेक नयी विशेषताएॅ जुड गयी।

छायावाद की मुख्य–मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है।

(क) आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति अर्थात् 'मैं' शैली

छायावादी कवि निर्वैयक्तिकता की ओट नही लेता। वह अपने मन की बाते सीधे–सीधे उत्तम पुरूष शैली मे पाठक तक पहुँचाकर आत्मीयता के आगोश मे उसे समेटना चाहता है। वह चाहता है कि पाठक और उसके बीच सवाद सीधा हो और कोई अन्य पुरूष बीच मे न आए। छायावाद मे ''मै'' शैली इसी कामना का परिणाम है। पहले के कवि अपनी ही अनुभूतियो को निजी बताने मे सकोच करते थे। मध्य युग के सत भक्त और रीतिवादी कवि प्राय निर्वैयक्तिक ढग से अपनी बाते कहते थे। सतो और भक्तो के विनय के पदो मे जो वैयक्तिक ढग दिखाई पडता है, वह केवल भगवान के प्रति निवेदन है। अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय मे वे प्राय मौन ही रहते थे और काव्य मे अपने प्रणय सम्बन्धो की चर्चा करने की बात तो उस समय सोची भी नही जा सकती थी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओ से कितना बधा हुआ था। राष्ट्रीय जागरण के दौर मे व्यक्ति स्वातन्त्र्य की जो लहर चली उसके कारण छायावादी कवियो ने इस सकोच को उतार फेका। चूकि छायावाद व्यक्तिवाद की कविता है, छायावादी कवि कविता मे 'मै' शैली की निजता और आत्मीयता के साथ उन भारतीय युवको का प्रतिनिधि बनकर उतरते है, जो अपने आपको सीधे–सीधे अभिव्यक्ति करने की सामाजिक स्वाधीनता चाहते है। प्रसाद ने स्पष्टत अपनी 'आत्मकथा' का स्पष्टीकरण ही लिख डाला और निराला ने सबकी ओर से स्वीकार किया कि, ''मैने 'मै' शैली' अपनाई।'' अपनी दुर्बलताए भी उसने साहस के साथ कही और जिन बातो को अब तक लोग समाज के भय से छिपाते थे उन्हे भी छायावादी कवि ने खोलकर रख दिया। यदि कहानी के पात्रो अथवा पौराणिक व्यक्तियो के माध्यम से वे अपनी बाते कह सकते तो अवश्य कहते क्योकि अभिव्यक्ति की यह नाटकीय प्रणाली आजमायी हुई थी। लेकिन उन्हे लगा कि अपनी बात निजी ढग से ही वे अच्छी तरह कह सकते है। उनकी वैयक्तिकता पुरानी निर्वैक्तिकता मे घुट सी रही थी। निर्वैक्तिकता मे उन्हे एकदम आत्म निषेध की आशका थी। इसलिए कविता मे उनकी वैयक्तिक अभिव्यक्ति कवि के लिए व्यक्ति की मुक्ति थी।

निराला की कविताओ मे आत्माभिव्यक्ति सबसे अधिक है। सरोज स्मृति' मे जब भी मौका मिलता है, कवि आत्म पराजय की दु खद दास्तान सुनाने लगता है—

> ''दु ख ही जीवन की कथा रही,
> क्या कहू आज जो नही कही।''[8]

अथवा

> ''धन्ये, मै पिता निरर्थक था
> कुछ भी तेरे हित न कर सका!
> जना तो अर्था गमो पाय
> पर रहा सदा सकुचित काय
> लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
> हारता रहा मै स्वार्थ समर।''[9]

पत ने 'उच्छ्वास' और 'ऑसू' की बालिका के प्रति सीधे शब्दो मे अपना प्रणय प्रकट किया। कवि की स्पष्टोक्ति है। ''बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।'' प्रसाद ने कविता मे अपनी आत्मकथा ही लिख दी। महादेवी की कविताओ मे भी पर्याप्त आत्माभिव्यक्ति है। महादेवी जी ने कही लिखा है कि आज का साहित्यकार अपनी प्रत्येक सास का इतिहास लिख लेना चाहता है। यही नही छायावाद पर विचार करते हुए उन्होने कहा है कि इस व्यक्ति प्रधान युग मे व्यक्तिगत सुख—दु ख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे, अत छायावाद युग काव्य स्वानुभूति प्रधान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास, विषाद् का सफल माध्यम बन सका।

व्यक्तिवाद ने छायावादी कवि मे एक ओर वैयक्तिक अभिव्यक्ति की आकाक्षा उत्पन्न की तो दूसरी ओर सम्पूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्ति निष्ठ बना दिया। छायावादी कवि ससार की सभी वस्तुओ को आत्मरजित करके देखने का अभ्यस्त हो गया। विश्व की व्यथा से स्वय व्यथित होने की जगह वह अपनी व्यथा से विश्व के व्यथित होने की कल्पना करने लगा। द्विवेदी युग का काव्य शुक्ल जी के शब्दो मे जहा 'इतिवृत्तात्मक' था वहा छायावादी काव्य रागात्मक हो उठा। इस प्रकार छायावादी कवियो ने चुने हुए तथ्यो को उपलब्ध बना करके अपने जीवन के अनेक सत्यो की अभिव्यजना की।

(ख) प्रकृति प्रेम

पुरानी समाज व्यवस्था मे एक घुटन थी। सयुक्त परिवार मे युवक अपनी पत्नी से प्रेमाभिव्यक्ति के लिए मौके की ताक मे रहता था। सयुक्त परिवार की भीड–भाड मे उसे लगता था कि "The world ıs to much wıth us" अत अपने आस–पास के अनापेक्षित ससार से मुक्त होने के लिए वह प्रकृति मे गया। प्रकृति चित्रण मे पहले के कवि जहा पेड–पौधो का नाम गिनाकर अथवा प्राकृतिक दृश्यो के स्थूल आकार का वर्णन करके सतुष्ट हो लेते थे वहा छायावादी कवि ने प्रकृति के अन्त स्पन्दन का सूक्ष्म अकन किया। प्रकृति मे आधुनिक युवक को खुला वातावरण मिला, प्रकृति के राज्य मे उसे पशु पक्षियो नदी, नालो, हवा, बादल, सबमे उन्मुक्त और निरकुश स्वच्छन्दता के दर्शन हुए। इसी स्वाधीनता की राह मे आधुनिक छायावादी कवि भी प्रकृति के क्षेत्र मे आया। उसे भी अपनी अनुभूतियो के निर्बाध अभिव्यक्ति के लिए जड सामूहिकता और सामाजिकता से उबरने की आवश्यकता थी।

प्रकृति मे प्रवेश करते ही आधुनिक युवक को अपने व्यक्तित्व के विकास की भूमि मिली। वह आत्म प्रसार के लिए इधर–उधर हाथ–पाव मारने लगा। आधुनिक शिक्षा मे उसे अपनी नई चिताओ का समाधान मिला। वह नये सिरे से सामाजिकता और राष्ट्रीयता पर भी सोचने लगा इससे यह बात प्रामाणित हुई कि वैयक्तिक स्वाधीनता से ही स्वस्थ सामाजिकता का विकास सभव है।

प्रकृति से छायावादी कवियो को एक नवीन जीवन दृष्टि मिली। कवियो ने प्रकृति के छिपे हुए इतने सौन्दर्य स्तरो की खोज की, वह आधुनिक मानव के भौतिक और मानसिक विकास का सूचक है। इस सौन्दर्य बोध का विकास प्रकृति और मानव के पारस्परिक सम्बन्धो का परिणाम है। इससे कवियो के सामने एक नया ससार अवलोकित हो गया। प्रथम रश्मि मे बाल–विहगिनी गीत गाना तो सीखती ही है, साथ ही प्रथम रश्मि के आलोक से उसका तिमिराच्छन्न जगत सहसा विभिन्न नाम रूपो मे बदल जाता है। जहा निराकार तम के अतिरिक्त कुछ भी न दिखाई देता था वहा सुन्दर सृष्टि दिखाई पडने लगी।

यथा –

"निराकार तम मानो सहासा ज्योति पुज मे हो साकार।
बदल गया द्रुत जगत जाल मे धरकर नाम रूप ना ना।"

सम्पर्क मे आते ही प्रकृति मनुष्य के लिए सहचरी, सखी, प्रेयसी, मा सब कुछ हो गयी। एकान्तवासी कवि पत के बाल ह्रदय के साथ तो प्रकृति सखी की तरह धुल मिल गयी। छाया से आत्मीयता जताते हुए पत कहते है–

"हॉ सखि आओ बाह खोल हम लगकर गले जुडा ले प्राण।" (पत)

महादेवी जी ने प्रकृति की विराटता मे मा का चित्र देखा–

"दुलरा देना बहला देना, यह तेरा शिशु जग है उदास।" (महादेवी वर्मा)

छायावादी कवियो ने पर्वत, मेघ और समुद्र से सम्बन्धित ऐसे दृश्यो का चित्रण किया जो सर्वथा नये थे। प्रकृति के प्रति छायावादी कवियो का मोह रूमानी था। पत तो यहा तक कहते है–

छोड द्रुमो की मृदु छाया तोड प्रकृति से भी माया।
बाले तेरे बाल जाल मे कैसे उलझा दूँ लोचन।" (पत)

(ग) नारी प्रेम और उसकी मुक्ति का स्वर

धीरे–धीरे प्रकृति के प्रति कवि की गहरी तन्मयता भग होती है। उन्हे लगता है कि प्रकृति चाहे जितनी सुन्दर और भाव प्रवण हो, किन्तु वह पूर्ण रूप से पुरुष के भावो को प्रतिध्वनित नही कर सकती या प्रतिध्वनित कर सकती है पर प्रत्युत्तर नही दे सकती। वे बडी विफलता के साथ अनुभव करते है–

"हाय किसके उर मे, उतारूँ अपने उर का भार?"

और यही प्रकृति की अपूर्णता प्रतीत हुई तथा उसके स्थान पर नारी का अभ्युदय हुआ। निराला के 'तुलसी दास' का मन जब रग पर रग छोडता हुआ निस्तरग आकाश मे उड रहा था तो वही उसे रत्नावली के दर्शन हुए। यही स्थिति प्रसाद के मनु की भी हुई। महा प्रलय समाप्त होने के बाद प्रकृति का रमणीय रूप सामने आया तो उसी दृश्य मे उनकी अलस चेतना की ऑखे भी खुल गयी और फिर तो–

"नव हो जगी अनादि वासना, मधुर प्रकृति मूख समान"

कविता मे नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण मे हुआ यह परिवर्तन नई शिक्षा द्वारा आयातित नये विचारो के कारण हुआ। शिक्षा के कारण लडकियो मे स्त्री स्वतन्त्रता का भाव पैदा हुआ। नई पीढी की देखा–देखी पुरानी पीढी की महिलाओ मे भी अनजाने ही नव जागरण के प्रति आकर्षण दिखाई पडा।

छायावादी कविता मे प्रेम को अपूर्व महत्व दिया गया है और प्रेम बिना नारी के सभव नही है। 'प्रेयसी' शीर्षक कविता मे निराला मिलन मे तादात्म्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति देते हुए कहते है–

> "मिली ज्योति छवि से तुम्हारी, ज्योति छवि मेरी
> नीलिमा ज्यो शून्य से मिलकर मै रह गई।"[10]

निराला ने कहा है कि, 'प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो।' तब नारी को भी अपने हृदय गत भावो की अभिव्यक्ति की छूट मिली। उसे सामाजिक प्रचीरो से मुक्ति का अहसास हुआ। वह खुले मन से प्यार करने की ओर पुरूष की ओर बढी तो पुरूष ने उसे और अधिक मान दिया, उसे नवीन कल्पनाओ और उपमाओ से मण्डित किया। पुरुष ने उसे जीवन के स्पदनो से भरकर वासना के ऊपर एक उदात्त ऊँचाई दे दी। छायावादी प्रेम इसी कारण अशरीरी या अतीन्द्रिय है।

> "तुम्हारे छूने मे था प्राण, सग मे पावन गगा स्नान।"

प्रसाद ने लाज भरे सौन्दर्य वाली परम्परागत नारी का मौन तोडना चाहा। नारी उन्हे आस्था एव श्रद्धा का पर्याय लगी।

> "नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पद तल मे।[11]

पत ने एक कदम आगे बढकर कहा–

> "तेरे बालों का अक्षय श्रृगार धरा है सिर पर मैने देख।"[12]

सामान्य नारी के सौन्दर्य का चित्रण तो सभी करते है लेकिन वह नारी यदि स्वय अपनी पुत्री हो तो कवि की परीक्षा हो जायेगी। स्वस्थ मन और समर्थ कवि निराला के लिए ही यह सभव हो सका कि उन्होने अपनी पुत्री 'सरोज' की स्मृति मे शोक गीत लिखते हुए एक स्थल पर उसके सौन्दर्य का भी स्मरण किया है। विवाह के शुभ कलश का जल पडने के बाद वह आमूल नवल रूप–

> "तू खुली एक उच्छ्वास सग विश्वास स्तब्ध बध अग–अग,
> नत नयनो से आलोक उतर कापा अधरो पर थर–थर–थर।[13]

इस प्रकार महादेवी के शब्दो में, 'सौन्दर्य की स्थूल जडता से मुक्ति मिलते ही नारी को प्रकृति के समान ही रहस्यमय शक्ति और सौन्दर्य प्राप्त हो गया। जिसने उसके मानसिक जगत से पिछली सकीर्णता धो डाली। सामती रूढियो से नारी को मुक्त करना, तिरस्कृत विधवा को इष्ट देव की मन्दिर की

पूजा सी पवित्र कहना, भोग्या नारी के सग मे 'पावन गगा स्नान' करना और देवी मा, सहचरि, प्राण कहकर पुकार उठना आदि बाते आधुनिक छायावादी कवि के नारी आदर्श का सूचक है।

(घ) राष्ट्रीयता की भावना

छायावाद के बारे मे प्राय कहा जाता है कि इनका सम्बन्ध तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन से कतई न था। आलोचको का आरोप है कि जिस समय देश स्वतन्त्रता सघर्ष की आग मे झुलस रहा था, छायावादी कवि अपने कल्पना लोक मे बैठकर हृत्तत्री के तार बजाया करते थे। वस्तुत ऐसा वही लोग कहते है जो साहित्य को समाज का अविकल अनुवाद समझते है। हमे यह तभी पता चल सकेगा कि छायावाद ने अपने युगीन परिदृश्य को स्वर देते हुए अभिव्यक्त किया है, जब हम उसे पूर्वाग्रह रहित दृष्टि से भली प्रकार से देखेगे।

वस्तुत हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के दो मोर्चे थे। एक प्राचीन सामान्तवादी मर्यादाओ के विरूद्ध एव दूसरी अग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध। हर गुलाम देश मे राष्ट्रीयता की भावना का उदय पुनुरूत्थान भावना से होता है। पुनरूत्थान भावना प्रसाद मे सबसे अधिक है। प्रसाद ने 'हिमालय के ऑगन मे उसे प्रथम किरणो का दे उपहार' या 'शेर सिह का शस्त्र समर्पण' आदि मे राष्ट्रीय सस्कृति और इतिहास को स्मरण कर तत्कालीन भारतीय युवको मे राष्ट्रीयता का सचार करना चाहा था।

भारत भूमि की प्रशसा मे प्रसाद का गया हुआ—

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहां पहुच अनजान छितिज को मिलता एक सहारा।"
देश प्रेम की भाव प्रवण व्यजना है।

इसी तरह प्रसाद जी का एक जागरण जी द्रष्टव्य है—

"हिमाद्रि तुङ्ग श्रृङ्ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वय प्रभा समुज्वला स्वतत्रता पुकारती।"[14]

निराला ने 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' या 'जागो फिर एक बार' मे सास्कृतिक परम्परा की दुहाई देकर आत्म गौरव के सुप्त भावो को जगाया। निराला का उदघोष है—

"शेरो की माद मे, आया आज स्यार,
जागो फिर एक बार।"[15]

और अपने देशवासियो को जगाने के लिए ही छायावादी कवि अतीत गौरव का स्मरण कराते हुए कहता है –

"हिमालय के ऑगन मे उसे प्रथम किरणो का दे उपहार।
उषा ने हॅस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।"

(ङ) असीम के प्रति जिज्ञासा

असीम के जिज्ञासा छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है और यही छायावाद रहस्यावाद से अभेद की स्थिति मे पहुॅच जाता है। लेकिन फिर भी दोनो मे फर्क यह है कि रहस्यवादी भावनाओ के बावजूद छायावाद की भावभूमि लौकिक जीवन से जुडी रहती है। यदि उसका रूप–विधान आध्यात्मिक है तो विषय वस्तु अवश्य ही सामाजिक है। ससीम और असीम सामाजिक सीमा और उससे मुक्ति के प्रतीक है। महादेवी कहती है–

"मै अनत पथ मे लिखती जो सस्मित सपनो की बाते।
उनको कभी न धो पाएगी अपने ऑसू से राते।'[16]

यदि असीम से मिलन की बात अविश्वसनीय भी हो तो उन ऑसुओ को कैसे झुठलाया जा सकता है जो सीमाओ मे बन्द रहने के कारण बहे है। असीम प्रेम का यह रहस्यवाद महादेवी के अतिरिक्त प्रसाद, निराला, एव पत मे भी मौजूद है। अज्ञात के प्रति कौतूहल पत के बाल–मन मे भी है।

"प्रथम रश्मि का आना रगणि, तूने कैसे पहचाना।"[17]

प्रसाद भी जीवन की गोधूलि मे कौतूहल से आने वाले अज्ञात के प्रति निवेदन करते है–

"लेचल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे–धीरे,
जिस निर्जन मे सागर लहरी अबर के कानो मे गहरी।
निश्छल प्रेम कथा कहती हो तज कोलाहल की अवनी रे।"[18]

(च) रूप, पद-विन्यास एवं मुक्त छंद

आचार्य शुक्ल के अनुसार 'छायावाद जिस आकाक्षा का परिणाम था, उसका लक्ष्य केवल अभिव्यजना की रोचक प्रणाली का विकास था।' भावो की समुचित अभिव्यजना एव चित्रात्मकता के लिए भाषा को समर्थ बनाने के प्रयत्न मे छायावादी कवियो को कभी-कभी नये शब्द भी गढने पडे। यहा भी छायावादी कवियो ने कम स्वच्छदता नही दिखाई। जो विचारो एव भावो की दुनिया मे रूढियो को तोडने वाले है, वे भाषा के क्षेत्र मे व्याकरण की रूढियो मे बधकर कैसे चल सकते है। फलत पत ने 'प्रियाहलाद' की जगह 'प्रिआ हलाद' और 'मरूदाकाश' की जगह मरूताकाश सधिया की । निराला ने समास रचना के क्षेत्र मे प्रमापूर्य, तमस्तूर्य आदि समास गढकर अपूर्व स्वतन्त्रता दिखाई।

छायावाद की मूल चिता है कविता की मुक्ति। कविता की मुक्ति भाव, भाषा, एव छद की ही मुक्ति है। छायावादी कवियो ने विचारो, भावो एव सामाजिक मर्यादाओ के साथ-साथ परम्परागत छदो के बधन भी ढीले कर दिए। पत ने लिखा है -

> "खुल गये छद के बध, प्रास के रजत पाश।
> अब गीत मुक्त और युगवाणी बहती अयास।।"[19]

मुक्तक छद छायावाद की प्रमुख उपलब्धि है। छायावादी कवियो ने कुछ मौलिक प्रयास करते हुए नये छद भी रचे।

छायावादी कविता मे भावावेश के कारण पद क्रम बिलकुल उलट-पलट गया है। उसके वाक्य-विन्यास की गुम्फन शीलता भावो की गुम्फनशीलता का परिणाम है। वाक्य मे पदो का क्रम विपर्ययय आवेग जनित भावो मे क्रम विपर्यय का परिणाम है यथा-

> "विजन वन वल्लरी पर, सोती थी सुहाग भरी,
> स्नेह स्वप्न-मग्न-अमल- कोमल तन तरूणी
> जूही की कली, दृग बद किए, शिथिल पत्रांक मे।"[20]

छायावादियो ने स्थूल प्रतीकों की जगह सूक्ष्म प्रतीको से अपनी कविता का श्रृगार किया। निराला 'भारत की विधवा' मे विधवा के लिए 'इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी' 'दीप शिखा सी शान्त भाव मे लीन' आदि सूक्ष्म उपमानो

का चयन करते है। इसी तरह अन्य कवियो ने भी सूक्ष्म उपमानो का सहारा लिया है।

छायावादी कवियो का स्वर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, और साहित्यिक बधनो, रूढियो एव पुरानी मान्यताओ से विद्रोह का था।

'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' मे रूढ परम्परा के ध्वस का भाव है। इसके अतिरिक्त कल्पना की अतिशयता, भावुकता, सास्कृतिक नव जागरण, एव आत्म पीडा के दर्शन मे भी छायावाद की आस्था है। यो तो छायावाद सज्ञा कविता के लिए ही प्रयुक्त होती है तथापि यह एक व्यापक जीवन दृष्टि थी। इसकी अभिव्यक्ति कविता के क्षेत्र मे ही सबसे अधिक हुई, परन्तु कहानी, उपन्यास, नाटक, यहा तक आलोचना भी इससे काफी प्रभावित हुई। जिस प्रकार बारहवी–तेरहवी सदी मे शुरू होने वाले मध्ययुगीन सास्कृतिक पुनुरूत्थान का चरमोत्कर्ष सोलहवी शदी के भक्ति काव्य मे हुआ उसी प्रकार उन्नीसवी सदी मे शुरू होने वाले आधुनिक सास्कृतिक जागरण का चरमोत्कर्ष बीसवी सदी के छायावादी काव्य तथा प्रेम चन्द्र के उपन्यासो मे हुआ और अपनी दुरूहता, व्यक्तिवादिता और अस्पष्टता के बावजूद भी छायावादी काव्य इतना सौन्दर्य वेष्ठित रहा है, कि उसे पढने मे आनन्द आता है, भले ही वह पूरी तरह से समझ मे न आये।

(छ) छायावाद का पतन, कारण एवं परिणाम :

कला पक्ष के इस चरम उत्कर्ष को देखकर अनायास ही यह प्रश्न सामने खडा होता है कि ऐसे चरम उत्कर्ष पूर्ण छायावादी काव्य के पतन का क्या कारण था? एव उसका क्या परिणाम हिन्दी साहित्य एव कविता पर पडा? जैसा कि हम जानते है कि छायावाद की मूल चेतना विद्रोह की चेतना रही थी। परन्तु यह विद्रोह जितना व्यक्तिगत भावनाओ के प्रकाशन तथा कलाक्षेत्र मे क्रियाशील रहा उतना ही सामाजिक क्षेत्र के लिए अकर्मण्य सा बना रहा। यद्यपि छायावादी कवियो ने अपनी अनेक कृतियो मे सामाजिक विद्रोह के स्वर भी बुलद किए परन्तु ऐसे प्रयास एकाकी और छिट–पुट बनकर ही रह गये। उनका एक समग्र, सशक्त, सन्तुलित रूप उभरकर सामने न आ सका। ये कवि अधिकतर व्यक्तिगत भावनाओ के प्रकाशन तथा कला परिमार्जन मे ही व्यस्त रहे इसलिए जनजीवन को पूरी तरह से अपनाकर न चल सके। इनकी जनजीवन

से यह विच्छिन्नता इनकी एक बहुत बडी कमजोरी रही। इस काव्य की एक दूसरी कमजोरी यह थी कि यह अतिशय बौद्धिक था। इस अतिशय बौद्धिकता ने इसे गम्भीर और प्रभविष्णु तो अवश्य बना दिया था, परन्तु कवियो के मानसिक कल्पना विलास ने उसमे एक ऐसी अस्पष्टता और दुरूहता उत्पन्न कर दी थी जो साधारण जन के लिए सहज सवेद्य न बन सकी। इसी कारण यह काव्य साधारण जन मे लोक प्रिय न हो सका।

इस काव्य की सबसे बडी कमजोरी यह थी कि यह समाज को एव जनता को कोई भी जीवन्त एव नवीन सन्देश देने मे असमर्थ रहा था। इतना ही नही, उत्तर कालीन छायावादी काव्य मे आध्यात्मिकता के प्रभाव के कारण रहस्यमयता और अस्पष्टता और अधिक गहरी होती जा रही थी। वैसे छायावादी काव्य का कुछ अश इतना भव्य और महान है कि काल का प्रभाव उसे कभी भी धूमिल नही बना सकेगा। प्रसाद की 'कामायनी' निराला का 'तुलसीदास' 'राम की शक्ति पूजा' आदि ऐसी सशक्त छायावादी कृतिया है जोअपने जीवन्त सन्देश और जिजीविषा के कारण सदैव अमर रहेगी और आने वाली युगो की मनीषा को प्रेरित और प्रभावित करती रहेगी।

छायावादी काव्य मे एक कमजोरी यह भी रही थी कि यह युग की भावनाओ को अभिव्यक्ति करने मे कुण्ठित और सकोचशील रहा था। छायावाद की जीवनावधि 1920 से 1936 तक मानी गयी है। यह युग भारतीय राजनीति का भयकर उथल–पुथल का युग रहा है। हम छायावादी काव्य मे इस युग के जीवन की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नही पाते है। युग की उथल–पुथल एव स्वाधीनता आन्दोलन की तीव्र गति साहित्य मे अभिव्यक्त चाहती थी, परन्तु हमारे छायावादी कवि एव पंत आदि ने महात्मा गॉधी आदि युग नेताओ के सम्बन्ध मे थोडा बहुत कहकर मौन साध लिया। वे अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति आकृष्ट न हो सके। छायावाद साहित्यिक रूढियो और परम्पराओ का उन्मूलन करने मे भी लगा रहा था।

इस सम्पूर्ण छायावादी काव्य के अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि इस काव्य की अधिकाश कविताओ मे कोई ऐसी वस्तु नही थी जो हृदय या मष्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डाल सकती। इसका कारण इसकी अन्तर्मुखी चेतना थी। बहिर्जगत के प्रति वह सर्वथा निष्क्रिय रह गई। उसमे उद्वेग तो था, परन्तु प्रतिरोध और सक्रियता की शक्ति का अभाव था। इन कवियो का जीवन दर्शन

नवीन काव्य शैली मे सगठित रूप मे न होकर इधर—उधर बिखरा हुआ था, जो शैली की दुरूहता के कारण और भी अधिक दुर्बोध बन गया था। लगभग सभी छायावादी कवि समाज के मध्यम वर्ग से आये थे, इसलिए उनके साथ मध्यम वर्गीय असगति पराजय पलायन की कुठित भावनाए जुडी हुई थी। आगे चलकर इन छायावादी कवियो ने अपने सृजन की इस कमजोरी और एकागिकता को समझा और अनुभव किया था। उन्होने यह अनुभव किया कि जीवन के प्रति छायावाद का दृष्टिकोण वैज्ञानिक न होकर भावात्मक था, जो युग की तेजी से बदलती हुई सघर्षपूर्ण परिस्थितियो मे स्वीकार नही किया जा सकता था, इसीलिए वह निष्क्रिय रहा। यही उसकी सबसे बडी निर्बलता और अन्त का कारण बना।

छायावाद का इतिहास इस विचित्र किन्तु एतिहासिक तथ्य का उद्‌घाटन करता है कि छायावाद की अन्त छायावादी कवियो द्वारा किया गया था। कालातर मे इन छायावादी कवियो, निराला, पत, महादेवी वर्मा ने ही छायावाद के विरूद्ध आवाज उठाई थी, क्योकि ये लोग छायावाद की असली कमजोरी को जानते थे, युग—जीवन का साथ न दे सकने के कारण ही छायावाद को समाप्त हो जाना पडा।

छायावाद युग की माग थी। यद्यपि कि छायावाद पर रोमेटिसिज्म, मिस्टिसिज्म, व्यक्तिवादी, और भारतीय विचारधारा—शैवमत, अद्वैत वेदान्त, आदि का प्रभाव अवश्य रहा पर ये सब आगे चलकर परवर्ती युग के भावो को अभिव्यक्त करने मे लाचार साबित हुए। फलत तत्कालीन राजनैकि, सामाजिक, आर्थिक शोषण की प्रतिक्रिया व मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद एव फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी विचारधारा से प्रभावित होकर परवर्ती रचनाकारो ने एक नवीन धारा, जिसे छायावादोत्तर काव्यधारा कहते है का विकास किया। छायावाद का पर्यवसान, छायावादोत्तर काव्य यथा—प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीत आदि नवीन विधाओ के रूप मे हुआ।

(ज) छायावादी दर्शन का स्वरूप

छायावाद का क्रीडागण प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक भूमि रहा है और उसका पृष्ठाधार मुख्यतया भारतीय अद्वैतवादी दर्शन रहा है, अवश्य ही यत्र—तत्र उसमे इतर (पाश्चात्य) अद्वैतवादी दर्शनो का भी समावेश हो गया है।

छायावाद युग की सास्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीति विचार सरणियो को प्रभावित करने वाले मनीषी–विवेकानन्द, अरविन्द, तिलक, गॉधी, टैगोर आदि वैदिक सत्यो को नवीन युग की आवश्यकता के अनुसार व्याख्या करने मे सलग्न थे। उन्होने वैदिक वाड्मय के अमर सत्यो को जनता के बीच प्रसारित करने का प्रयत्न ही नही, प्रत्युत उन्हे जनता द्वारा सामूहिक रूप मे सामान्य जीवन मे अपना लिए जाने का आग्रह भी किया। उनके व्यक्तित्व के व्यापक प्रभाव से छायावाद युग की काव्यधारा भी विशेष रूप से प्रभावित हुई। स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गॉधी और कवीन्द्र रवीन्द्र ने ऐहिकता को भी आध्यात्मिक स्तर पर अपनाया था। अत उनके प्रभाव से छायावादी काव्यधारा भी स्थूल से हटकर सूक्ष्म दार्शनिक चिन्तन की ओर मुड गई और उसमे स्थूल जगत की भावनाएँ भी सूक्ष्म धरातल पर व्यक्त होने लगी। उक्त युग द्रष्टाओ ने सास्कृतिक और सामाजिक जीवन मे वेदो और उपनिषदो के अद्वैत पक्ष को ही प्रधानता दी, अत उनकी देखा–देखी छायावाद की कविता मे भी वैदिक सत्यो–एक सत्', सर्व खल्विद ब्रह्म', 'ईशावास्यमिदसर्व', 'अयमस्मि सर्व.', अयमात्मा–ब्रह्म', 'अहब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि' आदि की खुलकर अभिव्यक्ति होने लगी।

शकर वेदान्त, वैष्णववेदान्तवाद तथा शैव दर्शन का आधार भी औपनिषदिक ज्ञान ही है। छायावाद के कवियो ने उपनिषदो का गहन अध्ययन तो किया ही था, जन्म से ही वे वैष्णव एव शैव सम्प्रदायो के अत्यन्त निकट थे। अत उनके विचारो एव भावनाओ पर विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शैवाद्वैत आदि के दार्शनिक पक्ष का यथेष्ट प्रभाव पडा। अत शांकर वेदान्त के प्रभाव से छायावाद के कवि ने यदि निराशा के क्षणो मे ससार को माया अथवा मिथ्या बताया तो वैष्णस वेदान्तवाद तथा शैव दर्शन के प्रभाव से उसने सुख के क्षणो मे जगत को सत्य भी घोषित किया। उपनिषद्, वैष्णव वेदान्त तथा शैव दर्शन के प्रभाव से ही छायावाद का कवि सगुणोपासना एव आनन्दवाद की ओर उन्मुख हुआ।

'द्वैत विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, शैव सिद्धान्त, वैष्णव, शाक्त, यहा तक कि बौद्ध और जैन आदि जितने सम्प्रदाय भारत वर्ष मे स्थापित हुए है, सभी इस विषय पर सहमत है कि इस जीवात्मा मे अनन्त शक्ति अव्यक्त भाव से निहित है, चीटी से लेकर ऊँचे–ऊँचे सिद्ध पुरुष तक सभी मे वह आत्मा विद्यमान है, और भेद जो कुछ है, वह है केवल प्रकाश के तारतम्य मे।' वरणभेदस्तृतत क्षेत्रिकवत्'– किसान जैसे खेतो की मेड तोड देता है और एक खेत का पानी

दूसरे मे बहने लगता है, वैसे ही आत्मा भी आवरण टूटते ही प्रकट हो जाती है। सुयोग और उपयुक्त देशकाल मिलते ही यह शक्ति स्वय को अभिव्यक्त करती है। चाहे व्यक्त अवस्था मे हो, चाहे अव्यक्त मे, यह शति प्रत्येक मे ब्रह्म से लेकर तृण तक सभी मे मौजूद है।' भारतीय दर्शनो की उक्त स्थापना के आधारभूत ही छायावाद काव्य मे सर्वात्मवादी धारा का प्रस्फुरण हुआ। यही भारतीय सर्वात्मवाद छायावाद के व्यापक मानवतावाद का आधार बना। यही कारण है कि छायावाद का मानवतावाद पाश्चात्य मानवतावाद की भॉति उपयोगितावाद अथवा प्रयोजनवाद तक ही सीमित न रहकर आध्यात्मिक मूल्यो को ग्रहण करता है और प्राणिमात्र की नि स्वार्थ सेवा का आदेश देता है।

सर्वात्मवाद का, जो अद्वैतवाद का ही एक रूप है, रहस्यवाद से भी घनिष्ट सम्बन्ध है। भारतीय सर्वात्मवाद के रहस्यवादी स्वरूप की सम्यक् अभिव्यक्ति छायावाद की कविता मे प्रकृति रहस्यवाद के रूप मे हुई है। सूफी रहस्यवाद भी अद्वैतवाद, अथवा सर्वात्मवाद पर अवलम्बित है। भारतीय साधाना को सूफी–शाखाओ की मुख्य देन 'प्रेमसाधना' है। सूफी काव्य, कबीर तथा कबीन्द्र रवीन्द्र के माध्यम से अध्यात्म प्रेमी छायावादी कवियो के प्रेम–गीतो पर सूफियो के प्रेम परक रहस्यवाद का प्रचुर प्रभाव पडा है। छायावाद के कवियो ने अपनी कृतियो पर स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के प्रभाव को भी मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है, अत उनकी प्रेम भावना स्वामी विवेकानन्द के प्रेम योग से भी, जिसके अनुसार प्रेम ही परमेश्वर है, सिक्त है। अग्रेजी के रोमान्टिक कवियो (वर्डसवर्ध, शैली आदि) का रहस्यवाद भी सर्वात्मवादी है। इसके अतिरिक्त काव्यगत होने के नाते वह असाम्प्रदायिक और नितान्त भावनामय है। छायावादी कवियो की रहस्य भावना को असाम्प्रदायिक एव भावात्मक रूप देने मे अग्रेजी के उक्त भावयोगी कवियो का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

छायावादी कवियो का ऐहिक जीवन प्राय असन्तोषपूर्ण एव दुखी रहा है, अत जीवनगत निराशा के सस्कार उनमे कुछ मज्जागत हो गये थे। किन्तु अपनी इस जीवनगत निराशा अथवा दु ख को भी उन्होने प्राय आध्यात्मिक दु ख की परिधि मे ही व्यक्त करने का प्रयास किया हैं वैसे शाकर वेदान्त भी ससार की असारता सिद्ध करता है और गीता मे स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य का जन्म अशाश्वत और 'दु खो का घर' है। किन्तु छायावादी कवियो का बौद्ध दर्शन

से विशेष अनुराग हो जाने के कारण छायावाद के निराशावाद अथवा दु खवाद पर बौद्ध दर्शन के 'सर्वेदु खम्' और 'सर्व क्षणिकम्' का ही प्रचुर प्रभाव है। शोपनहार का निराशावाद भी बौद्ध दु खवाद का ही प्रतिरूप है, अत एक हद तक वह भी छायावाद के निराशावाद को पुष्ट करने मे सहायक हुआ है।

उमर खैय्याम का जीवन दर्शन भी निराशावादी है किन्तु उसकी निराशा का प्रस्फुरण दो विभिन्न धाराओ मे हुआ है—(1) पलायनवाद और (2) भोगवाद। छायावाद की पलायन वृत्ति पर उमर खय्याम का भोगवादी जीवन दर्शन ही है। यहा पर स्मरण रखने की बात यह है कि उमर का भोगवाद आध्यात्मिक विद्रोह का परिणाम है, अत वह अध्यात्मवादी छायावाद काव्य की मूलधारा का विशिष्ट अग नही है। उसका समर्थन प्राय छायावाद के निम्न स्तर के कवियो तथा छायावाद युग के अन्तिम चरण मे बच्चन द्वारा हुआ जो सच्चे अर्थो मे छायावादी कवि नही है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छायावाद का वास्तविक स्वरूप आध्यात्मिक एव अद्वैतमूलक है और स्वच्छन्दतावादी छायावादी कवि की विचरण भूमि अद्वैतवाद (सर्वात्मवाद) तथा उसकी विभिन्न शाखाए विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, शैवाद्वैत आदि है। छायावादी पत ने हीगल, वर्गसा आदि जैसे कतिपय पाश्चात्य दार्शनिको के सिद्धान्तो के प्रति भी व्यामोह अथवा सहानुभूति प्रकट की है, किन्तु उनका प्रतिष्ठान उन्होने भारतीय दर्शन की परिधि मे ही किया है। अत छायावादी दर्शन की स्थापना मे उनका कोई पृथक स्थान नही है।

जहा तक अनात्मवादी दर्शन का प्रश्न है, छायावाद के निराशावाद अथवा दु खवाद पर बौद्ध दर्शन के दु खवाद का प्रबल प्रभाव है, किन्तु इस दु खवाद का पर्यवसान भी बहुधा छायावाद की कविता में अध्यात्म विषयक आनन्दवाद मे ही हुआ है।

उत्तर छायावाद एव छायावादोत्तर काल मे भी प्रमुख छायावादी कवियो—पत, निराला, महादेवी का दृष्टिकोण मूलत आध्यात्मिक ही रहा है। निराला जी की कविता मे भक्ति का स्वर उत्तरोत्तर प्रखर होता गया है। पत जी भूत (मैटर) और आत्मा (स्पिरिट) के समन्वय मे सलगन अवश्य है, किन्तु उस समन्वय मे भी प्रधानता आत्मा की ही है। वस्तुत पत काव्य मे भूत और आत्मा का उक्त समन्वय औपनिषदिक अद्वैत पर आधारित श्री अरविन्द दर्शन

की पृष्ठभूमि मे हुआ है। महादेवी वर्मा पूर्ववत् अपने निर्दिष्ट पथ पर दृढता के साथ चली जा रही है। इस प्रकार हम देखते है कि छायावादोत्तर काल मे भी प्रमुख छायावादी कवियो का दृष्टिकोण अध्यात्मवादी और अद्वैतमूलक ही है।

(ब) छायावादोत्तर काल :

छायावादोत्तर काल की रचनाओ की परीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि प्रस्तुत कालावधि के काव्य साहित्य की अनेक प्रवृत्तिया है। इस बीच का इतिहास कई वादो और धाराओ से होकर गुजरा है। कई नवीन जीवन दृष्टिया और काव्य वस्तु और शिल्प सम्बन्धी मान्यताए उभरी है। किसी धारा मे व्यक्तिगत अनुभूति किसी मे रोमानी दृष्टि की प्रधानता है तो किसी मे बौद्धिक यथार्थवादी दृष्टि की। कृतियो के आधार पर यदि हम इन अनेक दृष्टियो, मान्यताओ और रचना रूपो का वर्गीकरण करे तो स्पष्ट रूप से पाच–छह काव्य धाराए उभरकर आती है। उन्हे राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता, क्रमागत छायावादी काव्यधारा, या उत्तर छायावाद, वैयक्तिक गीत काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता और नयी कविता के बाद की हिन्दी कविता कहा जा सकता है। इसमे पहली दो धाराए नई नही है। राष्ट्रीय सास्कृतिक धारा भारतेन्दु काल से प्रारम्भ होकर द्विवेदी काल, छायावाद को पार करती हुई इस काल की कविताओ मे समकालीन प्रश्नो, स्वरो से सयुक्त होकर और भी उदार और वैविध्यपूर्ण हो गई। छायावादी काव्यधारा छायावाद काल मे अपना पूर्ण उत्कर्ष प्राप्त कर चुकी थी और परम्परा के निर्वाह सी इस काल मे भी बहती हुई दिखाई पडती है। शेष धाराए प्रस्तुत काल की ही उपज है।

(I) उत्तर छायावाद :

वास्तव मे इस अवधि के छायावाद का इतिहास मूलत· प्रगतिवाद के प्रारम्भिक पुरस्कर्ता निराला और पत के काव्य विकास का इतिहास है। यो तो इस धारा मे अनेक लोग आये किन्तु इस शैली मे उनका कोई अपना उन्मेष नही है। उनका योगदान इस धारा को बढाने मे अवश्य रहा किन्तु इसे कोई विशिष्टता नही प्रदान कर सके। इसलिए उनकी चर्चा करना यहा अनापेक्षित होगा। महादेवी जी की 'दीपशिखा' उनकी रचनाओ के क्रम मे अगली कडी के रूप मे आयी तो, पर उसे भी पहले की महादेवी के प्रकाश से अलग नही किया जा सकता और फिर इसके बाद आधुनिक मीरा चुप सी हो गयी।

(क) निराला

छायावादी कविता के चार प्रमुख स्तम्भो मे (प्रसाद, पत, निराला, महादेवी) से एक सूर्य कान्त त्रिपाठी निराला हिन्दी प्रगतिवादी काव्य के जनक और मूल प्रेरक शक्ति रहे है। वह पत के समान प्रगतिवादी आन्दोलन से प्रभावित होकर एका–एक प्रगतिवादी नही बन गये थे। हमे उनके काव्य मे आरम्भ से ही रूढियो के प्रति विद्रोह, दीन–हीन के प्रति अमित सहानुभूति और शोषण के खिलाफ तीव्र आक्रोश की भावना मिलती है। निराला का जीवन सघर्षमय तथा लोक सपृक्त रहा है। उनकी लोकोन्मुखता दो रूपो मे आयी– (1) छायावाद से एकदम अलग हटकर कवि ने प्रगतिशील कविताए लिखी। (2) उनकी छायावादी काव्यधारा का स्वर अधिक लोकोन्मुख होता गया। प्रगतिवादी कविताओ मे छद–भाषा और भाव–भूमि सभी छायावाद के प्रभाव से मुक्त है। निराला की 'बेला', 'नये पत्ते', 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौडी', 'प्रेम सगीत', 'रानी और कानी' 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' की अधिकाश कविताए इसी वर्ग की है। इनमे प्रगतिशीलता अपने दार्शनिक रूप मे नही है, बल्कि लोकानुभूतियो के रूप मे है।

परिमल की कविताओ मे 'विधवा', 'भिक्षुक', 'बहू', 'दीन' आदि ऐसी कविताए भी है, जो शैली की दृष्टि से छायावादी होते हुए भी विषय वस्तु और भाषा की दृष्टि से प्रगति शील है। उनके समस्त काव्य का प्रधान स्वर ओज और सघर्ष का रहा है। इसलिए जब हिन्दी मे प्रगतिवादी आन्दोलन ने जोर पकडा तो उसे सहज ही निराला का पूर्ण सक्रिय सहयोग मिला।

निराला छायावादी कवि अवश्य रहे है, परन्तु उनके छायावादी काव्य की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमे कही भी पलायन पराजय की भावना नही आ पायी है, परन्तु निराला की उत्तर छायावाद की कविताओ मे उनकी जीवनानुभूति के जो स्वर उभरे उनमे टूटन और पराजय भी थी, टूटन और पराजय की यही प्रवृत्ति कवि को भक्ति की ओर उन्मुख करती है। 'तुलसीदास' इस अवधि की इनकी विशिष्ट देन है। इसमे भारत को सास्कृतिक और सामाजिक पराजय के गर्त से निकालने का सकल्प है।

निराला ने न कभी छायावाद का विरोध किया और न ही कभी प्रगतिवाद की प्रशसा। दार्शनिकता के पुट ने निराला के काव्य को अधिक गहन और गभीर बना दिया।

(1) निराला की परवर्ती काव्य कृतियॉ प्रगतिशील मार्क्सवादी चेतना के सन्दर्भ मे

निराला एव पत की परवर्ती कविताओ का समय 1935–36 ई० से लेकर 1950 ई० तक माना जा सकता है। इन वर्षो मे निराला ने व्यग्यात्मक और परिहासात्मक कविताओ के माध्यम से सामाजिक वैषम्यो और आर्थिक दुर्व्यवस्था का व्यग पूर्ण आकलन किया है। उनकी ये रचनाये 'अणिमा' के उत्तरार्ध से आरम्भ होकर 'कुकुरमुत्ता' 'बेला' और 'नये पत्ते' तक फैली हुई है। सन् 1950 ई० के पश्चात् उनके 'अर्चना' और 'आराधना' आदि पुस्तको मे भी यत्र–तत्र सामाजिक दुराकरण के प्रति कवि के उद्‌गार प्राप्त होते है, परन्तु वे अपेक्षाकृत कम सख्या मे है। अतैव निराला का प्रगतिवादी स्वर सन् 1936 से 50 तक माना जा सकता है।

निराला का सम्पूर्ण जीवन सघर्षो और विद्रोह की एक कहानी रहा है। काव्य से उन्होने देश की आर्थिक विषमताओ, पूजीवादी सस्कृति के शोषणो, सामाजिक रूढियो और विश्वासो सजीव व्यग्यात्मक और परिहासात्मक रूप देकर एक अखड और क्रान्तिकारी सघर्षशील व्यक्तित्व का परिचय दिया है। व्यग उनके काव्य का आरम्भ, मध्य और अन्त रहा है। युग की चेतनाओ विविधताओ, आदि को प्रस्तुत कर, नवीन मानव मूल्यो को प्रस्तुत किया। उनका काव्य विकासशील जीवन दृष्टि का ही परिणाम है।

"निराला जी हिन्दी मे एक क्रान्तिकारी कवि के रूप मे उपस्थित हुए है, उन्होने काव्य और दर्शन का अद्‌भुद समन्वय प्रस्तुत किया है। उच्च कोटि की उदात्त ओजस्वी और मधुर कला की उन्होने सर्जना की।"[21] इसी कारण उनका व्यक्तित्व परस्पर विरोधी तत्वो का सगम रहा है। वह एक साथ कवि और योगी है, छायावादी एवं क्रान्तिवादी है, सरल एव दुरूह है, कोमल तथा कठोर हैं, यथार्थवादी तथा आध्यात्मवादी है।[22]

निराला के काव्य मे सामाजिक स्वर का प्रारम्भिक रूप उनकी आरम्भिक या पूर्ववर्ती कविताओ में भी देखा जा सकता है–उनके पूर्ववर्ती काव्य मे

सामाजिक जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव विद्यमान है, परन्तु सभी भावात्मक और करुण रस की भूमिका मे अवतरित हुए है। कुछ कविताओ मे क्रान्तिमूलक भावनाये भी अभिव्यक्त हुई जिनमे वीर रस की प्रधानता के साथ–साथ साम्यवादी दार्शनिक पुट भी है।[23]

करुण भावनाओ से युक्त कविताओ मे परिमल की 'भिच्छुक' और 'विधवा' कविताये उल्लेखनीय है। 'भिक्षुक' कविता मे निराला ने एक दरिद्र भिक्षुक का सजीव चित्राकन अपनी कविता के माध्यम से किया है। यह भिखारी भूखा–नगा सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है–

> ''वह आता दो टूक कलेजे के करता पछताता
> पथ पर आता पेट पीठ दोनो मिलकर है एक
> चल रहा लकुटिया टेक।''[24]

समाज का सबसे उपेक्षित अग वैधव्य है। 'विधवा' कविता मे निराला ने एकाकी, करुणा, और पीडामय, साधनायुक्त जीवन का मर्म स्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है–

> ''वह इष्ट देव की मन्दिर की पूजा सी,
> वह दीप शिखा सी शान्त भाव मे लीन
> वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
> वह टूटे तरू की टुटी लता सी दीन।''[25]

वीर रस से युक्त कविताओ मे 'बादल राग' और 'जागो फिर एक बार' आदि सर्वप्रमुख है, बादल राग कविता मे महान क्रान्ति का आभास गया है। यथा–

> ''जीर्ण बाहु है जीर्ण शरीर, तुझे बुलाता कृषक अधीर।
> हे विप्लव के बीर, चूस लिया है उसका सार।
> हाड मास ही है आधार, ऐ जीवन के पारावार।''[26]

सामतवादी व्यवस्था मे शोषित कृषक की दयनीय दशा का वर्णन और मार्क्सवादी विचारधारा की क्रान्ति की आवाहन का स्पष्ट स्वर हमे उपर्युक्त पक्तियो सुनाई दे रहा है। इसके अतिरिक्त 'जागो फिर एक बार' कविता मे राष्ट्रीय एकता और देश प्रेम का आवाहन, एव 'जागो जीवन धनिके, कविता मे भारतीय दीनता के निवारण के लिए भारतीय लक्ष्मी का आवाहन है। 'शिवाजी

का पत्र' 'उद्बोधन' आदि कविताए भी निराला की प्रगतिशील सामाजिक दृष्टि की परिचायक है।

युगीन परिस्थितियो का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब साहित्य हुआ करता है 1936 ई० का वर्ष सघर्ष एव सक्रान्ति का काल है। द्वितीय महायुद्ध के सभावित सकट, राष्ट्रीय आन्दोलन मे गतिरोध, व गॉधी जी के असहयोग आन्दोलन को आशातीत सफलता न मिलना, सरकारी दमन एव आतक से समाज जर्जरित हो चुका था, फलत महगाई, कर, बेकारी, आदि से किसानो और श्रमिको मे एक व्यापक असतोष उत्पन्न हो गया। सन् 36 के प्रारम्भ से ही नवीन युग के प्रथम किरण के दर्शन होते है, यह युग साहित्य तथा समाज दोनो क्षेत्रो मे नवीन मूल्यो और प्रतिमानो की वैज्ञानिक ढग से प्रतिष्ठा करता है। यहा ऐसे कवियो ने कल्पना और सौन्दर्य के स्थान पर काव्य को धरती से सम्बद्ध किया। सन् 1936 के पश्चात् निराला के काव्य ने एक नवीन दिशा की ओर प्रस्थान किया।

निराला का परवर्ती काव्य सामाजिक पीठिका पर आधारित व्यग्यो का केन्द्र बिन्दु है। कहा जा सकता है कि निराला की परवर्ती रचनाए परिवर्तित जीवन दृष्टि और विचारधारा का परिणाम है। यह काव्य उनके चेतन व्यक्तित्व, एव नवीन सामाजिक भावो तथा जन जीवन के वास्तविक व्यंग्यो से परिपूर्ण है। उनके काव्य का यह चरण सन् 1942 ई० से आरम्भ होता है। परवर्ती काव्य की कृतियो मे 'कुकुरमुत्ता' (सन् 42 ई०) 'अणिमा' (सन् 42 ई०– सन् 43 ई०) 'बेला' (सन् 46 ई०) 'नये पत्ते' (सन् 46 ई०) आदि प्रमुख है। जिनके आधार पर निराला की प्रगतिशील प्रवृत्ति और विचारधारा का अनुशीलन किया जा सकता है।

कुकुरमुत्ता

'कुकुरमुत्ता' मे विनोद की सृष्टि अतिरजित वर्णनो द्वारा की गई है। इसमे एक ओर पूजीवादी सस्कृति की निन्दा की गई है, और दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग को भी उपहासात्मक स्वरूप प्रदान किया गया है। एक ओर बुद्धिवाद का खण्डन और अन्य पक्ष मे अद्वैत खण्डन है। 'कुकुरमुत्ता' मे कवि का क्या आशय है? यह एक जटिल प्रश्न रहा है, फिर भी समग्र रूप से समीक्षको ने गुलाब की निन्दा जो कि पूजीवादी शोषण का प्रतीक है और कुकुरमुत्ता की प्रशसा जो कि सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है, से ही लगाया है।

निराला ने पूजीवादी सभ्यता और सस्कृति पर 'कुकुरमुत्ता' कविता मे कठोर प्रहार किया है। उनकी यह पक्तिया इस सन्दर्भ मे दृष्टव्य है–

'अबे सुनबे गुलाब भूल मत जो पाई खुशबू रगो आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट डाल पर इतरा रहा है केपटलिस्ट।
कितनो को तूने बनाया है गुलाम माली कर रक्खा, सहाया जाडा घाम।''[27]

अणिमा

अणिमा की कविताओ मे निराशा और विषाद के चित्र कवि ने रखे है। अणिमा के कुछ गीत ऐसे है जिनको लेकर निराला महती शक्ति का आवाहन करते है, जो हमारे समाज के वर्तमान विकारो और विषमताओ को प्रक्षालित कर सके। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

''दलित जन पर करो करूणा
दीनता पर उतर आये,
प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा।''[28]

निराल की 'उद्बोधन' कविता प्रेरणात्मक कविता है, जिसमे जातीय समानता एव सभ्यता की भावनाए व्यक्त हुई है। अणिमा के विषय मे धनजय वर्मा लिखते है ''विश्वास के स्वर भी साथ–साथ है और यथार्थ परक दृष्टि सामाजिक चेतना को अभिव्यजित करती है।''[29]

बेला

निराला की चेतना सामाजिक भूमिकाओ पर अधिकाशत रही है। बेला मे इसी कोटि की रचनाए है। 'काले काले बादल छाये न आये बीर जवाहर लाल' तथा 'टूटी वाह जवाहर की' आदि कविताओ मे कवि की राजनीतिक सामाजिक चेतना स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुई है। इन कविताओ मे प्रगतिवाद का पूर्व रूप मिलता है, जो आगे चलकर विकसित हुआ जिसमे उत्साह और क्रान्ति के स्वर गाये गये और जिसमे समाज को परिवर्तित करने का पूर्ण रूपेण संकल्प था।

नये पत्ते

नये पत्ते की कविताओ का धरातल कुकुरमुत्ता के आधार पर निर्मित है। इसके द्वारा निराला के युग की सामाजिक राजनीतिक मान्यताओ पर तीव्र प्रहार

किया है। 'खजोहरा' कविता मे ग्रामीण जीवन के कुछ चित्र है तो 'मास्को 'डायलग्स' कविता मे समाजवादी नेताओ पर तीखा व्यग भी है। 'राजे ने रखवली की' मे सामती व्यवस्था पर कठोर व्यग है, जिसमे ब्राह्मण, कवि, लेखक, और इतिहासकार सभी राजाओ की प्रशसा किया करते थे। एक स्थान पर निराला ने लिखा है–

> "चुपलूस कितने सामन्त आए मतलब की लकडी पकडे
> कितने ब्राह्मण आए पोथियो मे जनता को बाधे हुए।"[30]

सामतवादी व्यवस्था मे शोषण को पडे और पुजारियो या तथा कथित धर्म के ठेकेदारो द्वारा उसको समर्थन देना, इसके चित्राकन मे निराला ने मूलत मार्क्सवादी दार्शनिक चितन को ही अपनाया है।

'गर्म पकौडी' कविता मे भी व्यग है। गर्म पकौडी मे निराशा ने भारतीय समाज को दो वर्णो मे देखा है। वम्मन की पकाई घी की कचौडी से निराला का समाज के उच्च वर्ग के प्रति लक्ष्य है और तेल की पकौडी से निम्न वर्ग का प्रतीक है। 'कुत्ता भौकरने लगा' आदि कविता मे कृषक के दयनीय जीवन के मर्म स्पर्शी चित्रो को चित्रित किया गया है। 'झीगुर डटकर बोला' 'डिप्टी साहब आये' आदि भी जमीदारो और अधिकारियो का एक चित्र प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि निराला के काव्य मे 'नये पत्ते' एक महत्वपूर्ण रचना है जिसमे सामाजिक यथार्थवादी प्रगतिशील दृष्टि प्रकाश मे आई है। डॉ० कमलाकान्त पाठक ने लिखा है 'नये पत्ते मे सामान्य जनता का जागरण दिखाना और जीवन का यथा तथ्य निरूपण करना निराला जी का इष्ट रहा है।'[31]

निराला जी की कविताओ का एक पक्ष सामाजिक भी है। जिसमे भिखारी, कृषक, श्रमिक एव दीनहीन की करुणा एव हृदय के सुख–दुःख उद्‌गारो को व्यक्त किया गया है। 'अनामिका' मे प्रकाशित 'वह तोडती पत्थर' सामाजिक वैषम्य से सम्बन्धित कविता है। इसमे श्रमिक की कर्तव्य शीलता की ओर निराला जी का सकेत है। इस सम्बन्ध मे निराला की यह पक्तिया हैं–

> 'चढ रही थी धूप गर्मियो के दिन
> दिवा का तम तमाता हुआ रूप
> उठी झुलसाती हुई लू, रूई ज्यो जलती हुए भू

गर्द चिनगारी छा गई, प्राय हुई दुपहर।
वह तोडती पत्थर।
देखते देखा मुझे तो एक बार,
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार
देख कर कोई नही, देखा मुझे उस दृष्टि से,
जो मार खा रोइ नही।''[32]

अन्तरमन तक छूने वाली मजदूर की पीडा का चित्राकन निराला की यह कविता करने मे सक्षम है। बेला की कुछ कविताए निराला की सामाजिक प्रगतिशीलता की परिचायक है–

''भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल मे है
देश को मिल जाये जो पूजी तुम्हारे मिल मे है।''[33]

निराला की इन पक्तियो मे मार्क्सवादी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। पूजीपतियो एव श्रमिको के बीच सघर्ष मे पूजीवाद का समाप्त होना एव श्रमिको का उनके धन पर अधिकार होना इन पक्तियो मे ध्वनित हो रहा है, यही मार्क्सवाद का मूल आधार भी है। निराला यह भलीभाति जानते थे कि सामाजिक विषमता तभी दूर हो सकती है जब पूजीवादी व्यवस्था समाप्त हो जाये।

निराला की कतिपय कविताए साम्यवादी विचारो और दृष्टिकोणो को लेकर चली है, इन कविताओ मे सामाजिक और आर्थिक प्रश्नो को साम्यवादी दृष्टिकोण के सन्दर्भ मे प्रस्तुत किया गया है। जिसमे वर्गों एव जाति–पाति के भेदभाव को समाप्त करने का सकल्प है। 'जल्द–जल्द पैर बढाओ, कविता में साम्यवादी भावना और आदर्शों को कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''आज अमीरो की हवेली किसानो की होगी पाठशाल,
धोबी, पासी, चमार तेली खोलेगे अंधेरे का ताला।
एक पाठ पढेगे टाट बिछाओ।''[34]

निराला की 'कुकुमरमुत्ता' रचना मे पूजीवादी व्यवस्था पर सीधा प्रहार है। 'चूकि यह दाना' कविता मे पूंजीवादी सभ्यता पर तीखा व्यग है। धन के ही कारण धर्म विकसित होता है, परस्पर प्रेम बढता है। पैसे वाले के घर उनके सास, ससुर भी रहने लगते है इस प्रकार धन के ही कारण सामाजिक विकृतिया और विषमताए उत्पन्न होती हैं। कुछ पंक्तियो यहा ध्यातव्य है –

"चूँकि यह दाना है इसलिए दीन है दीवाना है,
लोग है महफिल है नग्मे है साज है,
दिलदार है और मिल है शम्मा है परवाना है"।[35]

झीगुर डटकर बोला' कविता मे गॉधीवादी नेताओ पर तीखा प्रहार हुआ है–

"गॉधीवादी आये
काग्रेसमैन टेढे के,
देर तक गॉधीवाद क्या है, समझाते रहे।
देश को भक्ति से निर्विरोध शक्ति से
राज अपना होगा जमीदार साहूकार अपने कहलायेगे।"[36]

यद्यपि निराला मार्क्सवादी चितनधारा से प्रभावित अवश्य रहे है तथापि निराला की प्रगतिशीलता किसी सिद्धान्तो या वादो की सीमाओ मे आकी नही जा सकती है। वह इन सबसे परे तत्कालीन परिस्थितिजन्य है। उसका एक मात्र आदर्श मानवीय कल्याण है। इसका सम्बन्ध धरती से है।

(ख) पंत :

पत जनभीरू तथा एकान्त स्वभाव के रहे है सघर्षो को दूर खडे रहकर ही समझा है, उसमे कभी भाग नही लिया। छायावाद से प्रभावित होकर वे पहले छायावादी बने, जब प्रगतिवाद ने छायावाद का साधारण विरोध किया तो छायावाद का विरोध करने मे अग्रणी बन प्रगतिवादी हो गये और जब प्रगतिवाद का अत्यधिक भौतिक और उग्र स्वर उनके कोमल स्वभाव और कोमल कल्पना को अधिक सन्तोष नही दे सका तो, प्रगतिवाद का विरोध करके अरविन्दवादी दार्शनिक कवि बन गये। गुजन मे पत का यही रूप दिखाई पडता है। उनका कवि अपनी आत्मा का बालोचित सहज उल्लास खोकर दार्शनिक बन गया है वह जन्म मे मृत्यु और बसन्त मे पतझड के दर्शन करने लगा है। अपने युग के आदर्शों मे उसका विश्वास नही रहा है। इसलिए वह बुद्धिवादी बन आत्म कल्याण और विश्व कल्याण से भर उठा। चुकि ये अपने संस्कार और भाषा मे मूलत छायावादी ही रहे है, अत. यह कहा जा सकता है कि पत के माध्यम से छायावाद को इस अवधि मे नया चिन्तन और नया विषय जगत प्राप्त हुआ है।

सन् 1936 ई० मे युगान्त की घोषणा कर पत ने 1939 ई० मे युगवाणी और 1940 ई० मे ग्राम्या की रचना की। इसलिए वे मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जन जीवन के सत्यो की ओर उन्मुख हुए।

(1) पत का परवर्ती काव्य प्रगतिशील मार्क्सवादी चेतना के संदर्भ में

पत का झुकाव प्रगतिशील काव्य रचना की ओर 'युगान्त और 'रूपाभ' की स्फुट कविताओ मे दिखाई पडता है, परन्तु उनका प्रौढ स्वरूप 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' काव्य सग्रहो मे निर्मित हुआ है। इन रचनाओ का समय भी सन् 1935–36 ई० से आरम्भ होकर 40–42 तक चलता है। जान पडता है कि पत जी का यह प्रगतिशील चरण निराला की अपेक्षा अल्प जीवी रहा है। उनके प्रगतिशील काव्य मे व्यग और विद्रूप की अपेक्षा, ग्लानि, करुणा और उपदेशात्मक पक्ष अधिक है।

युगान्त का कवि विगत युग की समाप्ति और नव युग का उल्लासपूर्वक अभिनदन करता है।

> "द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र हे स्त्रत ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण।
> हिम ताप पीत, मधुवात भीत तुम वीत राग जड पुरा चीन'।[37]

इन पक्तियो मे कवि ने पुरानी पूजीवादी व्यवस्था को शीघ्र ध्वस्त होने की कामना की है। युगान्त मे नये युग के अवतरण की पुकार है। नवीन आशा की किरणो से कवि 'गा कोकिल बरसा पावक कण' की घोषणा करते हुए क्रान्ति का आवाहन करता है।

> "गा कोकिल बरसा पावक कण।
> नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।"[38]

इस प्रकार युगान्त काव्य मे एक प्रकार से छायावादी काव्यधारा से विदा लेने का उपक्रम है। जिसके मूल मे कवि की नवीन जीवन दृष्टि है। जो एक सौन्दर्य के कवि को समाज और राष्ट्र की यथार्थताओं से परिचित करती है।

पत की प्रगतिशील काव्य रचनाओ मे 'युगवाणी' एक प्रमुख कृति है। 'युगवाणी' मे आकर कवि का मार्क्सवादी प्रभाव गहन हो जाता है। श्री प्रकाश चन्द्र गुप्त के शब्दों मे, "हिन्दी प्रगतिवाद का एक बडा कदम छायावादी कवि पत की कला का परिवर्तन था। 'युगवाणी' मे पत की प्रेरणा ने अपने कोमल

अन्तर्मुखी गीत त्याग कर समाजवादी विचार दर्शन अपनाया। कल्पना के रग महल छोडकर आपके काव्य ने कठोर और शुष्क धरती का वरण किया।[39]

पत जी की 'कार्लमार्क्स', 'भौतिकवाद', 'साम्राज्यवाद', 'गॉधीवाद' आदि कविताए जीवन सम्बन्धी वास्तविकताओ को दृष्टिकोण मे रखकर सिद्धान्तो की सीमाओ मे बध गयी है। इन कविताओ मे एक वर्गहीन सस्कृति और समाज की कल्पना की गई है–

"धन्य मार्क्स' ! चिर तमछन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र ज्ञान चक्षु–से प्रकट हुए प्रलयकर।"[40]

समाजवाद गॉधीवाद कविता मे गॉधीवादी विचारो का यथेष्ट प्रतिपादन है। उसकी ये पक्तिया इस विचारधारा का समर्थन करती है–

"गॉधीवाद जगत मे आया ले मानवता का नव मान।
सत्य अहिसा से मनुजोचित नव सस्कृति करने निर्माण।[41]

इस सम्बन्ध मे कवि के स्वय के विचार भी उल्लेखनीय है। कवि कहता है, 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' मे मेरी क्रान्ति की भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नही होती, उसे आत्म सात करने का प्रयत्न भी करती है।"[42]

युगवाणी मे कवि एक नवीन मानवता और सस्कृति का निर्माण करना चाहता है, उसकी नवीन जीवन की कल्पना कार्य रूप मे तब तक परिणत नही हो सकती जब तक वर्तमान पूजीवादी सम्यता और सस्कृति स्थापित रहेगी। कवि चाहता है कि इसका पूर्ण रूपेण विनाश हो और यही कारण है कि इसकी तीव्र शब्दो मे भर्त्सना करता है–

"वे नृशंस है, वे जन के श्रम बल से पोषित,
दुहरे धनी, जोक जग के, भू जिनसे शोषित।"[43]

छायावादी कविता जीवन दृष्टिकोण से रहित होने के कारण भावना प्रधान थी, युगवाणी मे आकर नवीन मानव मूल्यो एव मार्क्सवादी जीवन दर्शन की कवि ने स्थापना की है।

पत जी के प्रगतिशील काव्य का अन्तिम चरण ग्राम्या है। इसमे 'युगवाणी' के बाद की रचनाये सग्रहीत है। इसमे कवि का उद्देश्य ग्रामीणो के प्रति बौद्धिक सहानुभूति का प्रदर्शन मात्र ही है। 'ग्राम्या मे पंत के काव्य का

अपेक्षाकृत प्रौढ स्वरूप प्राप्त होता है। युगवाणी से अधिक परिष्कृत कला यहा सामाजिक चेतना को लेकर प्रस्फुटित हुई है। प्रेमचन्द्र के अतिरिक्त किसी अन्य कलाकार ने भारतीय ग्राम का इतना मार्मिक चित्रण नही किया है। 'गॉव के लडके' कविता मे गॉव के बच्चो का बडा ही स्वाभाविक, सजीव एव यथार्थ चित्रण किया गया है–

"मिट्टी से भी मटमैले तन, अधकटे कुचैले जीर्णवसन,
ज्यो मिट्टी के हो बने हुए ये गवई लडके भू-के धन।"[44]

इन पक्तियो मे गाव की गरीबी का सचित्र वर्णन है। ग्राम्या मे ग्रामीण जीवन और सस्कृति के अतिरिक्त धोबियो, कहारो एव चमारो के नृत्य पर लिखी हुई कविताए है।

पत की प्रगतिशील कविताओ मे सामाजिक कविताओ का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 'युगान्त' मे कवि ने नवीन सस्कृति के निर्माण की कल्पना की है। कवि को दीन–हीनो से विशेष सहानुभूति है, कवि कहता है–

"जो दीन–हीन पीडित निर्बल, मै हूँ उनका जीवन सबल।
जो मोह छिन्न जग मे विभक्त, वे मुझसे मिले बने सशक्त।"[45]

"युगान्त की कविताओ मे गॉधीवाद का किसी न किसी रूप मे अवश्य प्रभाव मिलता है जो कि 'बापू के प्रति' शीर्षक कविता मे देखा जा सकता है। 'युगवाणी' की 'मार्क्स के प्रति' मे मार्क्सवादी प्रभाव परिलक्षित होता है–

"साक्षी है इतिहास, किया तुमने दुदुम्भि से घोषित,
प्रकृति विभाजित कर, मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित।"[46]

'समाजवाद गॉधीवाद' शीर्षक कविता मे कवि ने गॉधीवादी विचारो, सिद्धान्तो, आदर्शों की प्रशसा की है। कवि कहता है–

"मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गॉधीवाद,
सामूहिक जीवन विकास की साम्ययोजना है अविवाद।"[47]

कवि ने स्वय 'रश्मि बध' की भूमिका मे लिखा है कि उसने युगवाणी और 'ग्राम्या' मे मार्क्सवादी दर्शन को आत्मसात करने की चेष्टा की है। डॉ० नगेन्द्र इस सम्बन्ध मे लिखते है, "युगवाणी एक प्रकार से भारतीय साम्यवाद की वाणी है। भारतीय साम्यवाद का युगवाणी में दो रूपो मे ग्रहण है। एक ओर उसके

मुख्य सभी सिद्धान्तो का विवेचन, दूसरी ओर समाजवाद के दृष्टिकोण का ग्रहण।''[48]

निराला और पत मे मुख्य अन्तर यह है कि निराला न चिन्तन के माध्यम से नही, सवेदना और अनुभव के माध्यम से जनजीवन को ग्रहण किया, इसलिए उनकी कविताओ मे मार्क्सवाद या समाजवाद का दर्शन कोई स्पष्ट रूप नही पा सका वहा जन जीवन अपने समस्त सवेदन के साथ उभरा। दूसरी ओर पत ने मार्क्सवादी दर्शन को चितन के स्तर पर स्वीकार किया, वे प्राय मार्क्सवादी सिद्धान्तो को ही व्यक्त करते रहे है।

''कहता भौतिकवाद वस्तुजग का कर तत्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का दर्पण।''

यह बात तब और भी स्पष्ट हो उठती है, जब पत जी ग्राम्या से आगे की यात्रा मे अरविन्द दर्शन से प्रभावित हो उठते है। यहा तक स्वामी राम तीर्थ स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक तथा शेली, कीट्स, रवीन्द्र आदि की शैली और विचार से प्रभावित दिखाई पडते है।

गुजन के बाद पत का बुद्धिवाद उन्हे विद्रोह के पथ पर ले जाता हुआ दिखाई देता है। भौतिकवाद का नया यथार्थवादी स्वर पंत की सम्पूर्ण मान्यताओ को ध्वस्त कर उन्हे प्रगतिवादी बना देता है। उनके आगामी काव्य सग्रहो युगान्त, युगवाणाी, और ग्राम्या मे पत के इसी नवीन चितन और बौद्धिकता का समन्वय हुआ है। इसमे भौतिकवाद और मार्क्सवाद के साथ आध्यात्म का भी पुट रहा है। कवि कल्पना को त्यागकर कठोर धरातल पर उतर आया। वह प्रकृति का निरादर कर मानव महत्व की भावना से भर उठा।

''सुन्दर है विहग सुमन सुन्दर, मानव! तुम सबसे सुन्दरतम।''

अपने इस प्रगतिवादी काव्य मे पत ने जन साधारण के दुख–दर्द के चित्र अकित किए है। पुरानी सामन्ती सस्कृति को मरणोन्मुख घोषित कर नई मानवता की प्रशस्ति की गयी है। परन्तु पत का कोमल प्राण, प्रगतिवाद के उग्र विध्वसकारी रूप की कठोरता को पूर्णत आत्मसात करने में झिझकता तथा गॉधीवाद एव अरविन्दवाद मे आश्रय खोजता रहा है। स्वभाव से ही सघर्ष भीरू होने के कारण पत का कवि श्रमजीवी वर्ग को केवल अपनी बौद्धिक सहानुभूति ही प्रदान कर सका, जो सुन्दर होते हुए भी निष्प्राण है। इसीलिए कुछ लोग पत

को वर्गहीन बुद्धिवादी कहते है। पत सघर्ष विद्रोह के स्वर गुजाते हुए भी दर्शन मे आश्रय ढूढते रहते है और कुछ समय उपरान्त दर्शन उन पर इतना अधिक हावी हो जाता है कि वह प्रगतिवाद का विरोध कर आध्यात्म द्वारा सास्कृतिक पुनुरूत्थान की बात करने लगते है। पत की यह स्वभावगत अस्थिरता उन्हे निरन्तर भटकाती रही है। 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', मे पत ने उच्च सास्कृतिक आन्दोलन को मानवता के कल्याण के लिए अनिवार्य मान दार्शनिक विवेचन किया है, तो वही अरविन्द दर्शन से गहरे रूप से प्रभावित होकर 'उत्तरा' और 'अतिमा' नामक काव्य सग्रहो मे पत पूर्ण दार्शनिक बन गये है और साथ ही प्रगतिवाद के कट्टर विरोधी भी। 'लोकायतन' महात्मा गॉधी पर 700 पृष्ठो का प्रबध काव्य है और 'काला और बूढा चाद' मे भी पत का दार्शनिक स्वर ही अधिक उभरा है। कवि ने आरम्भ से मनुष्य मात्र के सुख एव शान्ति के सपने देखता रहा है, इस वायवी सपने को उसने रूप देना चाहा तो मार्क्सवाद मे उसे आलोक दिखाई पडा, किन्तु पुन उसे ऐसा लगा कि मार्क्सवाद एकागी है, केवल भौतिक योगक्षेम की व्यवस्था कर सकता है। अत कवि इसे आवययक मानते हुए भी पर्याप्त नही मानता और अरविन्दवाद मे भौतिकवाद और आध्यात्मवाद का समन्वय ढूढता है।

(2) श्री अरविन्द दर्शन एवं पत का काव्य .

श्री अरविन्द (1872–1950) का दर्शन भी औपनिषदिक अद्वैतवाद एव पाश्चात्य भौतिकवादी दर्शन की परम्परा मे आता है। वी0पी0 वर्मा के अनुसार, भारतीय पुनर्जागरण और भारतीय राष्ट्रवाद की श्री अरविन्द एक महान विभूति थे, नैतिक बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धियो ने भारत के शिक्षित समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। उनके महाग्रन्थ 'लाइफ डिवाइन' के प्रकाशन के समय से ससार के प्रमुख विद्वानो का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उनका महाकाव्य 'सावित्री' आध्यात्मिक काव्य के क्षेत्र मे एक नये युग का प्रवर्तक माना जाता है। नि सन्देह वे आधुनिक भारतीय विचारको मे सबसे अधिक सुशिक्षितो मे से एक थे। टैगोर ने जिनपर अरविन्द के देदीप्यमान व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पडा था, कहा है कि उनके द्वारा भारत विश्व को अपना संदेश व्यक्त करेगा। रोमै रोला श्री अरविन्द को एशिया की प्रतिभा तथा योरोप की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट समन्वय मानते है। सचमुच श्री अरविन्द की प्रतिभा बहुमुखी थी, वे कवि, तत्वशास्त्री, दृष्टा, देश भक्त मानवता के प्रेमी तथा राजनीतिक सामाजिक

विचारक थे। उनकी रचनाओ मे हमे भारत की नवीन व उदीयमान आत्मा का घनीभूत सार देखने को मिलता है और मानव जाति के लिए उनमे आध्यात्मिक सदेश निहित है।"[49]

महर्षि अरविन्द आज के युग के महान विभूति है। उनके द्वारा प्रतिष्ठित नवमानवतावादी दृष्टिकोण ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आज के प्रत्येक जागरूक साहित्यकार को प्रभावित किया है। उन्होने आधुनिक सास्कृतिक सकट के युग मे सामाजिक उन्नति के लिए नये सोपानो का अन्वेषण किया है और यात्रिक सभ्यता के इस युग मे मानव के दैहिक और आध्यात्मिक विकास के समन्वयात्मक रूप की आशा भूमि प्रस्तुत की है।[50]

महर्षि अरविन्द पुनर्जागरण बेला की शशक्त एव सक्षम भारतीय प्रतिभा थे। उन्होने यथा सभव समस्त पौरस्त्य, पाश्चात्य, प्राचीन अर्वाचीन दर्शन एव विज्ञान का अध्ययन कर एक ऐसे दर्शन की सृष्टि की है जो तमाम अतिवादी और विरोधी विचारों का संगत समन्वय करता है। प्रत्येक सन्तुलित विचारक पूर्ववर्ती विचारको के विचारो का सरवान पक्ष ग्रहण कर समन्वयी वैचारिक सृष्टि को जन्म देता है। ऐसे प्रयासो मे से जो जितनी ही व्यापकता मे समन्वय एव सगति ढूढ निकाले वह उतना ही प्रतिष्ठित होता है। दर्शन के समूचे इतिहास मे कदाचित ही किसी दार्शनिक ने अब तक इतनी व्यापकता और विस्तार प्रदर्शित किया हो। जडवाद, चेतनावाद और विकासवाद, पूर्णतावाद की अतियो के पारस्परिक विरोध से हटकर उन्होने ऐसी अन्वित की स्थापना की कि मनुष्य इसी लोक मे इसी पार्थिव देह से दिव्य जीवन का अनुभव कर सके।

श्री अरविन्द ने स्वय ही लिखा है कि उनका दर्शनशास्त्र भारतीय और पाश्चात्य विचारधारा का समन्वय है। इस रूप मे उन्होने भारत के सन्यासवादी आध्यात्मवाद और पश्चिमी जगत के लौकिकवादी भौतिकवाद की परस्पर विरोधी प्रकृतियो का समन्वय किया। आध्यात्मवाद के क्षेत्र मे भारतीय प्रतिभा की उच्चतम उपलब्धि आर्य ऋषि मुनियो के द्वारा संभव हुई। बुद्ध की शिक्षाओ मे भी उसी प्रतिभा की झलक देखने को मिलती है। परन्तु परवर्ती काल मे मोक्ष प्रति के साधन के रूप में ससार को त्यागने पर अधिक बल दिया गया। लोगो के दिल व दिमाग में यह धारणा घर कर गई कि इस लौकिक जगत का सब कुछ क्षण भगुर है, मिथ्या है अत इस लौकिक जगत को त्यागकर भोगमय जीवन से सर्वथा दूर रहना ही उचित है। इसी त्याग मे वैराग्य मे मुक्ति है। इस

विचारधारा या दर्शन ने हमे अपने व्यावहारिक व प्राकृतिक जीवन से बहुत दूर हटाकर वास्तविक जीवन सघर्ष मे हमारी प्राणशक्ति को दुर्बल बना दिया। परिणाम यह हुआ कि, जीवन के शुद्ध लौकिक क्षेत्र मे भारत ससार के अन्य देशो के साथ प्रतिस्पर्धा मे सफल न हो सका। इससे व्यक्ति और समाज दोनो का ही अहित हुआ, और दोनो की ही रचनात्मक प्रगति रुक सी गई। इसके विपरीत योरोप भौतिकवाद का गढ रहा है। वहा ड्रेमोकिट्स, दिदरो, मार्क्स, ऐगल्स, हेकल, लेलिन आदि भौतिकवादी विचारको ने इस क्षेत्र मे अपना–अपना योगदान दिया है। सच यह है कि अनेक वैज्ञानिको का ईश्वर मे विश्वास रहा है, फिर भी वैज्ञानिक पद्धति और विचारधारा के विकास के साथ–साथ पश्चिमी देशो मे घोर लौकिकवाद और भौतिकवाद को प्रोत्साहन मिला है। सर्वत्र बाह्य वातावरण की विजय और समाज को बौद्धिक आधार पर सगठित करने की दिशा मे अथक प्रयास किए गये है। इस प्रकार के वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने प्रकृति तथा मानवीय जीवन व समाज के सम्बन्ध मे हमारे ज्ञान भण्डार को बहुत विस्तृत किया है। हमारी सृजनात्मक शक्ति मे अभूतपूर्व वृद्धि की तथा लोकतन्त्र समाजवाद, समानता, मानवता के आदर्शों को प्रस्थापित किया। पर इतना सब होने पर भी आत्मा और परमात्मा की वास्तविकताओ को न तो समझ सके और न ही समग्र ससार को नियमित व सचालित करने वाली ईश्वरीय शक्ति के रहस्य को खोल सके।

श्री अरविन्द का विचार था कि भारत तथा योरोप दोनो ही अति की ओर चले है–भारत आध्यात्मवाद की चरम सीमा पर एव योरोपीय देश लौकिकवाद या भौतिकवाद के उच्चतम शिखर पर। अपने प्रति या चरम रूप मे न तो अध्यात्मवाद व्यावहारिक है और न ही भौतिकवाद अन्तिम आदर्श। अत· दोनो का समन्वय न केवल आवश्यक है, अपितु उपयोगी भी। श्री अरविन्द का यह विश्वास था कि भारतीय आध्यात्मवाद और योरोपीय लौकिकवाद व भौतिकवाद के बीच उचित व्यावहारिक सामजस्य स्थापित किया जा सकता है, और ऐसा हो जाने पर वह केवल भारत के लिए ही नही, समग्र ससार के लिए कल्याणकारी व क्रान्तिकारी होगा। इस पूर्व पश्चिम के समन्वय के फलस्वरूप जिस नवीन विचारधारा या दर्शन का जन्म होगा उसमे स्वभावत ही पदार्थ (भूतद्रव्य) तथा आत्मा या परमात्मा दोनो के महत्व को स्वीकार किया जायेगा। श्री अरविन्द ने अपनी कृतियो मे इसी समन्वय को उजागर करने का प्रयास किया है, और इस

बात को दर्शाया है कि केवल भौतिकवाद या केवल आध्यात्मवाद पर बल देना उचित न होगा।

श्री अरविन्द के अनुसार परम सत् एक अध्यात्मिक तत्व है। वह केवल अविचल, अलक्ष्य, अनुभवातीत, और अपरिवर्तनशील सत्ता नही है, अपितु उसमे गतिशीलता, उद्‌विकास तथा एक से अनेक मे परिवर्तित होने के गुण मौजूद रहते है। अत विविधता भी उतनी ही वास्तविक है जितनी की एकता अगर एक परमात्मा सत्य है, वास्तविक है, तो असख्य मनुष्यो मे बिखरे हुए उसी परमात्मा का प्रकाश आत्मा भी सत्य है, वास्तविक है। उसी प्रकार यह बाह्य जगत उसी वास्तविक सत्ता (परमात्मा) की वास्तविक सृष्टि है, काल्पनिक या आधार विहीन सृष्टि नही। प्रत्येक वस्तु या पदार्थ उस परमात्मा की ही विभिन्न अभिव्यक्तिया है। या यू कहिये कि पदार्थ भी आवरण युक्त आत्मा ही है। ब्राक्तण्ड के विकास के हेतु आत्मा अपनी चेतना को स्वत ही समाप्त व सीमित करके अचेतन का रूप धारण कर लेता है। उस अचेतना से ही विकास का क्रम आरम्भ होता है और उत्तरोत्तर द्रव्य, जीवन तथा मन का विकास होता है। यहा पर स्पष्टत पाश्चात्य दार्शनिक लाइबनीज के दर्शन का प्रभाव अरविन्द पर देखा जा सकता है। इस प्रकार लाइबनीज की भांति श्री अरविन्द ने अपनी विचारधारा मे आत्मा और द्रव्य या भौतिक दुनिया के बीच के अन्तर को मिटाकर उन्हे समन्वित रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार वास्तव मे दोनो एक ही है–'एक से अनेक और अनेक से एक' की अद्‌भुद अभिव्यक्ति है।

वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक सभी सृष्टि के विकास क्रम को महत्ता देते है। यह जीवन विकासक्रम हमको यह इगित करता है कि सृष्टि–प्रकृति और मानव निरन्तर विकसित एव उन्नत होते हुए किसी एक लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे है आज मानव चेतना भी खण्डात्मक है, विकास क्रम अपनी चरम परिणति पर नही है। तब यह प्रश्न स्वभावत ही उठ खडा होता है कि जीवन विकास का मानव के बाद अगला सोपान क्या है? जिस तरह वानर से मानव मे चेतना अधिक विकसित हुई उस तरह मानव से भी चेतना अधिक विकसित होनी चाहिए और हमको जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि मानव के अगले विकास की अवस्था क्या होगी। क्योंकि प्रत्येक वस्तुओं मे उसकी सभावनाएँ निहित है अत. यह निश्चित है कि आज के मानव मे भी आगे की सभावनाये है और वे परोक्ष रूप से हमे किसी न किसी रूप मे प्रभावित कर रही होगी। पश्चिमी

मनोविज्ञान 'भूतमुखी' होने के कारण इसको खोजने मे असमर्थ है। भारत मे योग दर्शन भविष्यमुखी है। योगिराज श्री अरविन्द ने इसे खोजा है। उन्होने अतिमानस की कल्पना की और इस रूप मे मानव जीवन के मौलिक रूपान्तर का एक अपूर्व शक्तिशाली साधन खोज निकाला पूर्णतर ज्ञान, महत्तर सौन्दर्य, एव आनन्द अनुभूति की यह उच्चतर अभिव्यक्ति है। इसकी चेतना मे सरलता, स्फूर्ति सशक्तता और प्रेरणा का प्रमुख स्थान है। यह चेतना अवश्य ही सामान्य मानवीय चेतना के मुकाबले उच्चतर होने के कारण 'अतिचेतना' कही जायेगी। यह सामान्य मानव मे प्रसुप्त सभावना के रूप मे उपस्थित है। यह पाश्चात्य दार्शनिक लाइबनीज के चिदणु के समान है जिसमे ससार की समस्त सभावनाए यहा तक कि परम चितणु या ईश्वर की भी सभावना प्रसुप्त रूप मे निहित है। जिस प्रकार लाइबनीज के चिदणु से सृष्टि का एव आत्मा का तथा इसके बाद परम चिदणु का विकास होता है उसी प्रकार भी अरविन्द के दर्शन मे मनस का विकास अतिमानस एव चेतना का अति चेतना के रूप मे होता है।

श्री अरविन्द ने लिखा है, "हम देखते है कि भारत मे सन्यासवाद के आदर्श का प्रतिपादन करने वालो ने वेदान्त के एक सूत्र 'एक ही है दूसरा नही (एक सत्—नेहनास्ति किचन) के अभिप्राय को भलीभाति नही समझा है। उन्होने दूसरे सूत्र 'वह सब कुछ ब्रह्म है' (सर्व खल्विदं ब्रह्म) की ओर अनुचित ध्यान नही दिया है। एक ओर जहा मनुष्य मे ऊपर उठकर परमात्मा को प्राप्त करने की उत्कट आकाक्षा दिखाई देती है, वही दूसरी ओर परमात्मा मे भी अपनी अभिव्यक्ति को अपने मे शास्वत रूप मे समेटने के उद्देश्य से नीचे की ओर उतरने की प्रवृत्ति भी स्पष्टत देखने को मिलती है। इन दोनो बातो को समुचित ढग से परस्पर सम्बद्ध करने का प्रयास हमने अब तक नही किया है। अर्थात् पदार्थ में निहित ब्रह्म शक्ति की वास्तविकता को उतनी अच्छी तरह नही समझा गया जितनी अच्छी तरह आत्मा मे निहित सत्य (या परमात्मा) का साक्षात्कार कर लिया गया। दूसरे शब्दो मे जिस परम सत् का साक्षात्कार सन्यासी करना चाहता है। उसे तो पूर्णतया समझ लिया गया है पर प्राचीन वेदान्तियो की भांति उस परम् सत् की पूर्ण व्यापकता और विस्तार को नही समझा गया। किन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि पूर्ण व्यापकता की खोज मे उस परम सत् की वास्तविकता को कम कर दिया जाये। अर्थात् भौतिकवादी आधार को स्वीकार करते हुए भी आध्यात्मवादी आधार के महत्व को कम नही किया जा सकता। यह सच है कि भौतिकवाद ने ईश्वरीय प्रयोजन की सिद्धि मे

महान योग दिया है। उसी तरह हमे यह भी स्वीकार करना होगा कि सन्यासवाद के आदर्श ने भी महान सेवा की है। अन्तिम सामजस्य मे हम भौतिक विज्ञान के सत्यो और उसके वास्तविक उपयोगी तत्वो का निश्चय ही सरक्षण करेगे, चाहे हमे उसके विद्यमान सभी रूपो की तोड–मरोड अथवा परित्याग ही क्यो न करना पडे और इससे भी अधिक सावधानी हमे प्राचीन आर्यों की विरासत को सुरक्षित रखने मे बरतनी पडेगी। चाहे वह विरासत कितनी ही न्यून अथवा अवमूल्यित क्यो न हो गई हो।''[51]

श्री अरविन्द का अध्यात्मवाद जगत का त्याग नही करता है। श्री अरविन्द का कथन है कि उनके द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मवाद और भौतिकवाद का यह समन्वय अरस्तू और हेगल की भाति केवल एक बौद्धिक विचार नही है, अपितु मनुष्य के लिए एक व्यावहारिक योजना है, जिसके अन्तर्गत वे अपने भौतिक प्रयोजनो को त्यागे बिना परम सत्य की प्राप्ति की दिशा मे आगे बढ सकते है।[52]

पत जी पर महर्षि अरविन्द के दर्शन का बहुत अधिक प्रभाव पडा है। प्रगतिवादी युग मे जीवन के भौतिक मूल्य पत के सस्कारी व्यक्तित्व को तृप्त नही कर सके। मार्क्सवाद के प्रति उनमे श्रद्धा है। उसके जनहित अथवा सर्वहारा पक्ष को वे स्वीकार करते है, पर वर्ग क्रान्ति का उसका रूप उनको मान्य नही। वस्तुत मार्क्सवाद की दृढता और कठिनता पत के कोमल आस्थावादी व्यक्तित्व के लिए अपेक्षित नही है। भौतिक सघर्ष, निरीश्वरवाद और अनात्मवाद, पत जैसे आस्थि कामना व्यक्ति के लिए परितोष प्रदान करने वाला नही हो सकते। अतः पत का आस्थिक ह्रदय रहस्यवाद और अध्यात्मवाद की ओर पुन उन्मुख हुआ। उत्तरा की भूमिका मे पत ने अपने लिए अरविन्द की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''इस दर्शन से मेरा परिचय सन् 42 के आस–पास हुआ, जबकि द्वितीय विश्व युद्ध का चक्र चल रहा था और जो मेरी मन स्थिति के लिए अत्यन्त उहापोह का युग था।''[53] किन्तु इसके साथ ही इन्होने यह भी कहा है कि अरविन्द दर्शन के सम्पर्क मे आने के पूर्व मेरे भीतर कुछ ऐसी नवीन अनुभूतियो उदित होने लगी थी जिनकी पुष्टि अरविन्द दर्शन से अच्दी तरह हो गई।

''अपनी नवीन अनुभूतियो के लिए, जिन्हे मै अपनी सृजन चेतना का स्वप्न सचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था, मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक

तथा आध्यात्मिक आलम्बन की आवश्यकता थी। इन्ही दिनो मेरा परिचय श्री अरविन्द के 'भागवत जीवन' (दि लाइफ डिवाइन) से हो गया। इसके प्रथम खण्ड के पढते समय मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे अस्पष्ट चितन को अत्यन्त सुस्पष्ट, सुगठित एव पूर्ण दर्शन के रूप मे रख दिया गया है।''[54] इससे स्पष्ट है कि छायावाद युग मे श्री अरविन्द दर्शन से परिचय न होते हुए भी पत जी के विचारो मे श्री अरविन्द दर्शन के तत्व मौजूद थे और वे तत्व थे 'भूत और आत्मा का समन्वय'—

''जड चेतन है एक नियम के वश परिचालित
मात्रा का है भेद उभय है अन्योन्याश्रित।''[55]

पृथ्वी पर स्वर्ग लोक की कल्पना आध्यात्मिक अथवा लोकोत्तर मानवता की सृष्टि तथा बहिरत्तर क्रान्ति द्वारा सामूहिक मुक्ति।

जड चेतन के इसी समन्वय को ध्यान मे रखकर पत ने युगवाणी मे (1939) मे कहा था—

''भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहा आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।''[56]

इसी प्रकार अरविन्द के सम्पर्क मे आने से पूर्व उन्होने यह अनुभव कर लिया था कि पदार्थ (Matter) और चेतना (Sprit) नदी के दो किनारो के समान है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एव विकसित होता है। अत सत्य या तो भूत और आत्मा के समन्वय मे है या उससे परे है—

''बहिरतर आत्मा भूतो से है अतीत का वह तत्व।
भौतिकता आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यथित विश्व के स्थूल—सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।''[57]

पत ने 'युगवाणी' मे बहिर्जीवन के साथ अन्तर्जीवन के सगठन की आवश्यकता पर बल दिया है और मार्क्सवाद के लोक सगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक उर्ध्व आदर्शवाद दोनो का समन्वय करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि पत जी ने भौतिकवाद के सिद्धान्तो का जहा समर्थन किया है। वहा उनका आध्यात्मवाद के साथ समन्वय एव सश्लेषण करने का भी प्रयत्न किया है।

युगवाणी मे भौतिकता को प्रधाना देने के कारण पत जी ने लिखा है–

"जीवन का चिर सत्य नही दे सका मुझे परितोष,
मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती, सूक्ष्म बीज से कोष।"[58]

किन्तु आध्यात्मिकता के पक्ष मे सकीर्ण भौतिकवादियो को उन्होने चेतावनी भी दे दी–

"आत्मवाद पर हॅसते हो भौतिकता का रट नाम,
मानवता की मूर्ति गढोगे तुम सवार कर चाम।"[59]

इसी प्रकार 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि', तथा 'उत्तरा' मे आध्यात्मिकता को प्रधानता देने के कारण उन्होने जड भौतिक वादियो का मजाक उडते हुए जड–चेतन की एकता की विज्ञप्ति भी दे दी है–

"फिर भी यदि जडता तुमको प्रिय, उनको चेतनता, दुख नितान्त,
है सत्य एक, जो जड चेतन, क्षर, अक्षर, परम, अनन्त सान्त।"[60]

जड–चेतन का समन्वय श्री अरविन्द दर्शन की मौलिक देन है। अत पत जी के जीवन दर्शन मे श्री अरविन्द के प्रभाव से जड–चेतन का उक्त समन्वय भिन्न–भिन्न द्वन्द्वो यथा तम–प्रकाश, मर्त्य–अमर, जड–चेतन, शरीर–आत्मा, सत–असत, श्रेय–प्रेय, इह–पर, स्थूल सूक्ष्म, व्यक्ति–विश्व, अद्य –ऊर्ध्व, बहि –अन्तर, स्वर्ग–धरणी, विद्या–अविद्या, बुद्धि–हृदय आदि के रहस मिलन के रूप मे व्यक्त हुआ है–

"हो रहा स्वर्ग से धरणी का जड से चेतन का रहस मिलन।
भू स्वर्ग एक हो रहे शनै सुरगण नरतन करते धारण।।"[61]

इस प्रकार से एक अन्य उदाहरण –

"तम प्रकाश हो, जड चेतन हो, इन्द्रिय हो, आत्मा, तन, मन हो,
मर्त्य अमर को एक पाति मे पूरक मान बिठाओ।"[62]

पत को श्री अरविन्द दर्शन द्वारा यह ज्ञात हो गया कि जड विज्ञान और चेतना का सचरण दोनो लोक जीवन के विकास मे बाधक न होकर सहायक किवा आवश्यक है। इस प्रसग मे ससार से विमुख करने वाले सन्यास मार्ग का भी विरोध किया है–

"भू पर सस्कृत इन्द्रिय जीवन, मानव आत्मा को रे अभिमत,
ईश्वर को प्रिय नही विरागी, सन्यासी जीवन से उपरत।"[63]

क्योकि जीवन की शोभा जड चेतन की धूप छाह से ही है–

"जड चेतन की धूप छाह से जीवन शोभा का मुख गुण्ठित।"[64]

भौतिकता और आध्यात्मिकता के उक्त समन्वय को उन्होने भागवत जीवन माना है–

"जन भू पर करना निर्मित नव जीवन बहिरतर सयोजित,
एक मनुज हो, एक धरा हो, यही भागवत जीवन निश्चित।"[65]

इसी प्रकार श्री अरविन्द के आत्म विकासवादी साधना एव दिव्य जीवन का प्रचुर प्रभाव पत जी पर देखा जा सकता है–

"जनमन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
सस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलम्बित।"[66]

इसी प्रकार जैसे श्री अरविन्द ने दिव्य जीवन के लिए आत्मिक एक्य की अनुभूति को आवश्यक माना है पत जी ने भी भावी सस्कृति के निर्माण के लिए आत्म एक्य को नीव के रूप मे अपनाया है–

"आत्म एक्य हो नीव, मनुष्य समाज का भवन
स्वर्गोन्नत हो, मुक्त व्यक्ति रूचि के वातायन।"[67]

पत भी श्री अरविन्द की भाति आत्मा को जागृत कर उसे भीतर से दीपित करने के पक्ष मे है, किन्तु इसके साथ ही वे उसके बाहरी विस्तार और विकास को भी नितान्त आवश्यक मानते है–

"मानव आत्मा को जाग्रत हो भीतर से होना दीपित,
बाहर से विस्तृत नव विकसित।"[68]

वास्तव मे पत जी को आदर्श व्यक्तियो द्वारा आदर्श सस्कृति एव समाज की स्थापना अभीष्ट है और उसके निर्माण के लिए, भूमि के रूप मे उन्होने अरविन्द दर्शन के जड–चेतन की एकता, आरोहण–अवरोहण, मन–अतिमन, तथा दिव्य जीवन के सिद्धान्त तथा सन्देश को ग्रहण किया है। अत कभी वे जड चेतन की एकता से नव हीरक दल भू जीवन निर्मित करना चाहते है, कभी मन के ऊर्ध्व सचरण और दिव्य चेतना के आवाहन द्वारा मर्त्य भूमि को स्वर्ग बना देना, अथवा भू और स्वर्ग को एक कर देना चाहते है, और कभी आत्मा के स्वर्णिम प्रकाश से भू जीवन के प्रागण को शोभा मगल से भर देना चाहते है।

श्री अरविन्द का कहना है कि हमारे वर्तमान प्रकृति जीवन मे ऐसा प्रतीत होता है कि ससार ही हमारी सृष्टि कर रहा है, किन्तु आध्यात्मिक जीवन मे हमे स्वय अपनी और अपने ससार की सृष्टि करनी होगी। सृष्टि के इस नवीन नियम के अनुसार आन्तरिक जीवन ही प्रधान होगा शेष उसी का अस्तित्व और परिणाम। हमारी आत्मा, मन और प्राण तथा मनुष्य जीवन का पूर्णता की ओर अग्रसर होने से इसी का आभास मिल रहा है। अन्तर की इस साधना अथवा उत्क्रान्ति का दिग्दर्शन पंत जी ने नीचे की पक्तियो मे कराया है–

"सम्पूर्ण जगत का रहस्य हो रहा रूपान्तर,
आलोकित होते निश्चेतन उपचेतन स्तर,
हँसता चिन्मूर्त प्रकाश शुभ्रमानव तनधर
चैतन्य विम्ब, नव सूर्य चन्द्र शत रहे निखर।
यह अधिमानस की क्रान्ति धरा तल पर बिम्बित,
आत्मा को घेरे रजत शान्ति का व्योम अमित।
सयुक्त हो रहा विश्व चेतना मे विकसित,
मानवता को होना भीतर से सयोजित।"[69]

इस प्रकार पंत जी मन और आत्मा के विकास द्वारा इस धरा को स्वर्ग बना देना चाहते है। इसी से वे बार–बार कहते है कि स्वर्ग भू से दूर नही है, विश्व आनन्द से भरा हुआ है, और यह निश्चित है कि इस धरा को छोडकर कही भी स्वर्ग सभव नही है।

इस प्रकार हम देखते है कि पत जी के सम्पूर्ण काव्य मे आन्तरिक क्रान्ति और सामजस्य का स्वर अत्यन्त प्रखर है और उस सामंजस्य मे श्री अरविन्द दर्शन का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार श्री अरविन्द ने सामूहिक आध्यात्मिक जीवन के लिए एकता, सामजस्य और समता के सिद्धान्त को अनिवार्य घोषित किया है, उसी प्रकार पंत जी ने भी उसे (एकता, सामजस्य और समता) अपने नव चेतनावादी, सामाजिक सास्कृतिक जीवन के लिए आवश्यक प्रमाणित किया है।

अब हम उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप मे कह सकते है कि पत जी का कवि गत्यात्मक है, जो बाहरी भीतरी परिस्थितियो से सदैव प्रभावित होता रहा है। उक्त बाहरी भीतरी परिस्थितियो को सामजस्य के स्वर्णिम सूत्र मे

सग्रथित करने के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहा है अत उनके विकासशील कवि ने श्री अरविन्द दर्शन को भी सामजस्य की भूमिका मे ग्रहण किया हे।

(ग) महादेवी वर्मा :

महादेवी की कविता पीडा की निष्काम दीपशिखा है। 'दीप शिखा' मे उनकी कव्यागत भावधारा का ही उत्कर्ष दिखाई पडता है। उनके काव्य की यह विशेषता रही है कि वे आरम्भ से अन्त तक रहस्यवादी बनी रही। आन्दोलनो के झझावत तथा विचारो के तूफान आकर चले गये, मगर महादेवी का काव्य उनसे अप्रभावित रहा। प्रेम उनका मुख्य विषय है और करुणा की भावना प्रेरक शक्ति। कवियत्री ने सयोग और वियोग मे उभरने वाले प्रेम के अनेक कोणो को अपने अनुभव के आलोक मे देखा है। वेदना महादेवी की मूल सवेदना है, यह वेदना विरह जन्य है। करुणा, वेदना, और निराशा से आक्रान्त इनका प्रारम्भिक काव्य दीपशिखा मे कुछ आलोक पा सका है–

"अब बुझे दीपक जला लूँ।
घिर रहा तम आज दीपक रागनी अपनी जगा लूँ।

जिस प्रकार जगन्नाथ रत्नाकर आधुनिक युग मे जन्म लेकर भी मध्यकालीन जीवन जीते थे, उसी प्रकार महादेवी इस धरती पर रहते हुए भी किसी दूसरे लोक मे सास लेती थी। सघर्ष और विघटन के इस युग मे महादेवी का पीडामय काव्य पढकर यही कहना पडता है कि–

"अश्रुमय कोमल कहा तू आ गई परदेशनी री।"

महादेवी के कविता–सग्रह– नीहार, रश्मि, नीरजा, साध्यगीत और दीपशिखा उनके काव्य विकास के क्रमिक सोपान है। नीहार, नीरजा, रश्मि और साध्य गीत का इकट्ठा सग्रह 'यामा' है। जिस पर सन् 1983 ई० मे ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। नीहार मे विषाद तथा भावो का धुधलापन है, रश्मि मे प्रियतम का स्वरूप स्पष्ट होने से आशा भरी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति है। नीरजा मे आनन्द विकसित हृदय कोमल वेदनाश्रुओ से भीगा है। सांध्यगीत साधना पूर्ण होने से पूर्व की स्थिति अर्थात् शात, स्थिर, मिलनभाव का सूचक है और दीपशिखा मे प्रिय विरह मे जल–जलकर साधना मे अडिग रहने के सकेत है। दीपशिखा महादेवी जी की विशिष्ट कृति है।

महादेवी के काव्य की यह विशेषता रही है कि वे आरम्भ से अन्त तक एक रस रही है। उनमे हमे कही भी व्यवधान नही मिलता। बीच मे यद्यपि उन्होने छायावाद का विरोध किया था, परन्तु फिर भी उनके मूल रहस्यवादी स्वर मे हमे कही भी अन्तर नही दिखाई पडता है। वे आरम्भ से अन्त तक अपने अज्ञात रहस्यमय प्रियतम की एकाकिनी विरहणी बनी रही है, और उसी के साथ अपने भावनाओ की आख मिचौली खेलती रही है। इसी कारण उन्हें आधुनिक मीरा कहा जाता है। उन पर बुद्ध की करुणा एव दु खवाद तथा विवेकानन्द एव रामतीर्थ के दार्शनिक विचारो का गहरा प्रभाव पडा है। इसी कारण उनके काव्य मे परमतत्व, आत्मतत्व, और प्रकृति तत्व की प्रधानता रही है। उनके हृदय की वैराग्य भावना क्रमश प्रबल होती गयी है। नीहार मे इन तीनो तत्वो का प्राधान्य मिला है, 'रश्मि मे अद्वैतवाद का प्राधान्य है। उस असीम अज्ञात ने सृष्टि का निर्माण किया और अन्त मे वह उसी असीम अज्ञात मे लीन हो गई।

"तुम्ही मे सृष्टि, तुम्ही मे नाश।"

इसी आधार पर उन्होने आत्मा–परमात्मा की अभिन्नता मानी है।

"मै तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश।"

अन्त मे–

"भूल अधूरा खेल, तुम्हीं मे होती अर्न्तधान।"

नीहार मे उनका काव्य अनुभूति प्रधान हो उठा है। साध्यगीत मे उनकी वेदना मिश्रित साधना गीतो का रूप धारण कर सुखमय बन जाती है। यहा आकर सुख–दु ख का ऐकीकरण हो जाता है।

विषय वस्तु की दृष्टि से महादेवी की रचनाओ को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है–(1) रहस्यवादी रचनाए। (2) प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ। (3) गीतिकाव्य।

महादेवी की रहस्यवादी रचनाओं की मूल भावना अलौकिक प्रेम की रही है। महादेवी ने अपनी इस मधुमयी पीडा का प्रकाशन प्राय ही प्रकृति के माध्यम से किया है। महादेवी के आधुनिक युग के सुन्दर, सरस, करुणापूर्ण गीतो मे मीरा की सी वेदना, करुणा और मार्मिकता मिलती है। महादेवी मे चित्रकला और

सगीत के मिश्रित प्रभाव ने ऐसा सम्मोहन उत्पन्न कर दिया है कि हमारी चेतना नाद माधुरी का पान करती हुई एक छाया लोक मे खो जाती है।

इन कवियो के अतिरिक्त उत्तर छायावाद मे जानकी वल्लभशास्त्री, राम कुमार वर्मा (अजलि, रूपराशि, चित्ररेखा, चन्द्र किरण और एकलव्य), सुमित्रा कुमारी सिन्हा (विहग, पथिनी) और विद्यावती कोकिल – (अकुरिता, और सुहागिन') आदि का नाम भी गिनाया जा सकता है।

(II) व्यक्तिवादी गीत कविता :

जैसा कि छायावाद के विवेचन मे बताया जा चुका है कि वैयक्तिकता अर्थात अपनी व्यक्तिगत लालसाओ, आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति, छायावाद की एक प्रधान विशेषता रही है। छायावाद मे असतोष और विद्रोह की भावना प्रबल रही थी, जिसने सम्पूर्ण पुरानी रूढ मान्यताओ का विरोधकर स्वच्छन्दतावाद को जन्म दिया था। छायावाद के उत्तरार्ध मे एक वैयक्तिकता प्रधान और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति एक नये रूप में प्रकट हुई थी। इस काल में कुछ ऐसे नये कवि सामने आये जो घोर रूप से अहवादी अत व्यक्तिवादी थे। ये सभी प्रकार की सामाजिक, धार्मिक मान्यताओ का विरोधकर, अपनी अतृप्त आकाक्षाओ की तृप्ति करना ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य मानते थे। सन् 1930 ई० से लेकर 1935 ई० तक का समय भयकर राजनीतिक निराशा, गोलमेज कान्फ्रेन्स की असफलता, क्रान्तिकारियो का दमन, गॉधीवाद की अतिशय नैतिकता का युग रहा था। इस स्थिति ने दो प्रकार की विद्रोह भावना को जन्म दिया था। एक प्रकार की विद्रोह भावना वह थी जिसमे कुछ नवयुवक सामाजिक नैतिकता प्रधान मान्यताओ का विरोध कर, केवल अपने ही सुख–आनन्द की कामना को अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थे। वे समाज के बधनो को अपनी व्यक्तिगत आकाक्षाओ की पूर्ति मे बाधक समझते थे, इसलिए उनका विरोधकर मानसिक उन्मत्त विलास के गीत गा उठे। इसी को हिन्दी साहित्य मे 'हालावादी' साहित्य कहा गया। दूसरे प्रकार की विद्रोह भावना वह थी–जो सभी प्रकार के अत्याचार, शोषण आदि का विरोध कर जन–सामान्य अर्थात् सम्पूर्ण समाज की उन्नति और प्रगति की समर्थक थी। यह प्रगतिवादी साहित्य धारा कहलाई। पहली धारा व्यक्तिवादी भावनाओ को प्रकट करती है तो दूसरी समाजवादी। दोनो का लक्ष्य नैतिक मान्यताओ को तोडकर अधिकाधिक सुख भोगना था।

(क) छायावादी काव्य मे उमर खैय्याम के भोगवादी (हालावादी) दर्शन का प्रभाव -

छायावाद युग मे उमर खैय्याम की रूबाइयो की धूम सी मच गई थी। उन्ही दिनो भारत वर्ष, प्रवासी, माधुरी, सरस्वती, सुधा, वीणा आदि पत्रिका व पत्रो मे उमर खैय्याम पर अनेक सुन्दर लेख व चित्र प्रकाशित हुए। मैथिलीशरण गुप्त, केशव प्रसाद पाठक बलदेव प्रसाद मिश्र, डॉ० गया प्रसाद गुप्त, बच्चन आदि अनेक व्यक्तियो ने उमर की रूबाइयो का प्रामाणिक अनुवाद हिन्दी मे प्रस्तुत किया। पत ने मधुज्वल नाम से सन् 1929 ई० मे उमर की रूबाइयो का हिन्दी मे अनुवाद किया। उस काल के साहित्यकारो ने उमर के जीवन दर्शन मे भारतीय जीवन धारा की झलक पाई थी। उमर के जीवन दर्शन को हिन्दू धर्म के मायावाद की भूमिका मे रखकर परखने की इस प्रवृत्ति से हिन्दू–समाज मे उसके प्रति राग उत्पन्न हो गया, साथ ही छायावाद के क्षुब्ध और असन्तोष पूर्ण वातावरण मे उसके प्रसार के लिए सुदृढ दार्शनिक आधार भी मिल गया।

उमर की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह एक महान चिन्तक, विचारक, ज्योतिषी और दार्शनिक कवि था। धर्म के क्षेत्र मे ऐकेश्वरवादी था। भौतिक जगत की खोज करते–करते वह आध्यात्म की ओर भी उन्मुख हुआ था। दार्शनिको की भाति उसे भी यह जिज्ञासा हुई कि हम कौन है, कहा से आये, और कहा जायेगे। किन्तु बुद्धि द्वारा इन प्रश्नों का समुचित उत्तर न पाने के कारण वह सूफियो की रहस्य साधना की ओर उन्मुख हुआ। परन्तु उसके निराशावाद को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उस मार्ग मे भी उसे इप्सित तुष्टि नही मिली। जिस अल्लाह मे कोई बुराई नही है, उसी अल्लाह द्वारा निर्मित इस ससार मे बुराई कहां और किधर से प्रवेश कर गई यह विकट समस्या उसके सामने सदा बनी रही। अत वह जीवन पर्यन्त सन्देह वादी बना रहा। उमर स्वाधीन चिन्तन का पक्षपाती था। किसी बात को, जो तर्क सम्मत न हो, मान लेना उसके लिए कठिन था। अत उसने धर्म गुरूओ के पाखण्ड और धार्मिक अधविश्वासो का खण्डन किया। ज्ञान के अगाध सागर मे डुबकी लगाकर उसने जीवन की निस्सारता का अनुभव किया। ससार की क्षणभगुरता को देखकर वह अत्यन्त विचलित व विक्षुब्ध हुआ। सासारिक आपदाओ एव चिन्ताओ से मुक्ति पाने के लिए उसने भोगवाद का सबल समर्थन किया। उमर की इन समस्त प्रवृत्तियो को पनपने के लिए छायावाद की अध्यात्मवादी, बुद्धिवादी, निराशावादी

एव विद्रोहवादी (क्रान्तिकारी) वातावरण मे उर्वर भूमि मिल गई। छायावाद के निराश कवि के लिए चार्वाक दर्शन का यह सिद्धान्त कि–

"यावज्जीवेत् सुख जीवेत ऋणंकृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत ।।
उसकी भोग वृत्ति को उकसाने मे कम सहायक न हुआ होगा।

व्यक्तिवादी धारा हालावादी थी। हिन्दी के इन नव युवा कवियो को फारसी के प्रसिद्ध कवि उमर खैय्याम की रूबाइयो के रूप में अपनी अतृप्त आकाक्षाओ की तृप्ति का एक सरस माध्यम मिल गया। एक अंग्रेज फिट्जराल्ड उमर खैय्याम की रूबाइयो का अग्रेजी अनुवाद कर बहुत प्रसिद्ध हो चुका था, परन्तु उसका यह अनुवाद मूल से बहुत भिन्न और विकृत था। लौकिक खुमार मे डूबी हुई उसकी दृष्टि उमर खैय्याम की गहन आध्यात्मिकता और उच्च जीवन दर्शन को समझने मे असमर्थ रही। हिन्दी मे फिट्जराल्ड के इसी विकृत अनुवाद के माध्यम से उमर खैय्याम की रूबाइया आयी थी और बच्चन जैसे कवि इसी की मादक धारा मे निमग्न होकर सुरा और सुन्दरी के गीत गा उठे। हिन्दी मे हरिवश राय बच्चन हालावाद के प्रवर्तक माने जाते है।

हिन्दी मे हालावाद 1933–36 ई० तक केवल चार वर्ष का जीवन व्यतीत करके समाप्त हो गया। हालावाद के उत्पत्ति, विकास और समाप्ति की कहानी बच्चन की तीन पुस्तको मे ही सीमित होकर रह गई। ये तीन पुस्तके है–'मधुशाला', मधुबाला' 'मधु कलश', इन पुस्तको मे सुरा सुदरी के माध्यम से अतृप्त लालसा तृप्त करने की बात है फारसी मे शराब, जाम, साकी, आदि शब्द सूफियो ने आध्यात्मिक अर्थ मे प्रयुक्त किए है। लेकिन बच्चन द्वारा इसका लौकिक अर्थ ही ग्रहण किया गया।

"इस पार प्रिये हम है मधु है उस पार न जाने क्या होगा?"

हिन्दी मे उमर के भोगवाद का सबसे अधिक प्रभाव बच्चन पर पडा। इसका कारण यह है कि उमर की भाति बच्चन ने भी आध्यात्म के प्रति सन्देहवादी दृष्टिकोण अपनाया है। जीवन मे उन्हे कोई विश्वसनीय मजिल दिखाई नही पडी। हताश होकर वे अपने सस्कारगत विश्वास खो बैठे। अत उन्हे सर्वत्र अधकार ही अधकार दिखाई देने लगा –

"तेज का विश्वास था उर मे कभी, अब तो अधेरा,
आज तो सन्देह शका ने लिया है डाल डेरा,
पथ बताये कौन, सब तो है भटकते भूलते से,
मच रहा है शोर, मत है ठीक मेरा, ठीक मेरा
हर दिशा की ओर बढता, लौटता, फिर दौडता है,
है किधर मजिल न पाया जान जीवन यान मेरा।"[70]

इस प्रकार पथभ्रष्ट होकर उन्होने स्वर्ग और अमरता दोनो को ठुकरा दिया—

"अमरो ने अमृत दिखलाया
दिखलाया अपना अमर लोक।
ठुकराया मैने दोनो को।"[71]

परिणामत ईश्वर व स्वर्ग की सत्ता मे विश्वास खोने के पश्चात् उन्हे आत्मा की अमरता मे भी सन्देह होने लगा—

"मिट्टी का तन, मस्ती का मन, क्षण भर जीवन, मेरा परिचय।"[72]

इस प्रकार ईश्वर, परलोक, और मरने के बाद जीव के अस्तित्व को अस्वीकार कर उन्होने 'देहात्मवाद' तथा इन्द्रियवाद को स्वीकार किया—

"तन भी क्षणभगुर नौका पर चढकर, हे यामी तू आया,
तूने नाना विध नगरो को होगा जीवन तट पर पाया।
जड शुष्क उन्हे देखा होगा रक्षित सीमित प्राचीरो से,
इस नगरी मे पाई होगी अपने उर की स्वपिनल छाया,
है शुष्क सत्य यदि उपयोगी तो सुखदायक है स्वप्न सरस,
सुख भी जीवन का अश अमर, मत जग से डर, कुछ दर ठहर।
हे आज भरा जीवन मुझमे, है आज भरी मेरी गागर।"[73]

किन्तु इस क्षेत्र मे भी इन्हे निराश ही होना पडा। उनकी वासना की तृप्ति यहा भी न हो सकी। अत उन्होने कहा—

'अल्पतम इच्छा यहा, मेरी बनी बन्दी पडी।
विश्व क्रीडा स्थल नही रे, विश्व कारागार मेरा।[74]

और यह ठढी आह भरी कि :—

"विश्व पूरा कर सका है, कौन सा अरमान मेरा।"[75]

इस प्रकार उन्हे जीवन मे सुख कणो के बदले दु ख के अश्रुकण ही हाथ लगे। ऐसी ही विकट परिस्थिति मे बच्चन ने उमर के क्षणिक भोगवाद का आह्वान किया। जो उन्हे वास्तविक जीवन मे न प्राप्त हो सका उसकी पूर्ति उन्होने 'हाला' द्वारा करनी चाही। इसी से उन्होने अपनी 'हाला' को जीवन, स्फूर्ति, उत्साह, प्रेम, सौन्दर्य वासना आदि का प्रतीक माना है। अत उसे ही उमर की भॉति जीवन के अवसाद को विस्मृत करने के लिए पुकारा है।

"मै कहॉ हूँ और वह, आदर्श मधुशाला कहा है।
विस्मरण दे जागरण के साथ, मधुबाला कहॉ है।"[76]

इस प्रकार बच्चन के 'हलावाद' का मूल उमर की भाति ही जीवन के 'हलाहल' मे ही निहित है–

'मुझे आया है मधु का स्वाद, हलाहल पी लेने के बाद।'[77]

जीवन की क्षण भंगुरता, मृत्यु आदि को भुलाने के साधन रूप ही उन्होने सुरा और साकी को अपनाया है–

"सुरा है जीवन का वह स्वप्न फडकता देख जिसे ससार,
हलाहल जीवन का कटु सत्य जिसे छू करता हाहाकार।
अमृत है जीवन का आदर्श मगर पाता है उसको कौन?
और जो करता भी है प्राप्त साध वह लेता है व्रत मौन।"[78]

इस प्रकार बच्चन ने सुरा से डूबकर या मदिरा के सहारे अपने को, अपने दुख को एव दुखद समय को अपने गम को भूल जाने की बात की है। हालावाद का कवि जगत और समाज से तटस्थ हो अपने अह के सकीर्ण दायरे मे डूबा हुआ था। विश्व से उसे कोई मतलब नहीं था। अपनी इस वेदना को भुलाने के लिए कवि ने असंख्य मधुमय गान गाये परन्तु समाज उसे स्वीकार न कर सका। निशा निमत्रण मे उन्हे साफ मालूम पड गया कि –

"आज मुझसे दूर दुनिया।"

ससार ने उन्हे सहानुभूति नहीं दी और अन्त मे संसार की जीत हुई, कवि हार गया, मिट गया।

"जय हो हे ससार तुम्हारी।
जहा झुके हम, वहां तनो तुम",
जहा मिटे हम, वहा बनो तुम,

तुम जीते उस ठौर
जहा पर हमने बाजी हारी।''

हालावादी काव्य व्यक्तिगत विद्रोह की करुण असफल परिणति है। यह व्यक्ति पर समाज की विजय थी। इसमे छायावादी कविता जैसा सकोच रहस्यात्मकता और आदर्शवादिता नही है, साहस के साथ सीधे साफ तौर पर अपने निजी प्रेम सवेग तथा सुख–दु ख को कहने की आकुलता है। छायावादी एव व्यक्तिवादी कविता प्राय मै के माध्यम से अपना अनुभव कराती है, किन्तु छायावाद का मै सकोच या मर्यादा के आतक का अनुभव करने के कारण तीव्रता से आलोकित होने के स्थान पर मन्द–मन्द दीप्त होता है। जबकि व्यक्तिवादी गीत कविता का 'मै' अपने समूचे राग विराग के साथ निर्व्याज भाव फूट चलता है।

बच्चन का परवर्ती काव्य, हालावादी तीन काव्य सग्रहो—मधुशाला, मधुबाला, और मधुकलश, मे वर्णित पूर्ववर्ती भावो को निर्ममता पूर्वक छोडकर यथार्थ की नयी दुनिया मे प्रवेश किया। यद्यपि बच्चन अपने 'निशा निमत्रण', 'एकान्त सगीत', 'आकुल अन्तर', 'मिलनयामिनी' प्रणय पत्रिका आदि काव्य सग्रहो के गीतो और कविताओ मे यौवन और प्रेम के गीत गाते रहे थे, परन्तु इनमे उद्यम लालसा के स्थान पर विषाद का स्वर अधिक उभरने लगा था। परन्तु 'बगाल का अकाल', 'सूत की माला', 'खादी के फूल', 'चार खेमे चौसठ खूट', आदि मे उनका अहवादी निरकुश व्यक्तित्व अपनी वैयक्तिक परिधि को त्याग सामाजिकता के साथ समझौता करता दिखाई देता है।

''प्रार्थना मतकर, मतकर, मतकर
युद्ध क्षेत्र मे दिखला भुजबल।
रहकर अविजित अविचल प्रतिपाल
मनुज पराजय के स्मारक है।
मठ मस्जिद गिरजाघर।''   (एकान्त सगीत)

यह बच्चन का परिवर्तित रूप है। लेकिन यह सत्य है कि बच्चन का यह परवर्ती समाज परक काव्य अपनी पूर्व मादक कला को खो, नीरस और गद्यमय सा बन गया है। बच्चन यद्यपि आज भी निरन्तर काव्य सृजन करते रहते हैं, परन्तु हिन्दी साहित्य में बच्चन केवल हालावादी साहित्य के लिए ही स्मरण किए जाते रहेगे।

उमर खैय्याम के इस भोगवाद को बच्चन के अतिरिक्त भगवती चरण वर्मा, राम कुमार वर्मा, अचल, सुमन आदि ने भी अपनाया है। खैय्याम की भाति भगवती चरण वर्मा भी जीवन की कटुता विषाद तथा क्षणिकता से भयभीत हो अपने प्रेयसी से कहते है—

"पीने दे—पीने दे यौवन की मदिरा का प्याला,
मत याद दिला कल की, कल है कल आने वाला।
है आज उमगो का युग, तेरी मादक मधुशाला।
पीने दे जी भर रूपसि अपने पराग की हाला।"[79]

खैय्याम की तरह जीवन और जगत की परिवर्तनशीलता तथा अस्थिरता ही उनके भोगवाद का आधार है एव मय एव मयखाने की विस्मृति का आस्वाद भी इन्हे भरपूर मिला है—

"मधु छलक रहा था उर मे मै था सुख का दीवाना।
अलसाई सी आखो मे था झूल रहा मै खाना।
पागल सा खेल रहा था विस्मृत से मै मनमाना।
हर रग उमंग से पूरित हर राग यहा मस्ताना।"[80]

कवि की समझ मे जिन्दगी सीमित है, प्रेम बैर धोखाँ है सब कुछ माया है, अत भ्रमने का मार्ग ही सीधा है, इसी को उम्र को तमाशबीन में काटने तथा जीवन मे छककर छानने की उसकी सलाह है —

'जिन्दगी तुम्हारी है सीमित इतना सच है,
इससे जो कछ ज्यादा, वह सब तो लालच है।
दोस्त! उम्र काटने दो इस तमाश बीन मे,
धोखा है प्रेम—बैर इसको तुम मत ठानो,
कडवा या मीठा रस तो है छककर छानो,
चलने का अन्त नही, दिशा ज्ञान कच्चा है,
भ्रमने का मारग ही सीधा है, सच्चा है।"[81]

भगवती चरण वर्मा जी की गणना यद्यपि छायावादी कवियो मे की जाती है, परन्तु उनकी अनेक कविताओं मे प्रेम सौन्दर्य, यौवन आदि की उन्मुक्त मासल अभिव्यक्ति मिलती है। उनके 'मधुकण' 'प्रेम सगीत' 'मानव' 'रगो से मोह आदि काव्य संग्रहो मे जीवन और जगत के साथ मस्ती भरी वैयक्तिक भावनाओ का भी अकन हुआ है। जहाँ उन्होने 'प्रेम सगीत' मे हालावादी मस्ती भरे गीत

गाये है वही 'मानव' और 'रगो से मोह' काव्य सग्रहो मे मस्ती भरे वातावरण का त्याग यथार्थ की कटु कठोर भूमि पर उतर आये है। 'भैसागाडी' 'ट्राम' राजा साहब का वायुयान आदि कविताओ मे यथार्थ जीवन के कटु तिक्त रूपो के विभिन्न चित्र अकित किए हुए है।

शिवमगल सिह सुमन के अपने और पराये के ख्याल को भुलाकर मस्ती का राग अलापने का कारण, भी उमर की भाति जीवन की नश्वरता तथा प्रेम की पराजय ही है, जिस कारण ही वे मधुशाला और मौज के पथगामी बने–

> "हम मौज भरे गाने गाते, दो दिन इठलाते, इतराते।
> अपनी नन्ही मधुशाला मे, इस पथ आते उस पथ जाते
> हम किसका–किसका साथ करे सब ही चल देने वाले है।
> हम बडे विकट मतवाले है।"[82]

इसी प्रकार राम कुमार वर्मा ने भी सयोग सुख को ही सुख की राका का मनोरम काल माना है–

> "सुख की राका का केवल है एक मनोरम काल,
> आओ प्रेयसि, बैठो यह है प्रेम मिलन की डाल।[83]

वैसे महादेवी वर्मा आत्मानन्द की कवियित्री है, किन्तु उमर अथवा फारसी कविता के प्रभाव से उन्होने अपने प्रियतम को, प्याला, हाला, मधुशाला तथा साकी के रूप मे स्मरण किया है–

> "तेरा अधर विचुम्बित प्याला, तेरी ही स्मित मिश्रित हाला,
> तेरा ही मानस मधुशाला, फिर पूछू क्या मेरे साकी
> देते हो मधुमय विषमय क्या?"[84]

अन्तर केवल इतना ही है कि इन्होने उमर के प्रतिकूल सुरा के प्याले के स्थान पर विपुल वेदना के प्याले की आकाक्षा अथवा अभिलाषा प्रकट की है–

> 'जीवन है उन्माद तभी से निधियां प्राणो के छाले,
> माग रहा है विपुल वेदना, के मन प्याले पर प्याले।'[85]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी छायावादी व छायावादोत्तर कविता पर उमर के नियतिवाद तथा भोगवाद का प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न रूप मे पर्याप्त प्रभाव पडा है, किन्तु भारतीय आध्यात्मवादी चिन्तन धारा मे भोगवाद के लिए कोई स्थान नही है। अत चार्वाक दर्शन की भाति ही हिन्दी मे इस हालावाद अथवा भोगवाद का तीव्र विरोध

हुआ जिससे यह धारा बहुत दिनो तक टिक न सकी। यहा तक कि उसके प्रवर्तक बच्चन की विचारधारा मे भी आगे चलकर पर्याप्त परिवर्तन हुआ, और वे जगत व जीवन को आशावादी दृष्टि से देखने लगे। सतरगिनी मे उनके इस परिवर्तित दृष्टिकोण का सुन्दर चयन हुआ है–

"दुनिया यह स्वर्ग बेलि, दुनिया यह स्वर्ग बीज।
अश्रु स्वेद लोहू से जिसको जब सीच–सीच।
मनुज बढा लेता है, अमृत फल देता है।'[86]

रामेश्वर शुक्ल 'अचल' हिन्दी मे मासलवाद के प्रवर्तक माने जाते है। 'मधूलिका' 'अपराजिता', 'किरण बेला', 'करील', 'लाल चूनर', 'बिराम चिन्ह' आदि इनके विभिन्न काव्य सग्रह है। अचल मूलत प्रेम यौवन और सौन्दर्य के कवि रहे है। उनकी अनेक कविताओ मे उद्याम काम भावना की उन्मुक्त अभिव्यक्ति मिलती है।

"आज सोहाग हरूँ मै किसका, लूटूॅ किसका यौवन?
किस परदेशी को बन्दी कर, सफल करूँ यह वेदन?"[87]

अचल के काव्य का एक दूसरा पक्ष भी है, जिसमे जनता के दु खन्दर्द और अनेक समस्याओ का मार्मिक अकन किया गया है–

"देवत्व वधा जाता जग मे, होती पापो की मनचीती।
जो ताप धरा के धोते है, दुनिया उनका लोहू पीति।।"

ऐसी ही कविताओ के कारण अचल की गणना प्रगतिवादी कवियो मे की जाने लगी थी।

गोपाल सिह नेपाली के प्रारम्भिक गीत में प्रकृति के मार्मिक एव सीधे साधे चित्रो से सम्पन्न प्रेम सवेगो का अपना अलग ही वैशिष्ट है। पछी', उमग', 'रागिनी', 'पचमी', 'रिमझिम', नवीन आदि उनकी काव्य कृतिया है।

आर सी प्रसाद सिह मे छायावादोत्तर गीत कविता की सभी प्रवृत्तिया दिखाई पडती है। इनकी कविता के केन्द्र मे नारी है। 'कलापी' 'सचयिता' 'जीवन और यौवन' 'पाच जन्य' और प्रेमगीत इनकी काव्य कृतिया है।

शभू नाथ सिह एव नरेन्द्र शर्मा का नाम भी व्यक्तिवादी कविता की धारा मे लिया जा सकता है, शभूनाथ सिह की रूप रश्मि, छायालोक उदयाचल और दिवालोक आदि रचनाये छायावादोत्तर व्यक्तिवादी गीति कविता से प्रभावित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास पृ० 286 से उद्धृत।

2 वही, पृ० 286।

3 वही—पृ० 286।

4 डॉ० मोहन अवस्थी अद्यतन इतिहास, पृ० 286।

5 डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास।

6 महादेवी वर्मा प्रो0 मोहन अवस्थी, हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, पृष्ठ—288 से उद्धृत।

7 वही, पृ० 289 ।

8 निराला सरोज स्मृति राग विराग, पृष्ठ 91

9 निराला सरोज स्मृति राग विराग, पृष्ठ 80

10 निराला प्रेयसी शीर्षक कविता से।

11 जयशकर प्रसाद कामायनी।

12 पत हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास राजनाथ शर्मा से उद्धृत।

13 निराला सरोज स्मृति : राग विराग, पृ० 90

14 प्रसाद राजनाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास से उद्धृत।

15 निराला जागो फिर एक बार 2' राग विराग, पृ० 58।

16 महादेवी वर्मा।

17 पत बलराम तिवारी से उद्धृत।

18 प्रसाद कामायनी से उद्धृत।

19 पत युगवणी से उद्धृत।

20 निराला जूही की कली राग विराग, पृ० 48 ।

21 देखिए आधुनिक कविता का मूल्याकन इन्द्र नाथ मदान, पृ० 232 ।

22 आधुनिक हिन्दी काव्य डॉ० कमला कान्त पाठक पृ० 139 ।

23 निराला का परवर्ती काव्य रमेश चन्द्र मेहरा।

24 निराला परिमल 'भिक्षुक' कविता, पृ० 133

25 निराला परिमल विधवा कविता से।

26 निराला परिमल बादल राग (छ) राग विराग सपादित। राम विलाश शर्मा, पृष्ठ 56 (सस्करण 1997)

27 कुकुरमुत्ता 9 राम विराग, पृ० 145 ।

28 अणिमा निराला राग विराग, पृ० 131 ।

29 निराला काव्य और व्यक्तित्व धनजय वर्मा, पृ० 199।

30 निराला नये पत्ते पृ० 24।

31 आधुनिक हिन्दी काव्य डॉ० कमलाकान्त पाठक, पृ० 138।

32 तोडती पत्थर निराला अनामिका राग विराग, पृ० 199 ।

33 बेला, पृ० 87 ।

34 बेला, पृ० 70 ।

35 अणिमा, पृ० 103 ।

36 निराला नये पत्ते, पृ० 18 ।

37 पत युग पथ युगान्त पृ० 11 ।

38 युगपथ, युगान्त श्री पत, पृ० 12 ।

39 हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा प्रकाश चन्द्र गुप्त पृ० 146।

40 युगवाणी पृ० 44।

41 युगवाणी, पृ० 45 ।

42 मै और मेरी कला सुमित्रा नदन पत शचीरानी मुर्टू, पृ० 7 से उमेश चन्द्र मिश्र प्रगतिवादी काव्य, पृ० 100 ।

43 युगवाणी पत पृ० 49।

44 ग्राम्या पृ० 27।

45 युगपथ, पृ० 30

46 युगवाणी, पृ० 44

47 युगवाणी, पृ० 47 ।

48 श्री सुमित्रा नदन पत डॉ0 नगेन्द्र, पृ० 142।

49 V P Verma Modern Indian Political Thought, 195, Page-239 उद्धृत श्री अरविन्द सामाजिक विचारधारा रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, विवेक प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० 503 (1998–99) नवम सस्करण।

50 पत कला, काव्य और दर्शन–गोपाल दास नीरज, पृ० 155 ।

51 श्री अरविन्दो The Lıfe Dıvıne Val I Page-30 उद्धृत रवीन्द्र नाथ मुखजी, पृ० 507 ।

52 पत और अरविन्द दर्शन गोपाल दास नीरज, पृ० 159 ।

53 पत उत्तरा प्रस्तावना, पृ० 18 ।

54 पत उत्तरा प्रथम सस्करण, प्रस्तावना, पृ० 18 ।

55 पत युगवाणी—1939, पृ० 54 ।

56 पत युगवाणी—1939, पृ० 13 ।

57 पत युगवाणी—1939, पृ० 42 ।

58 पत युगवाणी—1939, पृ० 76 ।

59 पत युगवाणी—1939, पृ० 44 ।

60 उत्तरा प्रथम सस्करण, पृ० 88 ।

61 पत उत्तरा प्रथम सस्करण, पृ० 75 ।

62 पत युगवाणी—प्रथम सस्करण, पृ० 45 ।

63 पत युगवाणी प्रथम सस्करण, पृ० 175 ।

64 पत युगवाणी प्रथम सस्करण, पृ० 12 ।

65 पत युगवाणी प्रथम सस्करण, पृ० 173 ।

66 पत स्वर्ण किरण प्रथम सस्करण, पृ० 46 ।

67 पत स्वर्ण किरण प्रथम सस्करण, पृ० 47 ।

68 पत युगवाणी प्रथम सस्करण, पृ० 82—83 ।

69 पत युगवाणी प्रथम सस्करण, पृ० 76 ।

70 बच्चन मधुकलश पाचवा सस्करण, पृ० 30 ।

71 बच्चन, मधुबाला, पृ० 38 ।

72 बच्चन, मधुबाला, पृ० 38 ।

73 मधुकलश, पृ० 10 ।

74 मधुकलश, पृ० 18 ।

75 बच्चन मधुकलश, पृ० 27 ।

76 बच्चन, मधुकलश, पृ० 53 ।

77 बच्चन, हलाहल, पृ० 50 ।

78 बच्चन, हलाहल, पृ० 89 ।

79 भगवती चरण वर्मा मधुकरण, पृ० 25 ।

80 भगवती चरण वर्मा, मधुकण, पृ० 27—28 ।

81 अमृत लाल नागर, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, भगवती चरण वर्मा—पृ०—39 (उद्धृत डॉ० हरिनारायण सिह, छायावाद काव्य तथा दर्शन—1994), पृ० 443।

82 सुमन हिल्लोल, पृ० 99 ।

83 राम कुमारवर्मा रूपराशि, द्वितीय सस्करण, पृ० 30 ।

84 महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (1) चतुर्थ सस्करण, पृ० 56 ।

85 वही, पृ० 2 ।

86 बच्चन सतरगिनी दूसरा सस्करण—1948, पृ० 143 ।

87 रामेश्वर शुक्ल अचल — राज नाथ शर्मा—हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास पृ० 621 से उद्धृत ।

द्वितीय–अध्याय

प्रगतिवाद

प्रगतिवाद

(अ) प्रगतिवाद का स्वरूप एवं विशेषताएँ :

(क) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रगतिवादी काव्य की सज्ञा उस काव्य को दी गयी जो छायावाद के समाप्ति काल मे 1936 ई० के आस–पास सामाजिक चेतना को लेकर निर्मित होना आरम्भ हुआ था। यह नाम उस काव्यधारा का है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक मे सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली।

यद्यपि प्रगतिवाद का जनक मार्क्सवाद है, तो हिन्दी मे प्रगतिवाद का जन्म उन्नीसवी सदी मे ही हो जाना चाहिए था, क्योकि उस समय योरोप में मार्क्सवाद की धूम मची हुई थी और भारतीय लोग योरोप के सम्पर्क मे अच्छी तरह से आ चुके थे। लेकिन वास्तविकता यह है कि हिन्दी में प्रगतिवाद का जन्म 1930 ई० के बाद हुआ। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रगतिवाद हिन्दी में अपने उचित समय पर आया। जब हिन्दी जाति और साहित्य की जमीन उसके अनुकूल तैयार हो गई थी।

1935–36 ई० तक भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर आशा की एक नई किरण जागी। गॉधीवादी समझौतो के युग का अन्त एव काग्रेस का प्रभाव बढता जा रहा था। काग्रेस मे दो परस्पर विरोधी विचारधाराओ का सघर्ष प्रारम्भ हो गया था, एक का नेतृत्व नेता सुभाषचन्द्र बोस आदि करते थे जो कि कांग्रेस के पुराने नेतृत्व गॉधी, पटेल आदि की समझौतावादी नैतिकता परक राजनीति का विरोध कर समाजवादी विचारधारा का प्रबल समर्थन कर रहा था। प० जवाहर लाल नेहरू इन दोनो वर्गों के बीच मिलन सेतु का कार्य कर रहे थे। काग्रेस की युवा पीढी को पूजीपतियो का बढता हुआ प्रभाव स्वीकार नही था, वह जनान्दोलन को व्यापक रूप प्रदान कर स्वतन्त्रता की लडाई लडने का हामी था। काग्रेस का युवक वर्ग गॉधीवादी अहिसा का विरोध कर सशस्त्र सघर्ष द्वारा देश को आजाद कराने का नारा लगाने लगा, उसे कांग्रेस पर देशी पूजीपतियो का बढता हुआ प्रभाव स्वीकार नही था। विचारधाराओ की इस टकराहट के परिणाम स्वरूप देश मे एक नई समाजवादी जन चेतना का प्रसार हो रहा था।

काग्रेस का नेतृत्व अभी भी गॉधी जी एव उनके समर्थको के हाथो मे था फलत इसने नये युवक वर्ग का विरोध किया जिसका परिणाम सुभाष बाबू को काग्रेस से त्यागपत्र दे, अलग हो जाना पडा। विचारधाराओ के इसी सघर्ष का परिणाम आगे चलकर विदेश मे 'आजाद हिन्द फौज' का जन्म और 1942 ई० का उग्र जनान्दोलन था। 1946 ई० का नाविक विद्रोह और आजाद हिन्द फौज पर मुकदमा इसी के परिणाम थे। अत कहना चाहिए कि 1935–40 ई० से देश मे गॉधीवादी विचारधारा का प्रभाव क्षीर्ण और समाजवादी विचारधारा का प्रभाव प्रबल होना आरम्भ हो गया था और देश को कुछ नवीन अन्तर्राष्ट्रीय विषम परिस्थितियो और उग्र समाजवादी विचारधारा के कारण ही सन 1947 ई० मे स्वतन्त्रता मिली थी। आजादी मिलने के समय काग्रेस का नेतृत्व गॉधीवादी नेताओ के हाथ मे रहा था। यद्यपि कि गॉधी जी देश के विभाजन के सख्त खिलाफ थे लेकिन इन्ही गॉधीवादी नेताओ ने गॉधीजी के समझौतावादी नीति का अनुसरण करते हुए देश का विभाजन स्वीकार कर लिया। देश के नये कर्णधार अग्रेजो की पुरानी साम्राज्यवादी नीति और पद्धति के देशी सस्करण बन स्वतन्त्र भारत मे उसी पुरानी, विदेशी शासन प्रणाली, अर्थनीति, शिक्षा नीति आदि को यथावत कायम रखने मे जी जान से जुटे हुए थे। इस समय देश की राजनीति मे गॉधी युग पूर्णत समाप्त हो चुका था, इन परिस्थितियो मे गॉधी जी ने निराश एव हताश होकर अपनी साध्यकालीन प्रार्थनाओं मे उपदेश देना आरम्भ कर दिया था।

सत्ता प्राप्त नव कर्णधारो ने काग्रेस के समाजवादी वर्ग पर प्रहार व दमन करना आरम्भ कर दिया था, जिसके कारण स्वतन्त्रता के एक वर्ष पश्चात् ही सन् 1948 ई० मे समाजवादी काग्रेसी काग्रेस से अलग हो गये और उन्होने प्रथक समाजवादी दल बनाया।

हिन्दी साहित्य मे प्रगतिवाद का आर्विभाव सन् 1935 ई० से लेकर 1947 ई० के मध्य की इन्ही राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक परिस्थितियो मे हुआ था। इसके अतिरिक्त अनेक विदेशी जनान्दोलनो और विचारधाराओ का भी प्रगतिवाद के जन्म एव विकास मे पर्याप्त योगदान रहा था। योरोप मे साम्राज्यवादी पूजीवादी और समाजवादी विचारधाराओ का सघर्ष चल रहा था। स्पेन का गृहयुद्ध, फ्रास, जर्मनी और इटली मे हुए समाजवादी आन्दोलन और उनका दमन इसका प्रमाण है। तत्कालीन भारत इन विचारधाराओं के प्रभाव से बच

नही सका। इसलिए साहित्य पर इसका प्रभाव पडना स्वाभाविक था। जैसा कि पूर्व मे बताया जा चुका है कि समाजवादी विचारधारा का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र मे निरन्तर बढता जा रहा था, और हिन्दी के अनेक उदीयमान लेखको विचारको, कवियो आदि ने साहित्य के माध्यम से इस विचारधारा का अकन आरम्भ कर दिया था।निराला आदि अनेक पुराने कवियो के काव्य मे यह जनवादी स्वर बहुत पहले से उभरना प्रारम्भ हो गया था। गद्य के क्षेत्र मे प्रेमचन्द्र जैसे कथाकार मे यह स्वर 1920 ई० के आस–पास (प्रेमाश्रय) से ही उभरता चला आ रहा था। परन्तु सन् 1935 ई० तक इस स्वर का कोई एक स्पष्ट, सामूहिक जनवादी रूप नही बन पाया था। साहित्यकारो की भावनाएँ जनवादी तो थी परन्तु वे ये नही जानते थे कि अत्याचारो से पीडित जनता को कैसे मुक्ति दिला कर एक ऐसे समाज की स्थापना करे जो शोषण मुक्त एव भयमुक्त हो।

प्रगतिवाद ने एक सशक्त वैज्ञानिक, सुस्पष्ट, व्यावहारिक विचारधारा के रूप मे सामने आकर जनवादी कलाकारो की इस दुविधा को दूर कर उन्हे एक निश्चित पथ पर आगे बढने की प्रेरणा प्रदान किया। छायावाद अपने वैयक्तिक दृष्टिकोण के कारण व्यष्टिगत सत्य की समष्टिगत परीक्षाा मे अनुत्तीर्ण रहा था। पत के अनुसार, "छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश मे अति काल्पनिक उडान भरने वाली, अथवा रहस्य के निर्जन अदृश्य शिखर पर विश्राम करने वाली कल्पना को जन जीवन का यथार्थ चित्र अकित करने के लिए एक हरी–भरी ठोस जन पूर्ण धरती की आवश्यकता थी। क्योंकि यह नये युग की माग थी इसलिए प्रगतिवाद ने इस मांग को पूरा करने का बीडा उठाया और वह छायावाद के व्यष्टिगत दृष्टिकोण का विरोध कर समष्टिगत चेतना से अनुप्राणित हो हिन्दी साहित्य को पूर्णत जन जीवन के साथ ला मिलाया। छायावाद के रोमानी परिवेश मे आखे बन्द किए सोई हुई काव्य मेधा को प्रगतिवाद ने 'रोटी का राग, और 'क्रान्ति की आग' लेकर झकझोर कर एक नवीन समस्या, एक नवीन चेतना नग्न वास्तविकता का आलोक दिखाया। उसने छायावादी अति सूक्ष्म काल्पनिक भावनाओ का विरोध कर उसे स्थूल जगत की कठोर वास्तविकता के सामने ला खडा किया।

प्रगतिवादी चेतना के उग्र जनवादी स्वरूप को देख साहित्य के रूढिवादी आदर्शवादी कर्णधार उसी प्रकार भौचक्के रह गये जिस प्रकार छायावाद के नए

रूप को देखकर चौके थे। छायावाद यदि इस सदी के सास्कृतिक पुनर्जागरण की उपज था तो प्रगतिवाद राजनीतिक जागरण की। दोनो की प्रकृति मे अन्तर होने का यही मूल कारण है। प्रगतिवादी चेतना बुद्धिजीवियो, नव युवा साहित्यकारो और समाजवादी विचारो के समर्थको सभी को प्रभावित कर रही थी। इसके मूल मे समष्टि रूप से दो प्रभाव कार्य कर रहे थे। पहला प्रभाव उस विचारधारा का था जो सब प्रकार के शोषण और अत्याचार का विरोध कर एक समाजवादी समाज की स्थापना का स्वप्न देख रही थी, यह एक बौद्धिक सहानुभूति मात्र थी, उसे साकार करने की कोई निश्चित, वैज्ञानिक, चिन्तन और कार्य पद्धति इसके पास नही थी। दूसरा प्रभाव उस विचारधारा का था जो साम्यवादी थी, जिसके पास इन सम्पूर्ण समस्याओ का हल ओर एक सुनियोजित वैज्ञानिक कार्य प्रणाली थी। वस्तुत प्रगतिवादी साहित्य इसी विचारधारा की उपज था।

कुछ आलोचको ने इस साम्यवादी विचारधारा को विदेशी मानकर इसका विरोध किया था। उनके अनुसार यह विचारधारा भारतीय परिस्थितियो के अनुकूल नही थी। दूसरे इसमे नास्तिकता और हिसा का स्वर अत्यधिक प्रबल था। इसलिए धर्माश्रित गॉधीवादी अहिसा के साथ उसका मेल नही बैठता था। अत पुराने रूढिपथी साहित्यकार, जो प्रधानत गॉधीवादी थे। चूंकि तत्कालीन राजनीतिक परिवेश मे गॉधीवादी प्रभाव क्षीर्ण पड रहा था और उनकी समझौतावादी अहिसात्मक नीति असफल सिद्ध हो चुकी थी। फलत· देश की नई पीढी ने साम्यवादी विचारधारा का उन्मुक्त हृदय से स्वागत किया। यह विचारधारा एक नवीन एव युगानुरूप उत्साह लेकर आयी थी। इसने भारतीयो के मन मे वर्षों से व्याप्त असन्तोष एव विद्रोह की भावना को और अधिक उभारकर उनके सम्मुख एक निश्चित कार्य पद्धति प्रस्तुत की थी। आज भारत के अनिगिनत लेखको एव पाठको ने प्रगतिशील साहित्य को अपना कर इसकी भारतीयता प्रमाणित कर दी है और इस तरह उन्होने तमाम विरोधी आलोचको को मुहतोड जवाब दिया है।

(ख) प्रगतिवाद का मूल सिद्धान्त

असमान वितरण, व सभी प्रकार के शोषण का उन्मूलन ही प्रगतिवाद का मूल उद्देश्य है और लक्ष्य ऐसे समाज की स्थापना करना है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम द्वारा उसके लिए जीवन की मूलभूत सामान्य सुख

सुविधाए जुटाने के अवसर की स्वतन्त्रता हो और व्यक्ति के श्रम का शोषण किसी अन्य व्यक्ति द्वारा न किय जा सके। साम्राज्यवाद, सामन्तशाही, जमीदारी प्रथा, चूकि जनसामान्य के अबाध शोषण पर आधारित थे इसलिए प्रगतिवाद ने इनका विरोध मुखर स्वर मे किया। तथाकथित धर्म के ठेकेदार महन्त, पडे, पुजारी आदि ईश्वर के नाम पर राजाओ व जमीदारो के प्रति स्वामी भक्ति का प्रचार कर, धूर्ततापूर्ण ढग से अपने स्वार्थ के निमित्त धर्म की व्याख्या कर शोषण का माध्यम बने हुए थे। इसी कारण प्रगतिवाद धर्म, ईश्वर, पर लोक, भाग्यवाद आदि का विरोध कर समाज को इनके धूर्तता का परिचय देता हुआ जनता को सावधान करता रहता था।

प्रगतिवाद किसान, मजदूरो की एकता व सगठन का प्रबल समर्थक और पूजीपति मिल मालिको साहूकारो आदि का उग्र विरोधी था। सरकार के समर्थ व सहायता तथा स्वदेशी आन्दोलन ने पूजीपतियो के समृद्धि व विकास मे ऐतिहाकिस योगदान प्रदान किया था। प्रगतिवाद का मूल लक्ष्य समस्त शोषित जनता का सगठन कर विभिनन हथकण्डो द्वारा होने वाले शोषण का अन्त कर देना था। प्रगतिवाद के इस जनवादी स्वरूप से समाज का धनी, सम्पन्न शोषक वर्ग आतकित हो उठा था। उस समय प्रगतिवाद के दो रूप सामने आये राजनीतिक और साहित्यिक। राजनीतिक क्षेत्र मे क्रियाशील भारतीय साम्यवादी दल का विरोध विदेशी साम्राज्यवादी व देशी पूजीपतियो के समर्थक राजनीतिज्ञ कर रहे थे। साहित्यिक क्षेत्र मे पूंजीपति अपने धन के बल पर साहित्य एव उसके प्रकाशन पर हावी हो उसका विरोध कर रहे थे। परन्तु पूजी और शासन की यह सम्मिलित शक्ति भी प्रगतिवाद का समर्थ और सफल विरोध करने मे असफल रही थी और प्रगतिवाद तीव्रगति से जन सामान्य मे लोकप्रिय होता चला जा रहा था।

(ग) प्रगतिवाद के मूल तत्व

(1) यह जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

(2) इसके लिए वह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विश्लेषण कर धन को ही सम्पूर्ण विषमताओं का मूल कारण मान समाज मे उसके समान विभाजन पर बल देता है।

(3) इसका दृष्टिकोण पूर्णत भौतिकवादी है, इसलिए यह किसी भी प्रकार की, अदृश्य शक्ति, ईश्वर, परलोक कर्मवाद, आत्म की अमरता आदि मे विश्वास नही करता है। क्योकि ये उच्च वर्गों द्वारा निम्न वर्गों के शोषण के प्रमुख साधन रहे है।

(4) इसका उद्देश्य पूजीवाद, साम्राज्यवाद एव सामन्तवाद का अन्त कर ऐसे समता मूलक समाज की स्थापना करना है, जिसमे सभी को उन्नति के स्वतन्त्र एव समान अवसर उपलब्ध हो।

(5) यह कला को कला के लिए न मान उसे जीवन के लिए मानता है।

(6) यह साहित्य मे व्यक्ति के ऊपर समाज की सत्ता का अकुश चाहता है। यह प्रगतिवाद की मोटी रूप रेखा मानी जा सकती है।

इन सबके मूल मे पूजीवाद का विरोध एव वर्ग सघर्ष की भावना ही निहित थी जिसका कि प्रगतिवादी साहित्य मे प्रेमचन्द्र, निराला, आदि मे सर्व प्रथम प्रभाव देखा जा सकता है।

(घ) हिन्दी में प्रगतिवाद

सगठित रूप मे हिन्दी में प्रगतिवाद का आरम्भ 'प्रगतिशील लेख संघ' द्वारा 1936 ई० मे आयोजित उस अधिवेशन से होता है जिसकी अध्यक्षता प्रेमचन्द्र जी ने की थी। 1935 ई० मे ई० एम० फोस्टर ने 'प्रोगेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक एक सस्था की नींव रखी थी। इसी की देखा–देखी सज्जाद जहीर और डॉ० मुल्कराज आनन्द ने प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना की थी। किन्तु प्रगतिवाद का वास्तविक प्रस्थान विन्दु 1930 ई० है। इस सन्दर्भ मे जागरण 'हस' युवक' कर्मवरी 'सुधा' 'प्रभाव' आदि पत्रिकाओ के प्रकाशन तथा उसमे प्रकाशित रचना के भीतर निहित राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा सामाजिक क्रान्ति के विचारधाराओ के अनेक हवाले दिए जा सकते है। सन् 1930 ई० के बाद ही साहित्य में यथार्थवादी रूझानों का आरम्भ होता है। प्रेमचन्द्र का मोह भग हो चुका था वे 'गोदान' 'पूस की रात' एव 'कफन' जैसी रचनाएं दे रहे थे। निराला 'चतुरी चमार' एव कुल्ली भाट जैसे रेखाचित्र तथा

उद्बोधन, वन बेला, एक कुकुरमुत्ता जैसी कविताएँ लिख रहे थे और पत युगान्त', 'युगवाणी' और ग्राम्या के माध्यम से धरती पर उतर आये थे।

"गा कोकिल, बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन"—पत

का नारा बुलद करते हुए घोषित किया था—

"साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण[1]

जिस तरह कल्पना प्रवण अन्तर्दृष्टि छायावाद की विशेषता है और अन्तर्मुखी बौद्धिक दृष्टि प्रयोगवाद की उसी तरह सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति को अपना लक्ष्य मानकर चलता है। इस क्रम मे वह शोषण और शोषक मे कोई फर्क नही मानता वह शोषक के प्रति उत्कट घृणा की भावना को सक्रिय रूप देकर उत्कट प्रतिरोध मे बदल देता है। यह घृणा मुट्ठी भर शोषको के विरूद्ध बहुसंख्यक आवाम के हित से जुडी होती है। इसलिए डॉ० नगेन्द्र मानते है कि 'प्रगतिवाद साम्यवाद की ही साहित्यिक अभिव्यक्ति है' भगवती चरण वर्मा भी इसे एक राजनीतिकवाद के रूप मे स्वीकार करते है।

पूजीवादी व्यवस्था मे सामाजिक यथार्थ विषमता मूलक यथार्थ ही होता है। रचनाकार विषमता की खाई को पाटने के लिए कामगार वर्ग के मुक्ति की हिमायत करता है। वह यह भी मानता है कि कामगार तबका कच्चा लोहा है। जिसे राजनीतिक प्रशिक्षण की आग मे तपाकर अभिजात्य वर्ग के खिलाफ अनुकूल प्रतिरोध के योग्य बनाया जा सकता है।

"मार हथौडा कर—कर चोट,
लाल हुए काले लोहे को जैसा चाहे वैसा मोड"[2]

शुरू से ही छायावाद के निराला, पत, प्रसाद, और महादेवी के काव्य मे मुक्ति का एक स्वर विद्यमान है। यही स्वर आगे वैज्ञानिक दृष्टि से युक्त होकर जनमुक्ति की धारणा में परिवर्तित हो गया। गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही एव नवीन आदि के राष्ट्रीय जागरण एवं छायावादी विद्रोही भावना के विकास के रूप मे ही बच्चन, भगवती चरण वर्मा आदि के काव्य को समझा जा सकता है। इनके काव्य को भले ही प्रगतिवादी न कहा जाये किन्तु उनमे मजदूर, किसान जनता के प्रति बाहरी सहानुभूति, रूढियों के प्रति उपेक्षा और विरोध तो है ही।

हिन्दी कविता मे 'प्रगतिवाद के लिए 1936 ई० मे एक ठोस भूमि तैयार हो चुकी थी। इसी व्यापक और मजबूत परम्परा को आधार बनाकर जनता के सघर्षों को वाणी देने वाली वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लैस प्रगतिवादी परम्परा की शुरूआत हुई। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, राम विलाश शर्मा, शील 'सुमन' गिरजा कुमार माथुर, त्रिलोचन, शमशेर, मुक्ति बोध, नरेन्द्र शर्मा, भारत भूषण अग्रवाल आदि कवियो के काव्य परम्परा की परख को इसी परिप्रेक्ष्य मे आका जा सकता है। इनके काव्य मे जीवन के यथार्थ का चित्रण, उसमे वर्ग चेतना के प्रसार की चेष्टा तथा उसके भौतिक और सास्कृति जीवन को ऊपर उठाने का भरसक प्रयास था। इन कवियो ने कविता को एक नई जनवादी शैली प्रदान की। यद्यपि नरेन्द्र शर्मा, गिरजा कुमार माथुर आदि कुछ कवियो मे 1947 ई० के बाद भटकाव भी आये लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा उनकी कविताओ मे प्रगतिवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट एव निर्णायक है।

1936 से 46 ई० के बीच प्रगतिवाद के क्षेत्र मे राष्ट्रवादी, जनवादी, एव समाजवादी लेखको का एक व्यापक मोर्चा बन चुका था। इसका कारण यह था कि सन् 1930 ई० से सन् 46 ई० तक हिन्दी के यथार्थवादी साहित्य का मुख्य सन्दर्भ साम्राज्यवाद विरोधी जन आन्दोलन था। राष्ट्रीय स्वाधीनता तथा सामाजिक बराबरी को सिद्धान्त रूप में राष्ट्रवादी, जनवादी, एव समाजवादी तीनो प्रकार के दृष्टिकोण वाले लेखक मानते थे। सन् 1942 ई० के बाद प्रगतिशील आन्दोलन से राष्ट्रवादी लेखक अलग हटने लगे। प्रगतिवाद के दूसरे चरण अर्थात् 1951 ई० के बाद लेखको का एक वर्ग पीडित जनता की जातीय सस्कृति से जुडकर प्रेम चन्द्र, निराला की चेतना को आगे बढा रहा था। इस दौरान एक दूसरा वर्ग भी था जो प्रगतिवाद की आड मे बुर्जुआ सस्कृति का पोषण कर रहा था।

छायावादी कवि अन्तरिक्ष व्यापी प्रकृति या पर्वतीय प्रकृति की टोह मे रहते थे। जबकि प्रगतिवादी कवि ग्राम्य प्रकृति पर अपना स्नेह लुटाते है। वे मानवीय उल्लास और स्पन्दन को खेतो की उपयोगी प्रकृति पर बिखेर कर उसे चेतन बना देते है। इसी कारण उनकी कविता जीवन्त जनपदीय सस्कृति और कृषक चेतना के साथ उपस्थित हुई है। फसलो का ऐसा गतिशील एव मुह बोलता चित्र अन्यत्र नही मिलता है। सरसो की उमग का एकचित्र हैं—

"और सरसो की न पूछो हो गयी सबसे सयानी,
हाथ पीले कर लिये है, व्याह मण्डप मे पधारी,
फाग गाता मास फागुन आ गया है आज जैसे"[3]

ग्राम प्रकृति से छेडछाड करती हुई बसती हवा का चित्र तो केदार नाथ अग्रवाल ने और भी निराला खीचा है। किसान जीवन से जुडी हुई प्रकृति उनका प्रिय काव्य विषय है। त्रिलोचन और नागार्जुन ने बादल और वर्षा पर जमकर लिखा है तो केदार नाथ अग्रवाल ने सूरज और धूप पर। इनकी कविता मे सूरज श्रमिक उर्जा का प्रतीक है। उनकी प्रकृति मोहक ही नही प्रतिरोध मूलक भी है।

"लाखो की अगणित सख्या मे ऊँचा गेहूँ डटा खडा है,
ताकत को मुट्ठी बाधे है, नोकीले भाले ताने है,
हिम्मत वाली लाल फौज सा, मरमिटने को झूम रहा है।"[4]

प्रगतिवाद छायावाद के कलावादी सौन्दर्यवादी प्रतिमानों के विरूद्ध जीवन मे ही सौन्दर्य देखने का प्रयास करता है। अपनी कला चेतना को जगाना और उसकी मदद से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को अपनी कला मे सजीव से सजीव रूप देते जाना ही प्रगतिवाद साधना का लक्ष्य है। प्रगति चेतना कला विरोधी चेतना नही है बल्कि वह जीवन मे कला की सार्थकता ढूँढने वाली चेतना है यथा–

"घिर गया है समय का रथ कहीं।
लालिमा से मढ गया है राग, भावना की तुग लहरे,
पथ अपना अत अपना जान, खोजती है मुक्ति के उद्गार।"[5]

प्रगतिवादी कला के सघर्ष को समाज के सघर्ष से भिन्न नही मानते। शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, गोरा बादल एव नागार्जुन की कविताओ मे सामाजिक सच्चाई एव समाजवादी शक्तिया खुलकर बोलती है। नागार्जुन की कविता में तो लोक भावो का मजकर निखरता हुआ स्वर है। जो लोग प्रगतिवादी साहित्य की कलात्मकता पर सन्देह करते है उन्हें नागार्जुन की निम्नलिखित पक्तियो को सामने रखकर स्वय को परखना चाहिए।

"जली ढूँठ पर बैठकर गई कोकिला कूक
बाल न बाका कर सकी शासन की बन्दूक।"[6]

प्रगतिवादी कविता लोभ और लाभ पर आधारित व्यवस्था की असली सच्चाई को खोलती है। जनपद के दिल की धडकन, चाहे गाव के पाठशाले का चित्र हो, चाहे आकाल का जहा कही भी उसे सुनाई देती है वहा कविता सवेदना के स्तर पर पहुचकर यथार्थ का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करती है एव साथ ही साथ व्यवस्था पर भी चोट करने से नही चूकती है।

> "घुन खाये शहतीरो पर, बाहर खडी विधाता बाचे।
> फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे।
> बरसा कर बेबस बच्चो पर मिनट–मिनट मे पाच तमाचे,
> इसी तरह दुखरन मास्टर गढता है आदम के सांचे।"[7]

व्यवस्था की राजनीतिक साठ–गाठ को प्रगतिवादी कविता बेपर्दा करती है। उसमे पीडित जनता के दर्द एव टीस की दास्तान दर्ज है। केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की कविताओ मे व्यवस्था की तीखी आलोचना मिलती है। इन कवियो ने काग्रेस की दोहरी नीति, नेताओ के छद्म चरित्र और उनके खोखले समाजवाद की खूब खबर ली है–

> "देश की छाती दरकते देखता हूँ,
> थान खद्दर के लपेटे स्वार्थियो को,
> डालरी साम्राज्यवादी मौत घर मे ऑख मूदे डॉस करते देखता हूँ।"[8]

प्रगतिवाद 'कला कला के लिए' सिद्धान्त मे विश्वास नहीं कर 'कला जीवन के लिए' के सिद्धान्त में विश्वास करता है। परन्तु यह सिद्धान्त बाद मे अतिवाद का रुख ले लेता है। कार्ल मार्क्स भी मानते है, "लेखक के विचार जितना अधिक प्रच्छन्न रहे, कलाकृति के लिए यह उतना ही अच्छा है। किन्तु प्रगतिवादियो ने अपनी मार्क्सवादी विचारधारा को कविता के कथ्य मे पिरो देने के बजाय उसे ही कथ्य बना दिया। यही कारण था कि उनकी कविता जो सोद्देश्य तो थी ही उससे प्रचार की भी बू आने लगी।

> "पासी, अहीर, चमार सभी को बुलाओ,
> एक टाट बिछाओ एक पाठ पढाओ।"[9]

'एक पाठ पढाओ' का समतावाद भी प्रगतिवादियो की उत्तेजना के कारण महज नारा बनकर रह गया। साथ ही रचना और जीवन के दोहरेपन के कारण उनकी सभी रचनाओ में आग नही है। प्रगतिवादी साहित्य के सन्दर्भ में अज्ञेय, धर्मवीर भारती आदि का मानना है कि उसमे शिल्प और अभिव्यक्ति सम्बन्धी

मौलिक उद्भावनाए नही हुई है। यह सत्य है कि प्रयोगवादियो की भाति शिल्प प्रगतिवादियो का प्रथम प्रेम नही है पर उनके यहा भी शिल्प सम्बन्धी प्रयोगो की विविधता कम नही है। मार्क्सवादी दर्शन/समाजशास्त्र शिल्पगत प्रयोगो के विरूद्ध नही रहा है, बल्कि वह अभिव्यक्ति के लिए नित नवीन प्रयोगो को आवश्यक मानता है। यहा मुक्त छद के साथ–साथ लोक धुनो और लोकगीतो पर आधारित कविताए नए रूप बध को प्रकाश मे लाती है। एक ओर सोनेट और गजल की रचनाए हुई तो वही दूसरी ओर वार्तालाप शैली तथा गद्य गीतो का प्रयोग भी किया गया। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शकर, शैलेन्द्र, रामविलाश शर्मा, त्रिलोचन, रगेय राघव की अनेक रचनाए सार्थक एव ऐतिहासिक महत्व की है, जबकि उसी दौर मे उन्ही की कुछ रचनाए इश्तहार की हद तक पहुच गयी है।–

"काटो, काटो, काटो, करवी, साइत और कुसाइत क्या है।
मारो, मारो, मारो, हसिया, हिसा और अहिसा क्या है,
जीवन से बढ हिसा क्या है।"[10]

प्रगतिवादी रचनाओ मे मार्क्स तथा रूस का कीर्तिगान अथक ढग से किया जाता है, नरेन्द्र शर्मा जी की दृष्टि मे रूस से बढकर ससार मे कुछ भी नही है –

"लाल रूस है ढाल साथियो! सब मजदूर किसानों का।
वहा राज है पंचायत का, वहा नही है बेकारी,
लाल रूस का दुश्मन साथी! दुश्मन सब इन्सानों का।
दुश्मन है सब मजदूरों का दुश्मन सभी किसानो का।"[11]

और शिव मगल सिह सुमन तो यही बैठे–बैठे देख रहे है कि–

"चली आ रही है बढी लाल सेना।"

इसमे सन्देह नही है कि प्रगतिवाद मे प्रचारात्मकता है। उसमे राजनीतिक कविता का चरित्र है। वह उद्बोधनात्मक है, बहुधा वह लिखित वक्तव्य की तरह लगती है। ग्रेवियल पियर्सन की यह उक्ति भी ऐसी कविताओ की कमजोरी को ढक नही पाती है, 'समाजवादी यथार्थवाद की कविता वक्तृत्ववादी इसलिए होती है कि वह पाठकोन्मुखी या श्रोतोन्मुखी होती है।'

प्रगतिवाद का आरम्भिक रूप साम्यवादी विचारधारा एव रूसी साहित्य से अधिक प्रभावित रहा था। रूस मे साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करने के लिए बहुत बडे परिमाण मे प्रचारात्मक साहित्य का उत्पादन और विदेशो को उसका निर्यात किया जा रहा था। इस साहित्य मे विचारो को प्रभावित करने की शक्ति तो थी परन्तु भावनाओ को अभिभूत कर देने वाला काव्य सौन्दर्य नही था। इससे प्रभावित हो हिन्दी के वे युवक साहित्यकार, जो साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थे ऐसे साहित्य सृजन मे लग गये जो सरस कम और प्रचारात्मक होने के कारण नीरस अधिक था। जिसका परिणाम प्रगतिवादी दो दलो मे बट गये। एक दल प्रचारात्मक साहित्य का समर्थन कर राजनीतिक अकुश की अनिवार्यता की बात कर रहा था, तो दूसरा दल इसके विरोध मे स्वच्छन्द रूप मे अपनी अभिव्यक्ति की हिमायत कर रहा था। प्रगतिवादी साहित्य पर एक आक्षेप यह भी लगाया जाता है कि इसमे यौन भावनाओ और यौन सम्बन्धो का खुला अश्लील चित्रण होता है। इस आक्षेप के मूल मे वे नये कलाकार/साहित्यकार है जो फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी दर्शन (यौनवाद/कुठावाद) से प्रभावित होकर स्वच्छन्द यौन सम्बन्धो के समर्थक थे। वे लोग कुठावाद को ही प्रगति का एक मात्र सूचक मान अपनी रचनाओ मे कुण्ठित दमित यौन भावनाओ और सम्बन्धों का अश्लील चित्रण करने लगे थे। आरम्भ में अज्ञेय जैसे लेखक भी इसी कारण प्रगतिवादी माने जाने लगे थे, परिणामत कुण्ठित दमित काम भावनाओ के अश्लील चित्रण को ही मनोविज्ञान और मनोविश्लेषणवादी कुठावाद का नकाब पहनाकर प्रगतिशीलता मानी जाने लगी। परन्तु समझदार प्रगतिवादी आलोचकों द्वारा इस प्रवृत्ति का घोर विरोध किया गया, फलत कालान्तर मे ऐसा चित्रण करने वाले कलाकार प्रगतिवाद के विरोधी बन नये शिल्प का आवरण लेकर प्रयोगवाद के जनक व प्रणेता बने।

प्रगतिवाद अपने पहले दौर मे इसलिए भी विफल रहा कि कवियो ने सर्वांगत यह नही तय किया था कि (क) किसान–मजदूर के लिए कविताएँ लिखी जाय अथवा (ख) किसान–मजदूरों को विषय बनाकर कविताए लिखी जाय या किसान मजूदरो को विषय बनाकर किसान–मजदूरो के लिए ही कविताए लिखी जाए। दरअसल, व्यवहार के बिना केवल मूल्यो पर आघात् करने की बात करना पेट्टी बुर्जुआ दृष्टि है और किसी न किसी रूप मे प्रगतिवादी लेखक इससे ग्रस्त रहे है। दूसरी बात शोषित जनता से वे सिर्फ सहानुभूति रखते थे। इसके कारण वे वर्गीय घृणा को भी सार्थक सक्रियता नही दे सके।

प्रगतिवाद समूहवाद मे विश्वास करते हुए भी मुँह के बल गिर गया और प्रतिक्रिया स्वरूप प्रयोगवादी विचारधारा उसके मलबे से ही पनपी तो जाहिर है कि प्रगतिवाद एक गहरे अन्तर्विरोध का शिकार था।

इस प्रकार प्रगतिवाद के लिए निम्नलिखित विचारणीय बिन्दु रहे है—

(1) प्रगतिवाद साहित्य को सोद्देश्य मानता है।

(2) सामाजिक यथार्थवाद प्रगतिवादी कविता का केन्द्रीय बिन्दु है।

(3) प्रगतिवाद व्यक्तिवाद के खिलाफ है, आम जनता को वह उत्पीडन से मुक्ति दिलाने की बात करता है।

(4) प्रगतिवाद मानता है कि साहित्य को व्यवस्था परिवर्तन का एक सक्रिय एव सफल माध्यम बनाया जा सकता है।

(5) प्रगतिवाद सौन्दर्य को जीवन के जीवत यथार्थ का प्रतिबिम्ब मानता है।

यहॉ ध्यान देने वाली बात यह है कि किसी साहित्यिक वाद के लिए उसका घोषणा पत्र ही काफी नही होता, बल्कि कविता मे उसे पचा लेना अधिक आवश्यक होता है। कोई भी कलाकार साम्यवाद, वर्ग सघर्ष, वर्ग चेतना जैसे शब्दो का प्रयोग करने से ही प्रगतिवादी नही बन जाता। वही कृति प्रगतिवादी होती है जो जन—जीवन की यथार्थ समस्याओ का मार्मिक प्रभावशाली उद्घाटन करने मे समर्थवान होती है। प्रगतिवाद मे स्वनाम धन्य क्रान्तिकारी कवियो के बयान को ही कविता समझने की भूल की गई। सत्ता के लिए क्रान्ति शब्द का अर्थ हो सकता है, परन्तु जनता के लिए शब्द की जगह क्रिया का अर्थ होता है। आज स्थिति बहुत कुछ भिन्न है, प्रगतिवादी साहित्य केवल प्रचार का साधन मात्र न रह गम्भीर युग प्रेरक और कलापूर्ण बन गया है। अब इसे अपने प्रसार के लिए प्रचारात्मक सामग्री की आवश्यकता नही है। यह विचारधारा जन—जीवन मे गहरे रूप से पैठ चुकी है और इसी से प्रेरणा प्राप्त कर नए पुराने अनेक कलाकार ऐसे साहित्य का सृजन कर रहे है जिसमे युग जीवन की सम्पूर्ण वैयक्तिक और सामूहिक दुख दर्द आशाएं आकांक्षाएं और समस्याएँ अपने यथार्थ रूप मे मुखरित हो रही है। प्रगतिवाद का मूल उद्देश्य भी इसी जन चेतना को जागृत करना था और इसमे वह पूर्ण सफलता प्राप्त कर चुका है।

कला का शिल्प उसके विषय के अनुरूप ही होता है, चूंकि प्रगतिवादी काव्य का लक्ष्य जन जीवन की सामाजिक वास्तविकता को जनता तक पहुँचाना रहा है इसलिए वह छायावाद के रोमानी परिवेश की असामान्य, मखमली व सूक्ष्म भाषा को त्यागकर साधारण, सामान्य प्रचलित भाषा को ग्रहण करके आगे आयी। उसने अपने प्रतीको, बिम्बो एव मुहावरो को जनजीवन से ही ग्रहण करके एक जीवन्त भाषा का सृजन किया, एव आरम्भिक प्रचारात्मक अभिधात्मक शैली को त्याग कर परवर्ती रचनाकारो ने अधिक चित्रात्मक गहन एव साकेतिक शैली को अपनाया।

हिन्दी के अनेक शीर्षस्थ समीक्षको द्वारा प्रगतिवाद का मूल्याकन करते हुए उसकी उपलब्धियो एव न्यूनताओ का विवेचन किया गया है। प० नन्द दुलारे बाजपेयी ने उस पर एकागी दृष्टिकोण का आरोप लगाते हुए कहा है कि इसकी सीमा मे साहित्य के जो समाजशास्त्रीय विवेचन होते है वे आवश्यकता से बहुत अधिक समाजशास्त्रीय है और आवश्यकता से बहुत कम साहित्यिक इस कारण मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति साहित्य के भावात्मक और कलात्मक मूल्यो का निरूपण करने मे सदैव पश्चात्पद रही है।"[12] इसका उत्तर देते हुए प्रसिद्ध प्रगतिवादी आलोचक डॉ० राम विलाश शर्मा ने लिखा है कि, "मार्क्सवाद पर जो एकागी होने का दोष लगाया गया है, वह वस्तुगत सत्य नही है। मार्क्सवाद हमें ससार की घटनाओ को उसी परस्पर सम्बद्धता मे देखने के लिए कहता है। वह सामाजिक विकास के नियमो से भी हमे परिचित कराता है और उनके प्रकाश में वह अपने युग की गतिविधि को पहचानने मे हमारी सहायता करता है।"[13] अन्त मे बाजपेयी जी को यह स्वीकार करना पडा था कि, "साहित्य के सामाजिक लक्ष्यो और उद्‌देश्यो का विज्ञापन करने वाली यह पद्धति साहित्य का बहुत कुछ उपकार भी कर सकती है।[14] प्रगतिवादी समीक्षा ने हिन्दी को दो वस्तुएँ मुख्य रूप से दी है, प्रथम यह कि काव्य साहित्य का समन्वय सामाजिक वास्तविकता से है और वही साहित्य मूल्यवान है जो उक्त वास्तविकता के प्रति सजग और सवेदनशील है। द्वितीय यह कि जो साहित्य सामाजिक वास्तविकता से जितना दूर होगा वह उतना ही काल्पनिक और प्रतिक्रियावादी कहा जाएगा। न केवल सामाजिक दृष्टि से वह अनुपयोगी होगा, साहित्यिक दृष्टि से भी हीन और ह्रासोन्मुख होगा। इस प्रकार साहित्य के सौष्ठव सम्बन्धी एक नई माप रेखा, एक नया दृष्टिकोण इस पद्धति ने हमें दिया है जिसका उचित उपयोग हम करेगे।

बाबू गुलाब राय ने प्रगतिवाद की उपलब्धियो का मूल्याकन करते हुए लिखा कि, "प्रगतिवाद हमे स्वार्थ परायण व्यक्तिवाद से हटाकर समष्टिवाद की ओर ले गया है। उसने लेखको को शैया–सेवी अकर्मण्य नही रखा।"[15] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रगतिवादी साहित्य के सम्भावनाओ के प्रति आशान्वित होकर कहा कि, "इनके सिद्धान्त और उद्देश्य बहुत सुन्दर है, लेकिन ये लोग कम्युनिष्ट पार्टी के साथ जुडे हुए है, यही जरा खटकता है। यदि ये लोग दल द्वारा परिचालित होना छोड दे तो सब ठीक हो जाय।"[16] आज प्रगतिशील कलाकारो पर साम्यवादी दल का अकुश नही है, और वे स्वतन्त्र भाव से नए एव स्वस्थ मानव समाज के निर्माण की बलवती इच्छा लिए हुए साहित्य सृजन कर रहे है, अत प्रगतिवाद के विरोधियो का यह कहना कि प्रगतिवाद आज समाप्त हो गया गलत है। यह सत्य है कि आज उसका बाह्य सगठित रूप छिन्न–भिन्न सा दिखाई पडता है, परन्तु यह भी सत्य है कि आज भी प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा ही जनवादी स्वरूप ग्रहण कर साहित्य की मूल प्रेरणा बनी हुई है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रगतिवादी आन्दोलन विदेशी था? इसके प्रत्युत्तर मे कहा जा सकता है कि कोई भी विचारधारा किन्ही विशिष्ट परिस्थितियो की उपज होती है। मार्क्सवादी विचारधारा का प्रणेता कार्ल मार्क्स स्वय जर्मनी का निवासी था, किन्तु विपरीत परिस्थितियो के कारण यह विचारधारा जर्मनी मे अपना प्रभाव जमाने में असमर्थ रही थी। साम्यवादी विचारधारा आभाव, दरिद्रता, पिछडेपन, व निरकुशता के गर्भ से जन्म लेती है। बीसवी सदी के आरम्भ में रूस मे ऐसी ही परिस्थितिया थी। वहा जारशाही निरकुशता के साथ नया पूजीवाद पनप रहा था। कृषक दीन अवस्था मे था। फलत वहा साम्यवादी विचारो के पनपने का अनुकूल माहौल तैयार हो गया। रूसी साहित्य मे साम्यवादी विचारो का चित्रण होने व 1917 ई० मे रूस मे साम्यवादी शासन की स्थापना का विश्व व्यापी प्रभाव पडा। भारत भी इस प्रभाव से बच नही सका क्योकि भारत मे भी बिल्कुल वही परिस्थिति विद्यमान थी जिसमे रूस में साम्यवादी विचार पनपे थे। इसलिए भारतीय साहित्य पर इसका प्रभाव पडना स्वाभाविक था। आरम्भ मे यह प्रभाव राजनीति से मुक्त रहा, प्रेमचन्द्र ने इस प्रभाव को अपने विभिन्न उपन्यासो में चित्रित किया प्रसाद के 'ककाल' और 'तितली' नामक उपन्यासो में यह प्रभाव क्रियाशील रहा। इन दो लेखको ने अप्रत्यक्ष रूप से वर्ग चेतना को जागृत किया, परन्तु उन्होने साम्यवाद

का नाम तक नही लिया। यह इस बात का प्रमाण है कि वर्ग चेतना नितान्त स्वाभाविक थी,जिसे यहा की विषम परिस्थितियो ने जन्म और बढावा दिया था।

अत प्रगतिवाद युग की पुकार थी। हमारी अर्थव्यवस्था यान्त्रिक होती जा रही थी। पाश्चात्य यान्त्रिकता से प्रभावित हमारे जीवन दर्शन, जीवन मूल्यो का हमारे साहित्य मे चित्रण होना स्वाभाविक था। इसलिए प्रगतिवाद को विदेशी प्रभाव मात्र न मान, उसे नये युग की नयी समस्याओ का प्रतिफलन ही मानना चाहिए। यहा समाजवादी विचारधारा के पनपने के लिए अनुकूल परिस्थितिया मिल गयी थी, इसलिए यह यहा पर पनपा जिन विचारधाराओ का प्रतिकूल परिस्थितियो मे आयात किया जाता है वे क्षणिक प्रभाव उत्पन्न कर प्राय समाप्त हो जाती है।

प्रगतिवाद एक जनवादी विचारधारा थी, जो साहित्य के सम्पूर्ण क्षेत्र गद्य पद्य दोनो को अपने प्रभाव क्षेत्र मे समेट आगे बढी थी। प्रगतिवाद के इस व्यापक प्रभाव का कारण यह था कि यह युग चेतना को अभिवयक्ति प्रदान कर एव वैचारिक सकीर्णता को त्याग, विश्व के विशाल मानव समूह की भावनाओ, आशाओ एव आकाक्षाओ को समष्टिगत रूप मे देखने, समझने, एव उन पर विचार करने की शक्ति रखता था। यह आन्दोलन स्थानीय न होकर एक विश्व व्यापी आन्दोलन था।

प्रगतिवाद ने अपनी सीमाओ मे रहते हुए भी हिन्दी काव्यधारा के विकास मे एक महत्वपूर्ण अध्याय जोडा। उसने काव्य की अवरुद्ध धारा को व्यक्तिवादी यथार्थ के बन्द कमरे से निकाल कर जन जीवन के बीच प्रवाहमान कर दिया। जीवन एव साहित्य के मूल्यो को सौन्दर्य बोध एव लक्ष्य को कोहरे की धुंध से बाहर निकालकर उज्जवल धरातल प्रदान किया। निराला, सुमित्रानन्दन पत, केदारनाथ अग्रवाल, राम विलाश शर्मा, नागार्जुन, शिवमगल सिह सुमन, त्रिलोचन, और मुक्तिबोध इस धारा के प्रमुख कवि है।

जैसा कि विदित है कि सम्पूर्ण प्रगतिवादी काव्य साहित्य मार्क्सवादी दार्शनिक विचारधारा से प्रभावित है इस धारा के शीर्षस्थ कवियो व उनकी रचनाओ मे युगीन विषमता, वर्गभेद, शोषण, पूजीवादी व्यवस्था से आक्रात सर्वहारा वर्ग की दयनीय स्थिति, व सामाजिक क्रान्ति के स्वर स्पष्टत. सुनाई देते है। साम्यवादी आदर्श लिए हुए हिन्दी साहित्य की प्रगतिवादी विचारधारा का

मूल आधार मार्क्सवाद माना जाता है। कार्लमार्क्स ने इसे एक सुनिश्चित दार्शनिक आधार प्रदान किया। प्रगतिवाद के इस विवेचन को आगे बढाने से पूर्व हमे पहले इसके दार्शनिक आधारो एव सिद्धान्तो को समझ लेना चाहिए जिसका विवेचन प्रगतिवाद का दार्शनिक आधार शीर्षक मे किया जा रहा है।

(ब) प्रगतिवाद का दार्शनिक आधार

(I) मार्क्सवाद

मार्क्सवाद पर आधारित समाजवाद समकालीन युग की एक महत्वपूर्ण और लोकप्रिय विचारधारा है। वस्तुत समाजवाद दर्शन का एक पूरा ससार है, जो धर्म के क्षेत्र मे नास्तिकता का, राज्य के क्षेत्र मे एक अनन्त आशावाद का, आध्यात्म के क्षेत्र मे एक प्रकृतिवादी भौतिकवाद का तथा पारिवारिक क्षेत्र, गार्हस्त्य सम्बन्धो तथा वैवाहिक बधनो की लगभग पूर्ण शिथिलता का द्योतक है। इसका प्रभाव प्राय समाज, राजनीति, साहित्य, दर्शन, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, कला इत्यादि पर सभी क्षेत्रो मे उपलक्षित होता है। दार्शनिक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, एव साहित्यिक दृष्टिकोणो की एक पूरी वैज्ञानिक प्रणाली के रूप में मार्क्सवाद का विकास हुआ है। वह अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर वर्ग का एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण है। इसका लक्ष्य समाजवादी और कम्यूनिष्ट विचारधारा के आधार पर नई जीवन पद्धति और सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है। इसका आर्विभाव पूंजीवाद के विकास, उसके शोषण परक अन्तर्विरोधो की तीव्रता, सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक परिपक्वता की वृद्धि एव बुर्जुआ वर्ग के विरूद्ध उसकी शक्तिशाली कार्यवाहियों द्वारा हुआ है।

समाजवाद की प्रमुख विशेषताएं :

(1) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद :

तात्विक दृष्टि से समाजवाद का प्रमुख सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। मार्क्स के अनुसार यह सिद्धान्त ससार के सभी समस्याओ के समाधान मे सक्षम है। मूल प्रश्न यह है कि मानव समाज अपनी वर्तमान स्थिति मे कैसे पहुँचा? समाज का विकास कोई अधी प्रक्रिया नही है, बल्कि इसका एक व्यवस्थित प्रारूप है। इसके विकास में कुछ महत्वपूर्ण कारण है जिनकी पुष्टि ऐतिहासिक

घटनाओ और तथ्यो से होती है। समस्त विकास प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक है, जो आर्थिक शक्तियो के परस्पर सघर्ष का प्रतिफल है। मार्क्सवादी दृष्टि मे एक मात्र मूल तत्व जड प्रकृति है। ससार स्वरूपत भौतिक है यह भौतिकता उत्पादक और शोषक शक्तियो के निरन्तर सघर्ष से शनै शनै सम्पन्नता के सर्वोच्च लक्ष्य की ओर बढ रही है। मनुष्य को अपने चिन्तन का आधार प्रत्यक्ष गोचर भौतिक वस्तुओ को बनाना चाहिए। आत्मा और ईश्वर की मृग मरीचिका मे भटकने से कोई लाभ नही है। जड प्रकृति स्वत गतिशील है। प्रत्येक परमाणु मे सृजनात्मक शक्तिया इलेक्ट्रान तथा प्रोट्रान निरन्तर गतिशील हैं। परिवर्तन सृष्टि का विधान है। यहा कुछ भी स्थिर नही है सदैव उद्‌भव, विकास, ह्रास और विनाश का क्रम चलता रहता है। भौतिक जगत की सभी घटनाए परस्पर सापेक्ष है, वे एक दूसरे को प्रभावित करते रहती है। प्रत्येक जड पदार्थ विरोधी तत्वो का सघात है, इसे मार्क्सवाद के अन्तर्गत आन्तरिक विसगतियो (Theoury of Inter Contradıcatiion) के नाम से जाना जाता है। मार्क्स के इस सिद्धान्त पर हेगलीय द्वन्द्व न्याय और उसके सदूषित अनन्त का प्रभाव उपलक्षित होता है।

उल्लेखनीय है कि हेगल के द्वन्द्व न्याय में भी निषेध विरोध को सभी प्रकार के परिवर्तन विकास और क्रान्तियों का आधार माना जाता है। हेगल के दर्शन मे द्वन्द्व न्याय संभूति की प्रक्रिया है, जो पक्ष, विपक्ष और समन्वय के रूप मे तब तक चलती रहती है, जब तक पूर्णता की अवस्था न प्राप्त कर जाये। विकास की यह प्रक्रिया पूर्णत विरोध या निषेध पर आधारित है। मूर्त निषेध की अवधारणा हेगलीय द्वन्द्वन्याय का मेरूदण्ड है। आज के वैज्ञानिक विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व का सचालन अपरिवर्तनशील नियमो से नही बल्कि निरन्तर परिवर्तनशील और गतिशील नियमो के अनुसार ही समझा जा सकता है। महान विचारक कार्ल मार्क्स ने हेगल के इस सिद्धान्त को सशोधित रूप मे अपनाया किन्तु उसने हेगल के आध्यात्मवाद के विपरीत द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन और समाजवादी विचारधारा का सूत्रपात किया। मार्क्स के अनुसार इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया भौतिक, और आर्थिक है। इसका अन्तिम लक्ष्य वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है। इस प्रकार मार्क्स हेगल का कृतघ्न शिष्य सिद्ध हुआ। उसने हेगल के द्वन्द्वात्मक पद्धति को अपनाकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि एतिहासिक विकास के सन्दर्भ मे जो कभी तर्कसगत और विवेक पूर्ण होता है वही अन्य अवसरों पर अविवेकपूर्ण हो जाता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अन्तर्गत तीन तत्व विद्यमान है।

(1) शक्तियो का द्वन्द्व।

(2) रूपान्तर की अवस्था।

(3) भौतिक विकास

सर्जनात्मक शक्ति मानव समाज के विकास को आगे बढाती है। एक क्रियात्मक शक्ति के रूप मे पहले उत्पादन या निर्माण प्रारम्भ होता है। इस निर्माणकारी शक्ति को ही पक्ष (Thesis) कहते है, इसकी विरोधी शक्ति को प्रतिपक्ष (Anti Thesis) कहते है। इसका उत्पादक शक्ति के साथ सघर्ष होता है उसके बाद क्रान्ति की अवस्था आती है जिसे समन्वय (Synthesis) कहते है। समन्वय के अन्तर्गत पक्ष और प्रतिपक्ष तत्व का बाधक तत्व नष्ट हो जाता है और निर्माणकारी तत्वो का समन्वय हो जाता है। किन्तु कालान्तर मे इस समन्वयात्मक शक्ति के अन्दर से पुन. उसकी विरोधी शक्ति का जन्म होता है। इस प्रकार पुन द्वन्द्व प्रारम्भ हो जाता है। सामाजिक आर्थिक विकास मे यह द्वन्द्व तब तक चलता रहेगा जब तक विरोधी शक्ति को उत्पादक शक्ति से पैदा होने का अवसर मिलता रहेगा। मार्क्स के अनुसार प्रत्येक सघर्ष के बाद विकास के स्तर पर मौलिक परिवर्तन होता जाता है। जब समाज मे उत्पादक और विरोधी शक्तियो के बीच मे सघर्ष होता है तो क्रान्ति के फलस्वरूप एक नवीन आर्थिक ढाचे का जन्म होता है। इसमे गुणात्मक वृद्धि हो जाने से समाज का विकास उत्कृष्ट अवस्था मे पहुंच जाता है। प्रगति स्वभावत· परिमाणात्मक से गुणात्मक अवस्था की ओर होती है। अर्थात् निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर होती है। पुरानी शक्तियां नई शक्तियो का विरोध करती हैं और अन्त मे पराजित होकर सकारात्मक प्रगति को जन्म देती है। किन्तु वस्तु के अन्दर चल रहे अन्तर द्वन्द्व से पुरानी व्यवस्था नष्ट होती है और नई व्यवस्था का जन्म होता है। मार्क्स ने आदिम साम्यवाद को पक्ष, संघर्षरत साम्यवाद को प्रतिपक्ष और सर्वहारा वर्ग को समन्वय के रूप मे प्रस्तुत किया है। सर्वहारा वर्ग की पूर्ण विजय के बाद प्रगति बिना किसी अन्तर्द्वन्द्व के निरन्तर चलती रहेगी।

मार्क्स के अनुसार प्रत्येक वस्तु मे उसका विरोधी गुण निहित है, और उनमे एकता की सभावना भी निहित है। जब तक विरोध प्रस्तुत होता है तब तक परिवर्तन नहीं होता है। जैसे ही दोनो मे विरोध शुरू होता है वैसे ही

परिवर्तन के साथ प्रगति प्रारम्भ हो जाती है। मार्क्स के इस द्वन्द्व वाद मे भौतिक उद्देश्य अन्तरनिहित है। विकास का मूल आधार और प्रयोजन दोनो भौतिक है। सुन्दर विचार, नैतिक भावनाए, कला, और काव्य सब कुछ भौतिकता की देन है। सारा द्वन्द्व आर्थिक अपूर्णताओ के कारण होता है। यदि आर्थिक शोषण की विरोधी शक्तियो पर मनुष्य नियन्त्रण कर ले तभी समाज का उद्देश्य पूरा होगा। इस नियन्त्रण के लिए वर्ग विहीन समाज की रचना करनी होगी। क्यो कि सम्पूर्ण सघर्ष वर्गोंकी उत्पत्ति के साथ प्रारम्भ होता है। मार्क्स को विश्वास है कि वर्गों का विभेद मिटेगा और मनुष्य को भौतिक समृद्धि मिलेगी। क्रान्ति एक अपरिहार्य सामाजिक घटना है। इसके फलस्वरूप नवीन सामाजिक व्यवस्था का जन्म होता है। पक्ष और प्रतिपक्ष के रूप मे समाज मे भी दो विरोधी वर्ग स्वामी और दास, राजा और प्रजा, पूजीपति और मजदूर के रूप मे दिखाई पडते है। इस विद्रोह का शमन सर्वहारा वर्ग मे शान्त होकर समन्वय का रूप ले लेता है। मार्क्स को यह विश्वास है कि भविष्य मे पूजीवाद का नाश होगा और वर्गहीन तथा राज्यविहीन समाज की स्थापना होगी।

समाजवाद व्यक्ति की अपेक्षा समूह और समुदाय को अधिक महत्व देता है। यह व्यक्तिवादी विचारधारा तथा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विरोध पर आधारित है। आर्थिक विषमता ही सामाजिक भेदभाव और असमानता का कारण है। इससे राष्ट्र की प्रगति बाधित होती है। पूजीवाद के अमानवीय प्रभावों का उल्लेख करते हुए एरिकफ्राम ने लिखा है, "व्यक्ति और भी एकाकी तथा अकेला पड गया, वह अपने अधिकार के बाहर की अतिशय सबल शक्तियो के हाथों का साधन बन गया, वह एक व्यक्ति बन गया, किन्तु एक असमर्थ और असुरक्षित व्यक्ति।" समाजवाद व्यक्तिवाद की तरह प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्धा को प्रश्रय नही देता है, अपितु सहयोग और सहभागिता को बढावा देता है। क्यो कि प्रतियोगिता होने पर मजदूर वर्ग पूजीपतियो का मुकाबला नही कर पाते है, इससे स्पष्ट है कि समाजवाद असमानता और शोषण का विरोधी है। यह प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्रदान करने का पक्षधर है। वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निषेध करता है। जिसमें कुछ लोग काम न करने पर भी जीवित रहे और कुछ लोग काम करने पर भी न जी सके। कोई भी समाज शोषण मुक्त तभी हो सकता है। जब उत्पादन के साधनो पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित हो। इस सन्दर्भ मे ब्लेचफोर्ड का यह कथन उल्लेखनीय है, "भूमि तथा उत्पादन के सभी साधनो को राष्ट्रीय सम्पत्ति बना दो, सारे खेतों खानो, जहाजों, तथा

रेलो को राष्ट्रीय नियन्त्रण मे रख दो, इससे व्यावहारिक समाजवाद पूरा हो जायेगा।'' इस विवेचन से स्पष्ट है कि मार्क्सवादी जीवन दर्शन व्यक्तिवादी न होकर समष्टिवादी है। इसलिए व्यक्तिगत हित की अपेक्षा सामूहिक हित और जन सामान्य के कल्याण को प्राथमिकता दी गयी है। चूकि समष्टिगत कल्याण मे व्यक्तिगत कल्याण भी निहित होता है। इसलिए व्यक्ति के हित को सामूहिक हित के अपेक्षा अधिक महत्व नही दिया जाना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि सामजवाद व्यक्तिवाद के विरूद्ध एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा वैयक्तिक हित के स्थान पर सामूहिक हित प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग और सहभागिता की स्थापना करके उत्पादन के साधनो पर सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा आर्थिक समानता स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

(2) ऐतिहासिक भौतिकवाद या सामाजिक क्रान्ति का सिद्धान्त :

ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्सवादी, लेनिनवादी दर्शन का एक सघटक अग समाज की उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। समाज क्या है? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? उसका विकास कैसे होता है? उसके विकास की नियम संगतिया क्या है? इतिहास, राजनीतिक अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र आदि जैसे समाज के ठोस विद्वानो से भिन्न ऐतिहासिक भौतिकवाद सामाजिक विकास के सामान्य नियमो का अध्ययन करता है।

मार्क्स और ऐगल्स ऐतिहासिक भौतिकवाद अथवा इतिहास की भौतिकवादी समझ के संस्थापक थे। द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त के आधार पर मार्क्स ने समस्त ऐतिहासिक परिवर्तनो को भौतिक या आर्थिक कारणों से मानते हुए इतिहास की आर्थिक या भौतिकवादी व्याख्या की। मानव को अपने जीवन रक्षण के लिए प्राकृतिक साधनो पर निर्भर रहते हुए पारस्परिक सहयोग करना पडता है, इसलिए उसे अपनी आवश्यक, आवश्यकताओं व तत्सम्बन्धित पदार्थों के उत्पादन हेतु समाज की रचना करनी पडती है। राजनीति, कला, विज्ञान आदि मे लगने से पहले रोटी, कपडा और मकान की अपनी आवश्यकताएं पूरी करनी पडती है। सीमित क्षमताओ व वस्तुओ के उत्पादन से समाज सभी को सतुष्ट नही कर पाता है फलत असन्तुष्ट निर्धन व्यक्तियो के कारण समाज मे अशान्ति बनी रहती है। जिसका परिणाम यह होता है कि समाज मे दो परस्पर विरोधी वर्ग आमने-सामने निरन्तर दिखाई देते रहते है। पहला वर्ग साधन सम्पन्न होता

है जिसे शोषक वर्ग एव दूसरा साधन विहीन, जिसे शोषित वर्ग कहा जाता है। इन सबके मूल मे आर्थिक असमानता ही है। इस तरह से समाज मे आचार सहिता धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, सामाजिक राजनीतिक संस्थाओ और कला सभ्यताओ आदि के निर्माण मे आर्थिक कारक ही प्रमुख है।

मार्क्स ने आपने सासारिक ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि इसके समस्त विकास का आधार आर्थिक, एवं इसके विकास को प्रयोजन भौतिक सुख एव शान्ति है। मार्क्स ने हेगलीय प्रत्ययवाद की आलोचना करते हुए धर्म को जनता के लिए अफीम के समान माना है। मार्क्स के अनुसार सामजस्यपूर्ण उच्चतम समाज (समाजवाद/साम्यवाद) की स्थापना तभी हो सकती है जब सभी मनुष्यो की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो जायें। जिससे सभी सघर्षों या क्रान्तियो का सदा के लिए अन्त हो जाये। मार्क्स का यही ऐतिहासिक भौतिकवाद है। सेवाइन ने इसे 'आर्थिक भौतिकवाद की सज्ञा दी है। लेनिन की दृष्टि मे "आर्थिक भौतिकवाद वह केन्द्र विन्दु है जिसके चारो ओर व्यक्त विचारो का जाल सा बिछा हुआ है।" मार्क्स व उसके समर्थकों ने मानव के ऐतिहासिक विकास पर आर्थिक कारको का प्रभाव दर्शाते हुए इसे पाच युगो मे बाटा है–

(क) आदिम साम्यवादी युग :

आदिम काल में सभी वस्तुओं पर सभी का अधिकार था, व्यक्तिगत सम्पत्ति नाम की कोई वस्तु नहीं थी। आदिम मानव की आवश्यकताए सीमित थी, न कोई वर्ग था, और न वर्ग सघर्ष। उसका आहार शिकार पर ही निर्भर था। शिकार के उत्तम साधन एव हथियार नही होने के कारण लोगो मे संग्रह की प्रवृत्ति नही जमी थी। सभी लोग अपनी आवश्यकता भर ही ग्रहण करते, और प्रत्येक दिन शिकार करते थे और ये शिकार सामूहिक हुआ करते थे, इस प्रकार समाज का विकास वर्गहीन सामूहिक जीवन से आरम्भ हुआ, जिसमे विषमता और शोषण का नामोनिशान नहीं था। समाज की इस दशा को आदिम साम्यवाद कहते हैं।

(ख) दासता का युग :

आदि साम्यवादी अवस्था के बाद दासता का युग प्रारम्भ होता है। दासता के मूल मे सग्रह की प्रवृत्ति रही है। इस युग का मानव शिकारी जीवन त्यागकर श्रमसाध्य कृषिकार्य व पशुपालन मे लग गया। फलस्वरूप बिना परिश्रम के ही जीवनयापन करने वाले शक्तिशाली व बलवान लोगो ने निर्बलो को दास बना कर कृषि कार्य मे लगाना शुरू कर दिया जिसका परिणाम समाज मे दो वर्गों का अस्तित्व उभर कर सामने आया एक दास वर्ग और दूसरा स्वामी वर्ग। ये दास स्वामियो के लिए सम्पत्ति के समान थे जिसे वे क्रय व विक्रय कर सकते थे। दास व स्वामी नीति शोषण व सेवा पर आधारित थी। उत्पादन मे दासो को केवल उतना ही हिस्सा दिया जाता था जितने वे मात्र जीवित रह सके। जब तक दासो मे काम करने की क्षमता रही तब तक भू स्वामियो ने उनका शोषण किया। सम्पत्ति पर अधिकार स्वामियो का था और दास उससे वचित थे। दास भी स्वामियो की भाति सुखमय जीवन बिताने की सोचने लगे। उत्पादन के सम्बन्धो मे आये परिवर्तन और एक वर्ग के श्रमहीन हो जाने का परिणाम यह हुआ कि बहुमत की क्षुधापूर्ति नही हो सकी, उत्पादन अवरुद्ध हो गया।

(ग) सामन्तवादी युग :

कुछ समय के पश्चात् राजतन्त्र का विकास होता है, और इन राजाओं को सैन्य सहायता देने वाले एक सरदार या सामन्त वर्ग का भी अभ्युदय इसी युग की देन है। समस्त भूमि पर राजतन्त्र का अधिकार तो रहा, परन्तु अनुदान रूप मे सामन्तो को देने के कारण वास्तविक कब्जा सामन्तो का ही रहा। परिणामत शेष जनता अपने क्षुधापूर्ति के लिए इनकी कृपा दृष्टि पर निर्भर हो गई। चूकि भूमि पर कृषि के लिए मजदूरो की आवश्यकता थीं इसलिए यह भूमि हीन जनता श्रमिको के रूप मे सामन्तो के खेतो मे काम करने लगी। श्रमिको को रियाया या प्रजा कहा जाता था। श्रम के बदले उत्पादन का कुछ निर्धारित अश ही इन्हे प्राप्त होता था। इनकी स्थिति दासो से कुछ ही बेहतर थी, इन्हे बेचा एव खरीदा नहीं जा सकता था। सामन्त इनके सरक्षण का दायित्व अपने ऊपर लेते एवं इन्हे न्याय भी प्रदान करते थे।

सामन्तवादी व्यवस्था मे समाज चार भागो मे विभाजित था। (1) पुरोहित वर्ग (2) राजा या सामन्त वर्ग (3) व्यापारी वर्ग (4) सर्फ या दास वर्ग। पुरोहित

बुद्धिजीवी थे, एव सामन्तो का साथ दिया करते थे, इन्ही का साथ पाकर सामन्तो एव राजाओ ने जीभर जनता का शोषण किया। राजा के आधीन सामन्त थे, प्रजा कृषि कार्य करती एव सामन्तो की सेवा मे सलग्न थे। सामन्तो द्वारा जनता के शोषण के फलस्वरूप उत्पादन की शक्तिया क्षीर्ण होती गई। सामन्तो से असन्तुष्ट सभी वर्ग बुर्जुआ (नगरवासी) के समर्थन प्राप्त कर विद्रोह कर बैठे जिसका परिणाम सामन्तवाद का पतन एव पूजीवाद का अभ्युदय से हुआ।

(घ) पूंजीवादी युग :

औद्योगिक क्रान्ति एव वाष्पचलित इन्जन के आविष्कार ने कारखानो के उत्पादन मे अत्यधिक वृद्धि कर दिया, फलत अधिक धन की प्राप्ति की आकाक्षा लेकर वही सामन्त वर्ग औद्योगिक क्षेत्रो मे अपने को स्थापित कर पूजीवादी व्यवस्था का श्री गणेश कर दिया। सामन्तशाही व्यवस्था से ऊब चुकी प्रजा भी कृषि कार्य छोड औद्योगिक श्रमिक का जीवन अपना लिया और आगे चलकर सामन्त रियाया का वर्ग पूंजीपति और श्रमिक के वर्ग में परिवर्तित हो गया और व्यापारिक लाभ प्रलोभन से बच नही सका। श्रम मजदूर करता एव पूजी व्यापारी की बढती थी। बहुसख्यक श्रमिको का शोषण अल्पसंख्यक पूंजी पतियो द्वारा किया जाने लगा, और भूख से बचने के लिए श्रमिकों को ये सब सहना पडता था। चूंकि व्यापारियो ने धन के बल पर मजदूरो को संगठित कर सामन्तवाद का अन्त किया था, लेकिन इस क्रान्ति का सही लाभ श्रमिक क्रान्तिकारियो को नही मिल पाया। पूंजीपति वर्ग के हाथो मे नेतृत्व होने के कारण सारा लाभ पूजीपतियो को ही हुआ, श्रमिक वहीं का वहीं रह गया। औद्योगीकरण एव मशीनीकरण ने हाथो से काम करने वाले श्रमिकों की रोजी उनसे छीन कर बेकारी के दल—दल मे ढकेल दिया।

कल कारखानों की सख्या एव उत्पादन बढने से माल की खपत कम हो गई फलस्वरूप पूजीपति/उद्योगपतियो द्वारा श्रमिको की छटनी की जाने लगी। हृदयहीन उद्योगपति सस्ते मे उत्पादन बेचने के बजाय उसे नदी मे डुबो देना बेहतर समझते थे। प्रूधां ने इस निर्दय अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि किस प्रकार रातो—रात बोरे के बोरे अनाज मार्सलीज के बन्दरगाह में डुबो दिए गये। पूजीपतियो का इनके पीछे मन्तव्य वस्तुओ के मूल्यों मे कमी न आने पाये एवं श्रमिको को उपलब्ध न हो सके जिससे वे कम मजदूरी मे भी काम करते रहे।

पूजीवादी व्यवस्था सार्वजनिक हित के प्रतिकूल थी। पूजीवादी व्यवस्था का मन्तव्य था उत्पादन मे वृद्धि, बेकारी को प्रोत्साहन, और पूजीपति को लाभ, अत्यधिक उत्पादन एव माल की धीमे निकासी द्वारा यह व्यवस्था लोगो को भूखो रखना चाहती थी। चूँकि राज्य पर पूंजीपतियो का आधिपत्य कायम हो चुका था, एव ग्रामीण व कुटीर उद्योग धन्धे बन्द हो जाने से सर्वसाधारण जनता का बेकार व बेरोजगार होना स्वाभाविक था। मार्क्स के अनुसार यह दुर्दशा तब तक बनी रहेगी जब तक समाज मे पूजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी।

मार्क्स के अनुसार पूजीवादी व्यवस्था मे अत्यधिक लाभ पाने के लिए पूजीपति अनेक हथकण्डे अपनाते है— जिनमे कुछ इस प्रकार से है।

(1) इस पूजीवादी व्यवस्था मे श्रमिको के पारिश्रमिक का विदोहन कर अतिरिक्त मूल्य द्वारा लाभ कमाने का उपक्रम देखा जाता है। उत्पादन और उसके पारिश्रमिक के बीच अधिक अन्तर ही लाभ है। इस प्रकार से पूजी अतिरिक्त श्रम का परिणाम है। जो कि श्रमिको द्वारा कम मूल्य पर अधिक श्रम से होता है।

(2) यन्त्रीकरण से पूजीवादी व्यवस्था मे लाभ की प्रवृत्ति का और भी विकास हुआ, फलत श्रमिको की सख्या में गिरावट आती है और पूंजीपतियो का उत्तरोत्तर लाभ बढता जाता है।

(3) पूजवादी व्यवस्था मे प्रतिस्पर्धा का मुख्य आधार मशीनीकरण है। बडे—बड़े पूजीपति भारी व अत्याधुनिक मशीनो द्वारा इस प्रतिस्पर्धा मे बाजी मारकर अत्यधिक लाभ कमाने लगते है और छोटे पूजीपतियो के कारखाने बन्द, और श्रमिक बेकार।

(4) उत्पादन की अधिकता नये बाजारो की तलाश एवं उपनिवेशो की स्थापना पूंजीपतियो के शोषण को बढावा दिया। उपनिवेशों के घरेलू उद्योगो को समाप्त कर उनसे सस्ते मे कच्चा माल प्राप्त करके उससे तैयार माल को मंहगी कीमत मे बेचकर पूजीपति दोहरा लाभ कमाने लगा।

(5) औद्योगिक क्षेत्र में एकाधिकार स्थापित हो जाने से लाभ प्राप्ति की प्रवृत्ति अत्यधिक बढ जाती है। जिस तरह बडी मछलिया छोटी

मछलियो को खा जाती है ठीक उसी प्रकार बडे उद्योगपति छोटे व्यवसाइयो को समाप्त कर अपना एकाधिकार स्थापित करके अपने मुनाफे मे आशातीत वृद्धि कर लेते है।

उपर्युक्त परिस्थितियो मे मार्क्स ने समाज के पुन शोषित व शोषक वर्ग मे विभाजित होने का ही वर्णन किया है। पूजीवाद के दुष्प्रभाव से बेरोजगार जनता भूखो मरने लगी व सामाजिक विषमता तेजी से उभर कर सामने आ गई। विलासिता और भुखमरी के बीच बढती हुई खाईं ऐसे सघर्ष की तरफ बढ रही है जिससे कभी भी क्रान्ति की ज्वाला फूट सकती है। धीरे–धीरे अन्तर्विरोधग्रस्त, पूजीवाद अपने व दुष्परिणामो से घिरता जा रहा है, और उत्पादन के साधनो पर समाज का स्वामित्व स्थापित करने की मुहिम तेज हो रही है। इस क्रान्ति के बाद पूजीवादी व्यवस्था का समूल नाश एव समाजवादी व्यवस्था की स्थापना कर सर्वहारा वर्ग अपना अधिनायकत्व स्थापित करेगा।

(ङ) साम्यवादी युग :

अन्तिम युग साम्यवाद का युग है। इस युग मे उत्पादन के समस्त साधनो पर समाज का अधिकार होगा और आवश्यकता के अनुसार लोगो में उसका वितरण होगा। उत्पादन मे सभी का उसकी योग्यता के अनुसार योगदान होगा एव आवश्यकता के अनुसार वितरण होगा। शोषक व शोषित का वर्गभेद एव वर्ग सघर्ष समाप्त हो जायेगा।

चूँकि समाज का आर्विभाव वर्गहीन अवस्था से हुआ था इसलिए उसका पर्यवसान वर्गहीन अवस्था मे ही होगा, परन्तु दोनो मे अन्तर है। आदिम साम्यवाद के गर्भ मे वर्गयुक्त अवस्थाए छिपी थी और मानव जीवन असंगठित था, उनमे केवल अपने झुण्ड के हितो की ही चिन्ता थी, किन्तु लक्ष्य साम्यवाद वर्गभेद रहित समग्र समाज की चिन्ता करने वाला होगा।

साम्यवाद ही मार्क्सवाद का अन्तिम लक्ष्य है। यह एक सघर्षहीन, वर्गहीन, राज्यविहीन, धर्मविहीन और समृद्ध समाज की मार्क्सवादी कल्पना है। आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन से ही संघर्ष की स्थिति से बचा जा सकता है। यह उत्पादन लाभ प्रेरित न होकर लोगो के जीवन स्तर को उठाने के लिए

होगा। अब हम पूजीवाद, समाजवाद एव साम्यवाद के सूक्ष्म अन्तरो का वर्णन करेगे जो निम्नलिखित है–

(1) पूजीवादी व्यवस्था मे उत्पादन के साधन सीमित लोगो के स्वामित्व मे होते है और व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुरूप वेतन दिया जाता है। समाजवादी व्यवस्था मे उत्पादन शक्तियो पर सार्वजनिक स्वामित्व होता है और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार वेतन मिलता है। साम्यवाद समाजवादी की विसित अवस्था है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार वेतन मिलेगा।

(2) पूजीवादी व्यवस्था मे श्रम एक भार है, समाजवाद मे यह जीवन की सर्वोच्च आवश्यकता और साम्यवाद मे श्रम जीवन का आनन्द है। पूंजीवाद मे श्रम बेचा जाता है, समाजवाद मे श्रम आनुपातिक रूप से फलप्रद होता है और साम्यवाद मे बिना फल के प्रलोभन के स्वस्थ जीवन के लिए स्वाभाविक रूप से कर्म किया जाता है।

(3) व्यक्ति की समस्त योजनाओ को विकसित होने का अवसर पूजीवादी व्यवस्था मे नही मिल पाता है, जबकि समाजवाद मे विकास हेतु परिस्थितियो का निर्माण किया जाता है और साम्यवाद मे प्रत्येक व्यक्ति का विकास समूचे समाज के विकास की शर्त होगी।

(4) परस्पर अपने हितो को लेकर संघर्षरत पूजीवाद अनेक वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। समाजवाद में दो वर्ग देखे जा सकते है कृषक और श्रमिक। साम्यवादी व्यवस्था एक वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था है। यहा कृषको और श्रमिकों के बीच का भेद भी समाप्त हो जाएगा।

(5) पूजीवादी व्यवस्था मे राज्य पर पूजीपतियो का अधिकार होता है। समाजवाद मे राज्य सर्वहारा दल के हाथ मे होता है। साम्यवादी व्यवस्था मे राज्य का लोप हो जायेगा।

(6) पूजीवादी व्यवस्था मे उत्पादित वस्तुए विनिमय योग्य वस्तुओ मे परिणित हो जाती है, समाजवादी व्यवस्था मे सरकारी व सहकारी क्षेत्र दोनो के उत्पादन के विनिमय हेतु बाजार की आवश्यकता होती है, जिसमे एक क्षेत्र अपने उत्पादन को दूसरे क्षेत्र के हाथ ऐसे मूल्य पर बेचता है भले ही उसे लाभ या मुनाफा न मिले। साम्यवादी व्यवस्था मे इन क्षेत्रो बीच की खाई को पाटकर वस्तुओ का वितरण बिना मूल्य निर्धारण के आवश्यकता के अनुरूप लोगो मे की जायेगी। इस व्यवस्था मे हानि एव लाभ की समस्त सभावनाए समाप्त हो जायेगी।

(7) पूजीवाद की स्थापना हेतु राजनीतिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है, जबकि समाजवाद या साम्यवाद की स्थापना के लिए श्रमिक वर्ग के नेतृत्व मे सामाजिक क्रान्ति आवश्यक है।

साम्यवादी व्यवस्था मे कभी भी आवश्यकता से अधिक उत्पादन नही होगा। जब स्वामित्व सार्वजनिक हो जाएगा तो अधिक उत्पादन का तात्पर्य होगा समस्त जनता की समृद्धि। योजनाबद्ध उत्पादन एवं वितरण से इसके बीच सही सन्तुलन बना रहेगा। माग व पूर्ति के बीच अन्तर घटने बढने से पूजीवादी व्यवस्था मे कीमते घटती बढती है। साम्यवादी व्यवस्था मे कीमतो के घटने बढने का प्रश्न ही नही पैदा होगा, क्योकि लोगो की आवश्यकता ही उत्पादन का नियन्त्रण करेगी। पूंजीवादी व्यवस्था में कीमतो पर नियन्त्रण उत्पादन पर रोक लगाकर एव बाजार मे उसकी कमी लाकर की जाती है। जिस प्रकार घर मे रोटी का बटवारा किसी सिद्धान्त पर न आधारित होकर व्यक्ति की आवश्यकता व भूख पर निर्भर करती है। इसी तरह शुद्ध साम्यवादी समाज मे वितरण का सवाल नही होगा। वितरण की कोई नाप तौल न होकर आवश्यकता के अनुरूप वितरण होगा। व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप कार्य करेगा और आवश्यकता के अनुरूप प्राप्त करेगा या ग्रहण करेगा। साम्यवादी व्यवस्था मे बिना श्रम के कोई नही रहेगा। रग, जाति, लिग राष्ट्रीयता के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नही रहेगा। ग्रामीण एव शहरी जीवन का अन्तर समाप्त हो जायेगा। बौद्धिक श्रम व शारीरिक श्रम का भेद दूर हो जायेगा। स्वार्थ के स्थान पर मानव प्रेम व मानवता की बात की जाएगी। व्यक्ति समाज के उत्थान के लिए कार्य करेगा। प्रेम के कारण संघर्ष की प्रवृत्ति समाप्त हो जायेगी और

राष्ट्रो का द्वन्द्व स्वत समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार साम्यवादी व्यवस्था मे व्यक्ति मे उसके पूर्व के दृष्टिकोण मे परिवर्तन होगा। व्यष्टिवादिता के स्थान पर समष्टिवादिता की बात करेगा।

(3) *श्रम और मूल्य का सिद्धान्त :*

पेटी (Petty) स्मिथ (Smith) और रिकार्डो (Recardo) द्वारा विकसित श्रम सिद्धान्त से मार्क्स सर्वाधिक प्रभावित थे। एडम स्मिथ ने दो प्रकार के मूल्यो की चर्चा की है। एक वह जो तैयार वस्तु की उपयोगिता के कारण होता है एव दूसरा उस वस्तु को तैयार करने मे मानवीय श्रम द्वारा उत्पन्न होता है। मार्क्स के अनुसार किसी वस्तु का विनिमय मूल्य वह श्रम है जिसे उस वस्तु को तैयार करके विक्री योग्य बनाने मे लगाया जाता है। अर्थात् किसी भी सौदे का विनिमय मूल्य उसके निर्माण मे लगे श्रम के बराबर होता है। व्यय किया हुआ श्रम ही पूजी है और सचित श्रम का दाम ही लाभ है। जो वस्तुए आवश्यकताओ की पूरा करने या किसी अन्य वस्तुओ मे बदली जा सकती है उसे पण्यद्रव (Commodity) कहते है। एक उपयोगी वस्तु से दूसरी उपयोगी वस्तु को बदलना विनिमय मूल्य या मूल्य ,Exchange Value or Value) कहा जाता है। इस प्रकार उपयोगिता मूल्य एव विनिमय मूल्य, मूल्य के दो प्रमुख आधार है।

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की महानतम उपलब्धि अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त है। जिसका मार्क्स ने महत्वपूर्ण राजनीतिक आर्थिक कृति 'पूजी' में गहन विश्लेषण किया है। अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को लेनिन ने मार्क्सवादी आर्थिक सिद्धान्त की आधारशिला कहा है। इस सिद्धान्त ने पूजीवादी शोषण के रहस्यो का पता लगाया और पूजीपतियो की समृद्धि के स्रोतो को छिपाने वाले आवरण का पर्दाफाश किया। पूजीवादी शोषण प्रच्छन्न ढग से होता है। वह दास स्वामित्व वाली प्रणाली और सामन्तवादी शोषण से बहुत कम दृष्टिगोचर है। अतिरिक्त मूल्य का मुख्य स्रोत है मजदूरो का श्रम जिसका एक हिस्सा श्रम शक्ति खरीदने वाले पूजीपति बिना प्रतिपूर्ति के हस्तगत कर लेते हैं। अत अतिरिक्त मूल्य वह मूल्य है, जो उजरती मजदूरो के श्रम द्वारा अपनी श्रम शक्ति के मूल्य के अतिरिक्त निर्मित किया जाता है और पूजीपति बिना प्रतिपूर्ति के उसे हस्तगत कर लेते है। अधिकतम अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन और उजरती (मेहनतकश) मजदूरो के शोषण के माध्यम से पूजीपतियो द्वारा उसका हस्तगतकरण पूजीवाद का मुख्य आर्थिक नियम है।

अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन और हस्तगतकरण की विधि यह है कि समस्त कार्य दिवस को सामाजिक रूप से आवश्यक काल और अतिरिक्त काल मे विभाजित किया जाता है। कार्य दिवस के पहले भाग मे श्रमिक अपनी श्रमशक्ति के मूल्य के बराबर मूल्य का निर्माण करता है। कार्य दिवस का यह भाग स्वय श्रमिक और उसके परिवार के जीविका के साधनो के उत्पादन के लिए आवश्यक है। यह आवश्यक श्रम काल है, जबकि आवश्यक श्रम काल मे किया गया श्रम आवश्यक श्रम है। अपने कार्य दिवस के दूसरे भाग मे श्रमिक अतिरिक्त मूल्य का निर्माण करता है। कार्य दिवस का यह भाग अतिरिक्त श्रम काल है। जबकि अतिरिक्त श्रम काल मे किया गया श्रम अतिरिक्त श्रम है।

मुनाफे के बारे मे रिकार्डो का मत है कि "एक उद्योगपति अपना मुनाफा उस अतिरिक्त उत्पादन से प्राप्त करता है, जिसके लिए वह श्रमिक को कोई मजदूरी नही देता है।" इस सन्दर्भ मे प्रूधा का विचार है, "उद्योगपतियो द्वारा किराए, सूट, और मुनाफे के रूप मे अर्जित सभी धन अतिरिक्त श्रम द्वारा पैदा किया हुआ धन होता है।"[17]

मार्क्स ने इन्ही सिद्धान्तो को अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का आधार बनाया एव स्पष्ट किया कि कोई भी वस्तु अपने सही मूल्य से अधिक मे नही बेची जाती मुनाफा उससे चोरी किए गये अतिरिक्त श्रम से प्राप्त होता है। मान लीजिए एक पूजीपति 100 रु० की लकडी खरीदता है और बढई से फर्नीचर तैयार कराने के लिए उसे 50 रु० मजदूरी देता है। इस प्रकार 150 रु० मे फर्नीचर तैयार होता है, जिसे पूजीपति 200 रु० मे बाजार मे बेचता है। 50 रु० का यह मुनाफा उसे अधिक मूल्य पर बिक्री करने से नही प्राप्त होता है। 100 रु० लकडी का मूल्य घटाने से फर्नीचर तैयार कराने मे 100 रु० का श्रम लगा है। पूजीपति ने बढई को केवल 50 रु० दिया है और 50 रु० का अतिरिक्त श्रम अपनी जेब मे रख लिया है। सही मुनाफा यह अतिरिक्त मूल्य ही है। जिसके लिए वह बढई को कोई पारिश्रमिक नही देता है। अर्थात् पूजीपति श्रमिको से अधिक काम लेकर कम पारिश्रमिक देता है। इस प्रकार मजबूर मजदूर अपना श्रम कम मूल्य पर बेचने को बाध्य हो जाता है। उसके समक्ष दो ही विकल्प है या तो भूखो मरो या अपनी श्रम शक्ति फैक्टरी मालिक को बेचो। पूजीपति किसी वस्तु को जितने दाम पर बेचता है, वही उसका सही मूल्य है,

परन्तु वस्तु की तैयारी मे कम धन देने के कारण ही उसे लाभ या मुनाफा होता है।

श्रम मानवता को परिभाषित करने वाली एक मानवीय प्रक्रिया है। पूजीवादी व्यवस्था श्रम के मानवीय गुणो को समाप्त कर श्रमिक स्वातन्त्रय पर बधन लगाता है वह स्वेक्षा से कार्य न करके अपने अस्तित्व की सरक्षा की मजबूरी मे कार्य करता है। कार्य उसकी आत्म तुष्टि न होकर जीवित रहने की विवशता है। इस प्रकार श्रम उसके स्व की अभिव्यक्ति न होकर उसकी बाध्यता है। परकीय श्रम या विरसन की अवधारणा मार्क्सवादी साम्यवाद के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है। मैल्विन सीमेन द्वारा इसे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है, ''परकीय श्रम के सम्प्रत्यय का प्रयोग शक्तिहीनता, अर्थशून्यता, विच्छेदन अथवा आत्मविरसन जैसे विभिन्न अर्थों मे किया जाता है।''[18] इस्तवेन मैसजारोज के अनुसार मार्क्स के परकीकरण की अवधारणा के चार प्रमुख पक्ष है। (1) व्यक्ति का प्रकृति से विरसन (2) उसका स्वय से विरसन (3) मानव जाति से विरसन (4) व्यक्ति का व्यक्ति से विरसन। श्रमिक को यह ज्ञात है कि जो कुछ भी वह उत्पादित करता है उस पर उसका अधिकार नही है। इस प्रकार श्रमिक और उत्पादन के बीच प्रथकत्व ही परकीकरण या विरसन है। पूजी इसी परकीय श्रम का परिणाम है, जिसमें वह स्वय को नकारता है, दरिद्रता व शारीरिक मानसिक पीडा झेलता है। यह श्रम एक प्रकार से बेगारी का श्रम है।

परकीय श्रम पर प्रतिबन्ध साम्यवादी व्यवस्था में तभी लगाया जा सकता है जब श्रम का उचित विभाजन व वितरण प्रणाली का आधार मानवीय होगा। व्यक्ति स्वातन्त्रय की भावना तभी साकार हो सकती है जब श्रम आन्तरिक आवश्यकता का परिणाम हो न कि बाह्म दबाव का। पूंजीवादी समाज मे श्रमिक गुलामी की जजीरो मे जकडा हुआ यन्त्र कार्य करता है, मार्क्स का मत है, ''पूजीवादी राजनैतिक अर्थशास्त्र सर्वहारा को वैसे ही समझता है जैसे वह कोई घोडा हो, उसको ठीक उतना ही मिलेगा जिससे वह श्रम करने के लिए जीवित रह सके। जब वह श्रम नही कर पाता है तो वह पूजीपति की निगाह मे मनुष्य नही है।''[19] श्रमि के श्रम से प्राप्त पूजी अन्तोगत्वा उसी के शोषण का साधन बनती है।पूजी एक शक्ति रूप मे श्रमिक के श्रम पर शासन करती है, धर्म इसे और तीव्रता प्रदान करके श्रमिको को भ्रमित करता है कि वे कठिन से कठिन परिश्रम करते जाये, क्योकि उन्हे स्वर्ग मे वे चीजे प्राप्त होगी, जो धरती पर

उन्हे नही मिल पा रही है। इस सन्दर्भ मे मार्क्स का कथन दृष्टव्य हे– धर्म परकीय जीवन की अभिव्यक्ति है।"[20] पूजीवादी समाज मे धनवान अधिक धनवान बनता है और गरीब अधिक गरीब यहा मनुष्य ही मनुष्य का शोषक है। साम्यवादी समाज मे पूजीपति एव श्रमिक मे लाभ का समानुपातिक वितरण होगा। ऐसी स्थिति मे नाफाखोर भी श्रमिक हो जाएगा। जब समाज मे सभी श्रमिक हो जायेगे तो वर्ग भेद मिट जायेगा और शोषण की प्रवृत्ति का समूल नाश हो जायेगा।

(4) धर्म और साम्यवाद :

मार्क्स का यह कथन प्रसिद्ध है कि धर्म गरीब जनता की अफीम है। जिसके नशे मे उसका शोषण किया जाता है। "धर्म निर्बल आत्मा की बौखलाहट भरी चीख पुकार और मिथ्या कल्पना के सिवा कुछ नही है।"[21] जब युक्ति सगत विचार श्रृखला टूट रही थी और सामन्ती मानसिकता से ग्रस्त लाग धर्म का घटाटोप खडा कर रहे थे उस समय मार्क्सवादी विचारधारा मानवता को सामाजिक यथार्थ और मूल्यो से जोडने का प्रयास कर रही थी। मार्क्स ने जिस विश्व दृष्टि की स्थापना की है वह प्रकृति तथा समाज के वस्तुगत नियमो पर आधारित है, न किसी धर्म के हवाई किले पर मार्क्सवादी दृष्टि मे धर्म की आलोचना इसलिए भी आवश्यक है कि मनुष्य को मनुष्यत्व का बोध कराकर उसे उदात्त विचार के उच्च स्तर पर स्थापित किया जा सके। मार्क्स के द्वारा की गयी धर्म की आलोचना धार्मिक भ्रम को मिटाती है और धर्म के नाम पर किए जाने वाले शोषण पाखण्ड और अध विश्वास का निराकरण करती है। उसका लक्ष्य मनुष्य को मनुष्य की तरह सोचने और कार्य करने की शक्ति प्रदान करना है। इससे स्पष्ट है कि मार्क्स ने धर्म के नाम पर किए जाने वाले पाखण्ड और धूर्ततापूर्ण आचरण अर्थात् धर्म के मिथ्या स्वरूप का पर्दाफाश करता है। मार्क्स का दर्शन मनुष्य की चेतना को उत्कृष्टता प्रदान करता है। अपने एक निबन्ध मे (हेगल अधिकार सम्बन्धी आलोचना मे योगदान) वह कहता है कि "मनुष्य ही धर्म बनाता है, धर्म मनुष्य का सर्जक नही है, यह कैसी विडम्बना है कि मनुष्य ज्यो–ज्यो धर्म के समीप आता जाता है त्यो–त्यो वह अपने स्वय से दूर हो जाता है। मनुष्य कोई ऐसा हवाई प्राणी नही है जो ससार के बाहर कही बैठा हो। मनुष्य स्वय अपना संसार है और धर्म इस वास्तविक ससार का खोखला सिद्धान्त है एवं मन को बहलाने का श्रद्धोन्माद है। अत धर्म

के विरूद्ध सघर्ष उस काल्पनिक ससार (स्वर्ग) के विरूद्ध संघर्ष है, धर्म जिसका आत्मिक सौरभ है''[22] मार्क्स का दावा है कि इतिहास के आदिम काल मे लोगो को धर्म की जानकारी नहीं थी भविष्य मे वैज्ञानिक प्रगति के साथ–साथ धर्म का समूल नाश हो जायेगा। वस्तुत प्राकृतिक शक्तियो का सामना न कर पाने के कारण अज्ञान वश ईश्वर को जगत का सृष्टा मान लिया गया होगा जहा से धर्म का सूत्रपात हुआ। धर्म वैज्ञानिक प्रगति के मार्ग मे बाधक, शोषक को बढावा देने के कारण मानवता का विध्वसक है। अत वैज्ञानिक प्रगति के मार्ग मे बाधक और मानवता विरोधी धर्म का उन्मूलन अपरिहार्य है। उसका विश्वास है कि ईश्वर के राज्य के नष्ट हो जाने के बाद ही भौतिक ससार की सार्थकता का सही अनुभव होगा। जनता अपने लौकिक अधिकारों के प्रति तभी जागरूक होगी जब उसे स्वर्ग को भ्रम से मुक्ति मिल जायेगी।

उल्लेखनीय है कि मार्क्स ईश्वरवादी धर्म का विरोध रहा है, न कि मानव धर्म का मार्क्सवाद की केन्द्रीय समस्या मानव की समस्या है मार्क्स का मनुष्य महामानव या नीत्शे का अतिमानव नही बल्कि हमारे बीच में विराजमान साक्षात मानव है जो मूलत श्रमिक व सर्वहारा है। उसमे निहित मनुष्यत्व कोई अमूर्त कल्पना नही बल्कि वास्तविक रूप मे मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों का योग है। वह सर्वहारा को पूंजीवादी बेडियो को तोडने वाली चालक शक्ति मानता है। वह कहता है कि, ''पूजीपति के लिए मजदूर मनुष्य नही रह जाता है, बल्कि मुनाफा कमाने मशीन बन जाता है। भेडियो के समान खूखार पूंजीपतियों द्वारा अतिरिक्त श्रम के आधार पर अधिक लाभ कमाने की प्रवृत्ति और इससे बने पूजी का प्रयोग मजदूरो पर एक सशक्त हथियार के रूप मे किया जाना समाज मे शोषण का हृदय विदारक दृश्य उपस्थित करता है। (मार्क्स की इस विचारधारा का प्रभाव हिन्दी साहित्य की प्रगतिवादी कविता मे उपलक्षित होता है। निराला का कुकुरमुत्ता और वह तोडती पत्थर इसका जीवन्त उदाहरण है)।

मार्क्स और ऐगिल्स ने ''कम्यूनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र'' (अध्याय दो एवं तीन) मे कहा है, पुरोहितों और सामन्तो का साथ चोली दामन की तरह है उनके अनुसार ईसाई धर्म वह पवित्र गगा जल है जिसके छींटे मारकर पादरी लोग अमीर उमरा के सतृप्त हृदय को शांत करते है। पादरियो और पुरोहितो के इस उपदेश को शासित लोग सही मान लेते हैं कि वे अपने पूर्व जन्म के पापो का फल भोग रहे है ईसाई धर्म की कटु आलोचना करते हुए मार्क्स ने कहा है,

"ईसाई धर्म के सामाजिक सिद्धान्त कायरता, आत्म प्रवचना, पर वशाता तथा निराशा का उपदेश देते है, वे उन सारे गुणो की शिक्षा देते हैं जो कुत्ते के गुण है सर्व हारा वर्ग यह नही चाहता है कि उसके साथ कुत्ते की तरह व्यवहार किया जाये, वह रोटी से भी अधिक महत्व आत्म सम्मान और स्वतन्त्रता की भावना को देता है। वस्तुत ईसाई धर्म के सामाजिक सिद्धान्त कायरता पूर्ण है और सर्वहारा क्रान्ति को अपना आदर्श मानता है।"[23]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि साम्यवादी जीवन दर्शन स्वभावत आध्यात्म विरोधी है। ईश्वरवादी नीति शास्त्र एक प्रकार का अनीतिशास्त्र है क्योकि वह समाज मे शोषण को बढावा देता है। जो समाज दर्शन और नीतिशास्त्र शोषक वर्ग को नष्ट करे, श्रमिको को सगठित करे वर्गभेद का उन्मूलन करके समता मूलक समाज की स्थापना करे वही साम्यवादी नीति दर्शन और विचार है इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह धर्म निरपेक्षतावाद का समर्थन करके धर्म सघो की जागीरो को जप्त करने के साथ–साथ पैगम्बरी प्रवृत्ति का उन्मूलन करता है। इस प्रकार मार्क्स ने शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए धर्म तत्र को विस्थापित करके अर्थतत्र की स्थापित करने का प्रयास किया।

(ii) प्रगतिवादी कविता पर मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव

(क) नागार्जुन :

प० वैद्यनाथ मिश्र, **'नागार्जुन'** प्रगतिवाद के उन कवियों में है। जिन्हें देश और जनता से असीम प्रेम है। इसकी अभिव्यक्ति उक्त दोनो ही रूपो मे उनकी रचनाओ मे मिलती है। प्रथम रूप में वह अपने हृदय की कोमल मार्मिक अनभूतियो को प्रगट करता है, अपने दूसरे रूप मे वह व्यग्य का अस्त्र ग्रहण कर सामाजिक विषमताओ दैन्यो और विकृतियों को समाप्त करना चाहता है। जो समाज की प्रगति मे बाधक कही जा सकती है।[24] कवि ने सामाजिक विकृतियो और असगतियो को यथार्थवादी दृष्टि से परखा है और वैशम्य के मूल कारणो से अवगत होने का भी प्रयास किया है।

कवि नागार्जुन के काव्य मे सम्पूर्ण देश का दर्द और दु:ख साकार हो उठा है। 'सतरगे पखों वाली' काव्य सग्रह की 'देखना ओ गंगा मैया', 'खुरदुरे पैर' इसी प्रकार की ग्रामीण और नागरिक जीवन की विषमताओं को प्रत्यक्ष

करती है। देना ओ गगा मैया, शीर्षक कविता मे कवि ने एक चित्र उपस्थिति कर मल्लाहो के वैषम्य पूर्ण जीवन को चित्रित किया है। जिनके वस्त्रहीन बच्चे पानी मे कुछ पैसो को खोजने के लिए खडे रहते हैं, इस प्रतीक्षा में कि सभवत वे उन्हे प्राप्त हो जाए। इस प्रकार कवि ने कविता के माध्यम से जीवन के वैषम्य और दयनीय पक्ष को प्रस्तुत किया है—

> "मल्लाहो के नग धडग छोकरे दो दो पैर हाथ दो दो
> प्रवाह मे खिसकती रेत की ले रहे छोह
> बहुधा अवरित चतुर्भुज नारायण ओह
> खोज रहे पानी मे जाने कौस्तुभ मणि।"[25]

नागरिक जीवन के वैषम्य से सम्बन्धित कविताए भी कवि की लेखनी का विषय रही है। 'खुरदुरे पैर' शीर्षक कविता मे कवि ने रिक्शे वाले के जीवन की झाकी को प्रस्तुत किया है, जिसके जीवन मे सुख नाम की कोई वस्तु नही है—

> "धंस गये कुसुम कोमल मन में
> गुट्ठल घुटने वाले कुलिश कठोर पैर
> दे रहे थे गति खण्ड विहीन ठूठ पैडलो को
> चला रहे थे एक नही, दो नहीं, तीन–तीन चक्र
> कर रहे थे मात त्रिविक्रम वामन के पुराने पैरों को
> नाप रहे थे धरती का अनहद फासला
> घटो के हिसाब से ढोए जा रहे थे।"[26]

नागरिक जीवन के वैषम्य से सम्बन्धित अन्य कविताए 'प्यासी पथराई आखे' काव्य संग्रह मे सग्रहीत है। 'आदम का तबेला' शीर्षक कविता मे कवि ने कल्कत्ते के मध्यमवर्गीय परिवारो के दयनीय चित्रो को उपस्थित किया है —

> "ऊपर देखते है बाल्टियो के ढेर पितरो की प्यासी रूहे।
> अंगूठा चूसती नवजात बच्ची
> खिडकी से लटका दिया गया है लाल खिलौना।"[27]

कवि सामाजिक विषमता का मूल स्रोत पूंजीवादी सभ्यता और संस्कृति को मानता है। उसका विश्वास है कि इसी के कारण समाज मे विभिन्न प्रकार की असगतियां जन्मी हैं। पूंजीपतियो द्वारा किए गये कृषको पर अत्याचारो से कवि पूर्णत. क्षुब्ध हुआ है और शोषित वर्ग के प्रति कवि ने पूर्णत. सहानुभूति

प्रदर्शित की है। 'सच न बोलना', 'राम राज्य' आदि कविताओ मे कवि ने इस प्रकार के पूजीपतियो के नृशस अत्याचारो का वर्णन किया है–

"जमीदार है, साहुकार है, बनिया हे, व्यापारी है,
अन्दर–अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है।
सब घुस आये, भरा पडा है भारत माता का मन्दिर,
एक बार जो फिसले अगुआ, फिसल रहे हैं फिर, फिर, फिर।"[28]

इसी प्रकार से एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है –

खादी ने मलमल से अपनी साठ–गाठ कर डाली है।
विडला टाटा डाल मिया की तीसो दिन दिवाली है।
जोर जुलुम की आधी चलती बोल नही कुछ सकते हो।
समझ नही पाता कि हुकूमत गोरी है या काली है।[29]

कृषक वर्ग के अतिरिक्त समाज के अन्य उपेक्षित वर्गों के प्रति भी कवि की पूर्ण सहानुभूति देखी जा सकती है। 'घिन तो नही आती है' शीर्षक कविता मे श्रमिको के जीवन को कवि ने पूर्ण रूप से आंकने का प्रयास किया है। अधिक अथक परिश्रम करने के पश्चात् भी उनका अपने श्रम का उचित मूल्याकन नही हो पाता है। कवि नागार्जुन उस वर्ग की झाकी प्रस्तुत करते हुए कहते है–

"कुली मजदूर है बोझा ढोते हैं खीचते हैं ठेला,
धूल धुआ भाप से पडता है सबका
थके मादे जहा तहा हो जाते हैं ढेर
सपने में भी सुनते है धरती की धडकन।"[30]

कवि नागार्जुन ने केवल भारतीय जनता के दुख और वैषम्यो के स्वरो को ही अपने काव्य मे प्रतिध्वनित नही किया है। अपितु आस्था, विश्वास, तथा नये सकल्पो को लेकर एक प्रखर और क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का भी परिचय दिया है। उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा उसकी शक्ति को उभारने और उसकी अन्तिम विजय मे विश्वास प्रकट करने वाली बहुत सी कविताएं है जिनसे मार्क्सवादी व साम्यवादी क्रान्तिकारी विचारधारा के स्वर प्रतिध्वनित होते है।

'तुम किशोर तुम तरूण' शीर्षक कविता मे कवि ने नवयुवकों को भावी निर्माण का कर्ता तथा उनसे जीवन सघर्षों में आने वाली बाधाओ को सहन करने की शक्ति के लिए आग्रह किया है–

"तन जर्जर है भूख प्यास से, व्यक्ति व्यक्ति दुख दैन्य ग्रस्त है,

दुविधा मे समुदाय पस्त है लो मशाल, अब घर–घर को आलोकित कर दो

सेतु बनो प्रज्ञा प्रयत्न के मध्य, शान्ति को सर्व मंगला हो जाने दो।"[31]

इसी प्रकार कवि ने अपने काव्य मे पीडित दर्द और कसक के साथ ही उसकी अदम्य जीवनेच्छा की भी अभिव्यजना की है। जो जीवन से सघर्ष के लिए कटिबद्ध है। कवि को पूर्ण विश्वास है कि परिवर्तित परिस्थितिया किसानो और मजदूरो को उनके अधिकारो, व भूमि आदि पुन वापस दिला देगी, और पुन साम्यवाद स्थापित हो जायेगा। कवि अपनी 'लाल भवानी' शीर्षक कविता मे इन्ही सकल्पो को वाणी देता है।

"सेठ और जमीदारो को नही मिलेगा एक छदाम,
खेत खान–दूकान मिलें सरकार करेगी दखल तमाम
खेत मजदूरो और किसानो मे जमीन बंट जायेगी
नही किसी कमर के सिर पर बेकारी मंडरायेगी,
नौकरशाही का यही रद्दी ढाचा होगा चूरमचूर,
सुजला सुफलां के गायेगे गीत किसान मजदूर।[32]

इस कविता मे मार्क्सवादी दर्शन की अन्तिम या चरम स्थिति साम्यवाद की स्थिति का वर्णन है। प्रगतिवादी काव्यधारा के समस्त कवियो में नागार्जुन का 'एक विशिष्ट स्थान है। मार्क्सवादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे नागार्जुन यद्यपि कि मार्क्सवाद के प्रचारात्मक स्वरूप को नही ग्रहण कर सके हैं फिर भी उनकी कविता मे इस विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कवि नागार्जुन जन जीवन के कवि है, जन भावनाओ को अभिव्यक्ति प्रदान कर जनता तक उसे पहुचाना ही कवि का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इन्ही जनमत के स्वरो को वाणी प्रदान करने मे एक प्रकार की क्रान्तिवादिता मिलती है। जनजीवन के यथार्थ चित्रो को प्रसूत करना उनके काव्य का प्रधान लक्ष्य रहा है। इसी कारण वे आज जीवित न होते हुए भी जन जीवन मे लोकप्रिय है।

(ख) राम विलास शर्मा :

प्रगतिवादी काव्यधारा को, स्वस्थ नवीन दिशा की ओर प्रस्तुत करने मे डॉ० राम विलाश शर्मा का एक प्रमुख प्रदेय है। शर्मा जी समाजवादी विचारधारा पर आस्था रखने वाले समीक्षक व कवि है इसी कारण उन्होने अपनी

समीक्षात्मक कृतियो एव कविताओ मे मार्क्सवादी आदर्शों का दृढता के साथ प्रतिपादन किया है। जो वैज्ञानिक भौतिकवाद की नीव पर आधारित है।

शर्मा जी का कवि रूप 'तार सप्तक' और 'रूप तरग' मे सग्रहीत कविताओ के माध्यम से परखा जा सकता है। प्रगतिशील आन्दोलन के विकास मे आपका महत्वपूर्ण हाथ रहा है। इसका स्पष्टत प्रभाव कवि की प्रारम्भिक रचनाओ मे भी देखा जा सकता है। यद्यपि उसके स्वरो मे परवर्ती क्रान्तिवादिता, और प्रखरता आदि के चिन्ह नही मिलते हैं, फिर भी वर्गभेद, सामाजिक विषमता आदि के स्वर उसमे मौजूद है।

''त्रस्त सभी हो दुष्ट, क्रूरता दूर हो, साम्य समक्ष असीम विषमता दूर हो।
कायरता हो दूर दासता दूर हो, देश सुखी हो सभी देश भरपूर हो।''[33]

इसी प्रकार ग्रामीण जीवन की कारुणिका स्थितियो के चित्रण से सम्बन्धित 'रूपतरग' की एक प्रमुख कविता 'सिलहाट' है जिसमे कवि ने सीला बीनने वाले उन खेतिहर मजूदरो के प्रति पूर्ण रूप से सहानुभूति प्रदर्शित की है, जो वर्ष भर अथक परिश्रम के पश्चात् उपहार स्वरूप में केवल धरती के बचे हुए दाने पाते है। कवि ने इस प्रकार के दैन्य और वैषम्य तथा सामन्तवादी शोषण के चित्रो को निम्नलिखित पंक्तियो मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

''छोटा सा सूरज सिर पर बैसाख का
काले धब्बे से बिखरे वे खेत मे।
फटे अगोछे मे, बच्चे भी साथ ले
ध्यान लगा सीला चमार हैं बीनते,
खेत कटाई की मजदूरी
इन्ही ने जोता बोया सीचा भी था खेत को।''[34]

इसी प्रकार 'बैसवाडा' शीर्षक कविता मे शोषक जमीदारो एव पूजीपतियो के नृशस अत्याचारो को वर्णित किया है, जिन्होने श्रमिकों को उनके श्रम का उचित मूल्य न देकर अतिरिक्त पूजी जो कि श्रमिकों के हिस्से की थी पूजीपतियो द्वारा हडप ली गई। श्रमिकों द्वारा अर्जित अतिरिक्त मूल्य के द्वारा ही उसका शोषण अनवरत चलता रहता है। उनका तन सूख गया है और जीवन के झझावातो से एव भूख से सघर्ष करते उनकी देह मे शक्ति नही रही उनके सारे परिश्रम का मूल्य केवल सीला ही है–

''इस धरती पर जो श्रम करते है,
उनके तन के पर्तो मे अब सूख गया है।
रक्त, रेत पर गिरी हुई जल की बूदो सा,
जमीदार के 'जन' है सब कोठी चमार,
करते है जो नित ही बेगार
सीला भर जिनका पगार।''[35]

कवि ने ग्रामीण जीवन के दु ख दैन्य को ही अपने काव्य का विषय नही बनाया है, अपितु नागरिक जीवन की विषमताओ और विकृतियो से सम्बन्धित कविताओ की भी सृष्टि की है। पूजीवादी विषमता के मध्य मे पोषित नागरिक जीवन को उसकी काली छायाओ मे घुटते हुए चित्रित किया है। एक ओर आर्थिक वैषम्य युद्धो के परिणाम स्वरूप भ्रष्टाचार अनैतिकता आदि तथा इन सारी विकृतियो के बीच जीने वाले नर कंकाल और उनका जीवन इन कविताओ मे मूर्त हुआ है। आज की सभ्यता ने नागरिक जीवन को कितना विशाक्त बना दिया है, वह कवि की इन पंक्तियो मे देखा जा सकता है–

''ककाल हड्डियो के रक्तहीन मासहीन ककाल,
मासल बलिष्ट नहीं भुजायें रक्ताभा नही कपोलो पर,
परतन्त्र देश के युवक है, कहा है जीवन?
कहां है चिरंतन आत्मा?
हड्डियों का सघर्ष जीवन है
हड्डियो मे बसा हुआ ताप ही आत्मा है''[36]

'गुरूदेव की पुण्य भूमि' शीर्षक कविता में पूजीपति द्वारा मनमाने ढंग से एकत्रित की गई लाखो की सख्या मे पूजी से उत्पन्न आर्थिक वैशम्यता का चित्रण निम्न पक्तियो मे किया गया है –

'भाई–भाई से जुदा
चिता पर लडते है भाई–भाई,
दो भीरू श्वान से कायर,
लाखों की रकमे काट रहे हैं काट रहे है,
गले करोणों के छिप–छिप कर कायर।''[37]

'विश्वशान्ति' और 'कलियुग' आदि भी इसी प्रकार की अन्य कविताएं है जिसमे कवि ने इसी प्रकार के विषमतापूर्ण चित्रो को प्रस्तुत किया है। कवि राम

विलास जी की कविताओ एक पक्ष वह है जिसमें उन्होंने आस्था विश्वास और जनशक्ति के ओजस्वी स्वरो का आवाहन किया है। विषमताओ के बीच से वह एक नये भविष्य का निर्माण करने वाली जनशक्ति पर आस्था प्रकट करता है। क्रान्ति के लिए जन साधारण मे असतोष बीज उत्पन्न करना कविता का लक्ष्य रहा है कवि के शब्दो मे–

''हॉ जन सस्कृति का पर्व कार्तिकी आयेगा,
ये वियाबान उद्यान नये जीवन से फिर सकुल होगे।
गत सामन्ती सस्कृति के दूतो पर आश्वस्त सुनाई देगी फिर,
गगा की अविरल धारा सी नवयुग की श्रमकर जनता की पदचाप नयी।''[38]

'पजाब हत्याकाण्ड' शीर्षक कविता मे कवि ने यह आशा और विश्वास दिलाया है कि नवीन पीढिया इन अत्याचारो और शोषण को समाप्त कर देगी और इस प्रकार नवीन सूर्योदय होगा।

''नयी फसल देगी फिर धरती लपटो से झुलसायी।
खाद बनेगे लूट और हत्या के ये व्यवसायी।
पाच नदियां एक साथ सीचेंगी यह हरियाली।
लपटों के बदले होगी उगते सूरज की लाली।''[39]

यह सूरज की लाली अप्रत्यक्ष रूप से रूस की लाल क्रान्ति की ओर इशारा करता है। इस प्रकार हमे इनकी कविताओ पर पर्याप्त रूप में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

(ग) शिव मंगल सिंह 'सुमन' :

कवि शिव मंगल सिंह सुमन की प्रगतिशील कविताएं जहां एक ओर राष्ट्रीय भावधारा को लेकर चलती हैं, वही दूसरी ओर सामाजिक विषमता व वर्ग भेद, आदि मार्क्सवादी चिन्तन का प्रभाव भी उनमे देखा जा सकता है। राष्ट्रीयता के स्वरो का आवाहन वैसे तो कवि ने परवर्ती कृतियो मे ही प्रमुख रूप से किया है। लेकिन इस प्रकार की प्रथम प्रवृत्ति 'हिल्लोल' की 'जागरण' कविता से प्राप्त होती है।

'सुमन' की राष्ट्रीय कविताओं का एक पक्ष वह है जिसमें कवि ने साम्राज्यवादी एवं पूजीवादी शक्तियों का घोर विरोध किया है। कारण, उसका विश्वास है कि जन जीवन मे विषमता उत्पन्न करने का मूल दायित्व इन्ही

शक्तियो पर है। कवि का पूर्ण विश्वास है कि वर्तमान जीवन मे जो विषमताये परिव्याप्त है इसका एक मात्र कारण पूजीवादी कविता और सस्कृति है। जिनसे आज का युग सघर्षपूर्ण हो गया है। समाज मे दिखाई पडने वाले सघर्ष के मूल मे इन्ही की स्थिति है। समाज का शोषक वर्ग सर्वहारा शोषितो पर अत्याचार करता है और उनके श्रम का उचित मूल्याकन न कर उनके जीवन को दुखद और विषम बना देता है–

> "किए देव का प्रकोप यह, यह अजगर ने चूस लिया है।
> या मानव की दानवता ने इसका जीवन लूट लिया है।
> यह पूजीवादी समाज के जुल्मो का जजाल पडा है।
> यह किसका कंकाल पडा है।"[40]

इसी प्रकार समाज का शोषक वर्ग सर्वहारा वर्ग पर किस प्रकार अत्याचार करता है ये पंक्तिया इसकी साक्षी है–

> "कुत्ते के पजों से आहत जर्जर तन बलहीन
> श्वान झपट ले जाता होगा मुह की रोटी छीन।
> "बीन सडा मैला नाली का, मुंह मे लेता डाल।
> भूख? भूख ने मिटा दिया है, भले बुरे का ख्याल।"[41]

यह कवितायें कवि की सामाजिक चेतना को पूर्ण रूप से निखारती है। सामाजिक चेतना कवि के व्यक्तित्व का एक प्रकार से प्रधान अंग सा लगता है। 'जीवन के गान' प्रलय सृजन' संग्रहों मे इसी प्रकार के सामाजिक दु.ख दैन्य के चित्र कवि ने खींचे है। 'जीवन के गान संग्रह' में इस प्रकार की अनेक कविताये है जिनमे 'हाय नहीं यह देखा जाता' 'यह किसका ककाल पडा है' आदि कविताये विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'यह किसका कंकाल पडा है' शीर्षक कविता मे मानव जीवन के आर्थिक वैषम्यो के चित्र, पूजीवादी व्यवस्था से दु.खपूर्ण जीवन व्यतीत करने को बाध्य उन मजदूरों और श्रमिकों के जीवन को चित्रित करने का प्रयास किया गया है, जो ग्रीष्म की प्रचड धूप में अपने परिवार का पोषण करने के लिए पसीना बहाकर कार्य किया करते हैं। उनकी स्त्रिया अपने दुधमुँहे बच्चों को भी भूमि पर लिटाकर काम करने चली जाती है, यहा निम्न पक्तियो में कवि ने इसी प्रकार के चित्र को बडा सजीव स्वरूप प्रदान किया है–

> "पापी पेट पालने मे ही स्नेह सरसता छली गई है।
> छाती पर पत्थर धर मां, अभी काम पर चली गई है।

जिसका स्नेह लाडला पथ पर दीन दुखी अनाथ पडा है।
यह किसका कंकाल पडा है।''[42]

'विश्वास बढता ही गया' काव्य संग्रह अन्य अनेक सामाजिक वैषम्य के चित्रो के साथ कवि ने परम्परागत धार्मिक मूल्यो एव मान्यताओ पर भी प्रहार किया है। इससे मार्क्स के इस सिद्धान्त कि **'धर्म मनुष्य के लिए अफीम के समान हैं'** की प्रतिध्वनि निम्न पक्तियो मे सुनाई देती है–

''ईश्वर–ईश्वर मे आज पड गया अन्तर
दुकडो–टुकडो मे बटा मनुजता का घर
ली ओढ धर्म की खोल, पर हृदय सूना
पूजन–अर्चन सब व्यर्थ देवता पत्थर।''[43]

भावावेश की प्रधानता के कारण ही सुमन के काव्य मे प्रचारात्मकता तथा उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। 'प्रलय सृजन' की अन्त की कविताये इसी प्रकार की हैं। 'सोवियत रूस के प्रति' मास्को अब भी दूर है' 'स्तालिन ग्रेद' लाल सेना आदि कविताओ में द्वितीय महायुद्ध के समय रूस को मानवता के कल्याण का प्रतीक मानकर ये कविताये लिखी गई हैं। सोवियत रूस के प्रति' शीर्षक कविता में कवि रूस को नवसंस्कृति के अग्रदूत के रूप मे स्वीकार करता है। इन्ही भावो को कवि व्यक्त करता हुआ कहता है कि–

''नव सस्कृति के अग्रदूत है पद दलितो की आस।
एक तुम्हारी गति पर अटकी, मानवता की सास।
पर अजेय है आज तुम्हारी, पहले से भी शक्ति।
जिसमे मिली विश्व भर के, दलितों की चिर अनुरक्ति।''[44]

इसी प्रकार 'मास्को अब भी दूर है' शीर्षक कविता में कवि ने मास्को को साम्यवादी, मार्क्सवादी, शासन व विचारधारा के आधार स्तम्भ के रूप मे वर्णन किया है–

''यह दलितो की तीर्थ भूमि है, युग का प्रबल तकाजा।
सर्वप्रथम साम्राज्यवाद का निकला यही जनाजा।
यहा संगठित जन जीवन की, बोला करती तूती।
जिसने युग की बर्बरता को दे दी आज चुनौती।''[45]

कुछ इसी प्रकार की भावनाये, 'विश्वास बढता गया' संग्रह की 'नया चीन' कविता मे भी प्रतिध्वनित हो रहा है। कुल मिलाकर 'शिव मंगल सिह सुमन' की

बहुत सी और भी रचनाये है जिनका यहा वर्णन हम नही कर पा रहे हैं वे भी मार्क्सवादी साम्यवादी, क्रान्तिकारी दर्शन से अशत प्रभावित अवश्य है।

(घ) रांगेय राघव :

हिन्दी के प्रगतिवादी काव्यधारा मे कविवर रागेय राघव का एक विशिष्ट एव महत्वपूर्ण प्रदेय है। आपका वास्तविक नाम टी०एन०बी० आचार्य था। साहित्यिक क्षेत्र मे प्रवेश करने पर आपने अपना नाम रागेय राघव अपनाया। हिन्दी साहित्य की समस्त विधाओ मे अपनी लेखनी चलाने वाले कविवर रागेय राघव की कविताओ मे प्रगतिशील चेतना, साम्यवादी दर्शन के तत्व पर्याप्त रूप से मौजूद है। युग जीवन के यथार्थ वास्तविकताओ, विषमताओं और दु ख दैन्य के चित्रो को कवि ने अपने शब्दो के माध्यम से मार्मिक अभिव्यक्तिया प्रदान की है। 'राह के दीपक' काव्य सग्रह मे कवि ने युगीन यथार्थ को चित्रित करते हुए सामाजिक वैषम्य और वर्गवाद का प्रधान कारण पूजीवादी सभ्यता और सस्कृति को माना है। कवि पूंजीवादी शोषण और अत्याचारो पर प्रहार करता हुआ कहता है –

> "मै आज सभ्यता के पुतले, धन दीवानो से पूछ रहा।
> यह क्या सूहर ही बना दिया, हरिजन के बच्चो को तुमने।"[46]

इसी प्रकार–

> "ये मानव के खूनी वैभव ये दुख के अन्तिम चरण चिन्ह
> असमान रूप के महा स्तंभ मानवता के अपमान दंभ।"[47]

'पिघलते पत्थर' और राह के दीपक काव्य संग्रहो में किसानो, श्रमिको, और उपेक्षित वर्ग के प्रति हार्दिक सहानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है। इस सन्दर्भ मे 'पिघलते पत्थर' की 'साम्राज्यवाद के प्रति' 'अमर गीत' 'उफान' 'श्रमिक' आदि। कविताएं उल्लेखनीय हैं जिसमे कवि ने आर्थिक जीवन के वैषम्य के चित्र प्रस्तुत किए हैं। 'उफान' कविता मे शोषित वर्ग के प्रति कवि की सवेदनाये दृष्टव्य है–

> "क्या कहूँ घुटते ह्रदय की बात।
> हड्डियों का ढेर, जिस पर ललकते हैं गिद्ध।"[48]

ये गिद्ध और कोई नही है, पूजीवादी आर्थिक शोषण का गिद्ध है। बुर्जुआ पूजीवादी शोषण से सर्व हारा कृषक मजदूर वर्ग के जीवन के विभिन्न पक्षो को 'मजदूर' कविता मे कवि ने बडा ही मार्मिक वर्णन किया है–

> "मा कधो पर धरे बेलचे, कहा जा रहे है मजदूर।
> और चले ये सन्ध्या आते, ऐसे जाने कितनी दूर।
> आने–जाने सूखे आनन एक व्यथा से रहते चूर।
> जर्जर श्रम मय क्लान्त विक्षुब्ध नत रजमय गन्दे दु ख भरपूर।"[49]

इस प्रकार शोषित कृषक, श्रमिको की इस हृदय विदारक दशा के मूल मे कवि का शोषण के विरूद्ध मार्क्सवादी दार्शनिक चिन्तन झलकता है।

इस शोषण के विरूद्ध सर्वहारा वर्ग से कवि क्रान्ति का आवाहन करता है। का 'वन्दना' शीर्षक कविता मे मानव को क्रान्ति का सन्देश सुनाता है–

> "विश्व का प्रतीक मानव उठे मानव दीप्तिमय .
> कर शक्ति गर्जन
> स्वस्ति वाचन
> मुक्ति गायन...... .
> ज्ञान पथ गतिमान सारा विश्व हो द्युतिमान.....

कवि को यह पूर्ण विश्वास है कि जनशक्ति इस क्रान्ति को लाने मे सक्षम होगी, पूजीवादी व्यवस्था व शोषण का अन्त होगा, इसी आस्था एवं विश्वास को कवि निम्न पक्तियों में अभिव्यक्त प्रदान की है।

> "तो युग–युग का लेकर संगीत, बदलेगे विनिमय का माध्यम।
> हम हैं नव युग के अग्रदूत, शोषक का करने दर्प चूर।"[51]

इसी प्रकार की भावनाये 'स्वस्तिवाचन' माझी' 'चुनौती' 'राष्ट्र की पुकार' 'तडकती बेडिया, सूर्योदय 'तूफान गरजता है' 'तलवार का गीत' आदि कविताओ मे भी अभिव्यक्त हुई है। यहा पर कवि के क्रान्तिवादी स्वर पूर्ण प्रखरता से अभिव्यक्त हुआ है।

> "युग युग के चेतना दीप उठा
> घर घर लोक मन्दिर छाये। तू फिर से अपना चरण उठा
> तू फिर से मैया पहरादे जन–जन मिल मिलकर गायेगा।
> तू बांट उठा दे अभय कर, साम्राज्य विकल थर्रायेगा।"[52]

इसी प्रकार का क्रान्तिकारी मार्क्सवादी दर्शन व साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित अनेक कविताओ मे ये स्वर स्पष्टत गूजे है। जो कि पूंजीवादी बुर्जुआ शोषणवादी नीति का वर्ग सघर्ष का समाधान क्रान्ति के माध्यम से करने पर बल देती है। पूजीवादी व्यवस्था का पतन व साम्यवादी व्यवस्था, समाजवादी विचारधारा की पुर्नस्थापना इन कविताओ का मूल विषय रहा है, रागेय राघव इन विचारधाराओ को अभिव्यक्ति देने मे पूरी तरह खरे उतरे है।

(ङ) कवि केदारनाथ अग्रवाल :

कवि केदार की रचनाये हमे युगीन सामाजिक यथार्थ एव वास्तविकताओ से परिचय कराती है। उनकी कविताओ का व्यापक कैनवास उनके युगदर्शन का परिचायक है। उनकी कविताये सामाजिक विषमताओ व दुख दैन्य को पूरी मार्मिकता के साथ चित्रित करती है। पूजीवादी शोषण, एव तद्जनित परिणामो का अकन उनके काव्य कैनवास पर पूर्णत अपने यथार्थ स्वरूप में चित्रित हुआ है। 'मार्क्सवादी' दार्शनिक चिंतन से प्रभावित कवि पूजीवादी सभ्यता एव सस्कृति का विनाश करना चाहता है, क्योकि युग की समस्त विषमताये और उत्पीडन का कारक यही है। इसीलिए कवि ने अपने काव्य का विषय सर्वहारा वर्ग के उत्थान व श्रमिको व कृषको को ही बनाया है। 'युग की गंगा काव्य संग्रह' मे 'मजदूर' 'चन्दू' 'चैतू' अङ्गर आदि कविताओ में ग्रामीण जीवन के वैषम्य के चित्रो को वास्तविकता की अनुभूति प्रदान की गई है। 'मजदूर' कविता का एक उदाहरण यहॉ दृष्टव्य हैं—

> "खाते है पेट की थैली में गाडते,
> रोटी के टुकडों को दांत से काटते।
> मांजते हैं बरतन, नंगी ही धरती परसोते हैं।
> काखते, हाफते, रोज की बदबू मे सडते है दुनियां की।"[53]

इसी प्रकार 'अमीनाबाद' कविता मे नागरिक जीवन के विषमताओ का दर्शन हमें हो जाता है। कविता की अन्तिम पक्तियां निम्न प्रकार है—

> "आह! उमडकर उठती है नगे भूखों की
> काल रात्रि का 'नाग' नाचता है फन फाडे
> यही अमीनाबाद है।"[54]

सामाजिक विषमताओ व शोषण को मिटाने के लिए कवि ने क्रान्ति के स्वर को बुलद किया है। 'युग की गंगा' 'कोयले' शीर्षक कविता मे, कोयला श्रमजीवी का प्रतीक है, जो कि जीपन मे नवीन चिनगारी के आगमन से शिव के नेत्र के समान लाल हो जल उठे है। कवि इन्ही भावों को व्यक्त करते हुए कहता है कि –

"जल उठे है तन बदन से
क्रोध मे शिव के नयन से।
खा गये निशि का अधेरा
हो गया खूनी सबेरा।।"[55]

यहा खूनी सबेरा का निहितार्थ क्रान्ति की पूर्णता से है। वही क्रान्ति जो मार्क्सवादी दार्शनिक विचारधारा का मूल आधार है। 'युग की गगा' मे 'गर्रा नाला' और 'गेहूँ' कविता भी मार्क्सवादी क्रान्तिकारी चेतना से अप्लावित है।

"ऊँचा गेहूँ डटा खडा है,
ताकत से मुट्ठी बाधे, नोकीले भाले ताने है।"[56]

कवि केदार की प्रगतिशील कविताओ मे क्रान्ति के उद्बोधनात्मक स्वरो की अभिव्यक्ति मिलती है। 'जनघन' कविता मे कवि ने इसी प्रवृत्ति का निर्वाह करते हुए क्रान्तिपूर्ण स्वरो का आवाहन किया हैं–

"घन गरजे जन गरजे बंदी सागर को लख कातर।
एक रोष से घन गरजे जन गरजे।"[57]

जीवन और जगत की क्रूरताओं से क्षुब्ध कवि ने उसके विरूद्ध आक्रोश मे आकर उपेक्षा और विद्रोह के क्रान्तिकारी स्वरो को अभिव्यक्ति प्रदान की है–

"ऐ दधीचो शक्ति का डका बजाओ, शान्ति का उल्लासमय सूरज उगाओ।
लाल सोने का सबेरा चमचमाओ लेखनी के लोक में आलोक लाओ।"[58]

'यहॉ लाल सोने का सबेरा' में लाल रग क्रान्ति का प्रतीक है। इसी प्रकार 'लोक और आलोक काव्य सग्रह में अनेक ऐसी कविताए है जिसमे कवि ने प्रखर और क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया है। "किसान" कविता मे कवि किसानो को सम्बोधित करते हुए क्रान्ति का आवाहन करता है–

"आजादी की हर तडपन को बारम्बार जिलाये जा,
अपनी कुटिया की चिनगारी से सबको आग लगाये जा।"[59]

यहा कवि ने साम्यवादी शासन की स्थापना के लिए पूजीवाद के विनाश को आवश्यक माना है। इसके लिए कृषक मजदूरो को क्रान्ति द्वारा आत्म बलिदान द्वारा इस पूजीवादी व्यवस्था को उखाडना होगा तभी मार्क्सवादी दर्शन का अन्तिम लक्ष्य समानता आ सकेगी, भले ही इसके लिए उसे अपना सर्वस्व स्वाहा ही क्यो न कर देना पडे।

इसी प्रकार 'हथौडे का गीत' शीर्षक कविता मे कवि बधन की दीवारे तोडने के लिए कहता है—

"मार हथौडा कर कर चोट
लोहू और पसीने से ही,
बधन की दीवारे तोड।"[60]

कवि केदार की वाणी मे पर्याप्त निर्भीकता एव आक्रोश है। वह मानव को उसकी यथास्थिति, या भाग्य के भरोसे नही पडे रहने की बात करते हैं, बल्कि उसे कर्म के महत्व को समझाते हुए क्रान्ति करने और उसके परिणाम स्वरूप लाल सुबह जो कि क्रान्ति का परिणाम और रूसी क्रान्ति का प्रतीक भी है को गले लगाने की बात करता है। इस प्रकार कवि केदार मार्क्सवादी दार्शनिक और वैचारिक पृष्ठभूमि पर पूरी तरह खरे उतरते है—

"ऑधी के झूले पर झूलो आग बबूला बनकर फूलो।
कुरबानी करने को झूलो, लाल सबेरे का मुंह चूमो।।"[61]

कवि केदार के सम्बन्धो मे श्री रामेश्वर शर्मा लिखते है कि केदार के विषय में जैसा कि पूर्व कहा गया, हिन्दी में अन्य सभी कवियों की अपेक्षा वे अधिक सफल हुए हैं इसका कारण उनकी ग्राम जीवन से निकटता है यथार्थ भेदिनी दृष्टि तथा उनका महान जनवादी दृष्टिकोण है।"[62]

'कटुई का गीत' कविता की कुछ पक्तियां इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है—

"काटो काटो करबी साइत और कुसाइत क्या है?
जीवन से बढ साइत क्या है?
मारो मारो मारो हॅसिया। हिंसा और अहिंसा क्या है?
जीवन से बढ हिसां क्या है?"[63]

इस प्रकार 'मार्क्सवादी दार्शनिक विचारधारा' को अपने काव्य सृजन मे समाहित करके कवि केदारनाथ अग्रवाल ने प्रगतिशील व प्रगतिवादी हिन्दी काव्य धारा को एक नवीन दिशा एव गति प्रदान की है।

(च) कवि त्रिलोचन :

कवि त्रिलोचन की सामाजिक सस्कारशीलता उनकी प्रगतिवादी कविताओ मे जो मार्क्सवादी दर्शन से पूरी तरह प्रभावित है देखी जा सकती है। ये रचनाये सामाजिक पृष्ठभूमि को ग्रहण करके सामाजिक वैषम्य के चित्र प्रस्तुत करती है। कवि की धारणा यह है कि सामाजिक जीवन मे अशान्ति एव संघर्ष का मूल कारण पूजीवाद है। पूजीवादी समाज शोषक और शोषित दो वर्ग मे विभाजित है, और इन दो वर्गों मे प्रारम्भ से ही सघर्ष होता रहता है। वर्ग सघर्ष के द्वारा सर्वहारा श्रमिक वर्ग पूजीवादी शोषक शक्तियो के विरूद्ध क्रान्ति का आवाहन करता है और मार्क्स के दर्शन के अन्तिम लक्ष्य साम्यवाद (समानता) को प्राप्त करने की चेष्टा करता है–

> "पूजीवाद का इतिहास बढता है
> साम्राज्यवाद घोषित करता है।
> कुल का अभिमान और सुख संग्रह
> करने का वैयक्तिक उत्साह उसका उत्तेजक है।"[64]

इस पूंजीवादी शोषक स्वरूप से मुक्ति के लिए कवि त्रिलोचन क्रान्ति का आवाहन किया –

> "बिना पूजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
> यह जीवन स्वस्थ नही हो सकता।
> ज्ञान विज्ञान से किसी प्रकार
> कोई कल्याण नही हो सकता।"[65]

सारी समस्या की जड यही पूजीवादी साम्राज्यवादी व्यवस्था ही है। इसे उखाड फेकने के बाद ही समाज वर्गमुक्त, शोषण मुक्त, हो सकेगा और श्रमिको को उनके श्रम का उचित मूल्य मिल सकेगा। क्षमता के अनुसार कार्य और आवश्यकता के अनुरूप उपभोग एवं सभी के साथ समानता का भाव, यही मार्क्सवादी दर्शन का मूल आधार है। जिसका अन्तिम लक्ष्य साम्यवाद है। यह

लक्ष्य क्रान्ति के माध्यम से पूजीवाद के विनाश के बाद ही प्राप्त हो सकता है। कवि के इसी क्रान्ति के आवाहन को निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है–

> "कर नूतन निर्माण, दिखा कुछ तू अपने पौरुष का कर्तव्य।
> पराधीनता विविध तोडकर दिखा नयी गति का उपक्रम अब।"[66]

कवि का गहन आत्मविश्वास, सामाजिक लक्ष्य की ओर बढने की उसकी अप्रतिम ईमानदारी, उसकी सामाजिक यथार्थवादिता, उसकी कविताओ से उभर–उभर उठती है। कवि का प्रमुख लक्ष्य जनमन की शक्ति को जागृत करना है और उसकी उत्कट अभिलाषा सामाजिक वैशम्यता की कुरीतियो को दूर करके नवीन साम्यवादी सस्कृति की स्थापना की है। निम्न पक्तियो मे कवि का यही सच्चा मानवतावादी स्वर प्रतिध्वनित हो रहा है।

> "होवे स्वतन्त्र नारी नर, हो सामजस्य अमलतर।
> मै गान विजय के गाऊँ, जन जन की शक्ति जगाऊँ।"[67]

और यही भावना 'गुलाब और बुलबुल' की गजलो मे भी कवि ने अभिव्यक्त किया है –

> "दु ख को, दम्भ को, ईर्ष्या को छुद्र लिप्सा को,
> नष्ट करने के लिए नव मनुष्य आया है।"
> × × × × ×
> फूल मैत्री के खिले है, सुगन्ध छाई है,
> आज उल्लास मनुज ने नवीन पाया है।"[68]

कवि त्रिलोचन के समाजपरक कविताओ में ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षो के चित्र भी देखने को मिलते है –

> "हल्की पुरवैया आती श्रम जल उनका हर जाती।
> विकसित कर उनकी छाती, वे और अधिक श्रम करते।"[69]

इसी प्रकार 'धरती' की अन्य कविता 'मोरई केवट के घर' तथा 'उठ किसान ओ' और 'चम्पा काले अक्षर नही चीन्हती' आदि ग्रामीण जीवन के मार्मिक और सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं।

जैसे–जैसे जन शक्ति मे कवि का विश्वास बढा है उसके स्वरो में क्रान्ति की तीव्रता भी उत्तरोत्तर बढती गई। यहां तक कि वह सामूहिक रूप से जनता

को उद्‌बोधित करते हुए बिगुल बजाते हुए आगे बढने को भी ललकारने मे सन्नध हो उठा है–

"बिगुल बजाओ और बढ चलो, यह सम्मुख मैदान पडा है।
मानवता के मुक्ति दूत तुम, कौन तुम्हारे साथ अडा है।
यह सघर्ष काल आया है आई जय यात्रा की बेला।"[70]

इसी प्रकार पूजीवादी साम्राज्यवादी शक्तियो पर विजय के लिए कवि ने समस्त बाधाओ को कर्मनिष्ठता, ध्येय निष्ठता, और धैर्यनिष्ठता पर विशेष बल दिया है और पूर्ण विश्वास के साथ जन जागरण की शक्ति का आवाहन करता है–

"प्रति प्रति पग ध्वनि पर नव जीवन का गर्जन
प्रति प्रति ललकारो मे अभिनव नव सर्जन
तुम बढो–बढो धुन तत्पर फहरा रक्त–ध्वज अम्बर।
मै गान विजय के गाऊँ जन जन की शक्ति जगाऊँ।"[71]

कवि को पूरा विश्वास है कि बिना जनमन जागृति के मार्क्सवादी साम्यवादी आदर्श को नही प्राप्त किया जा सकता है, इसी सकल्प के साथ कवि ने हमेशा ही उस क्रान्ति का आवाहन किया है और रूसी साम्यवादी क्रान्ति की लाल ध्वजा को आकाश मे फहरा देने की बात हमेशा किया है। समग्र रूप से आकलन किया जाये तो कवि त्रिलोचन को मार्क्सवादी चिन्तन से प्रभावित प्रगतिवादी रचनाकारो मे प्रमुख स्थान पर रखते हैं। इस प्रकार कवि त्रिलोचन का काव्य प्रगतिशील चेतना से अप्लावित, मार्क्स दर्शन से प्रभावित, जीवन की विषमताओ, शोषण व आक्रोश की सन्तुलित अभिव्यक्तियो का परिचायक है उनका काव्य छायावादोत्तर नयी काव्य सम्पत्ति मे एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

पिछले पृष्ठो में प्रगतिवाद के जिन कवियो का मार्क्सवादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे स्वतन्त्र विवेचन किया गया है, वे प्रगतिवादी काव्य के प्रतिनिधि तथा प्रधान रचनाकार कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दी के अन्य स्फुट कवियो ने यथा 'शील' नरेन्द्र शर्मा, मुक्ति बोध, अंचल शंकर शैलेन्द्र, रामदयाल पाण्डेय व अन्य कवि है जिन्होंने इस युग मे प्रगतिवादी भूमियों में रहकर सामाजिक चेतना के प्रसार मे महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विशुद्ध प्रगतिवादी भूमिका पर न होने पर भी उनका काव्य प्रगतिवादी सस्कारों की अभिव्यक्ति करता है।

(iii) मनोविश्लेषणवाद

मन के विश्लेषण के लिए उसकी समस्त गतिविधियो जो व्यक्ति विशेष की प्रवृत्तियो का सूचक है का उल्लेख आवश्यक रहता है। कविता क्षणिक मनोभावो की अभिव्यक्ति है। इसमे एक विचार या एक अनुभूति को छोड किसी व्याख्यान के लिए अवकाश नही रहता है और किसी एक अनुभूति के आधार पर कोई निर्णय भी नही दिया जा सकता। कविता का मनोविश्लेषणवाद के आधार पर विवेचन करना सभव नही है। उसके पीछे वह व्यापक पृष्ठभूमि नही है जो मनोविश्लेषणात्मक विवेचन के लिए अपेक्षित है।

साहित्यिक कृतियो के लिए किसी दार्शनिक चिन्तन का आधार ग्रहण किया जाना कोई नई बात नही है। ससार की प्रत्येक भाषा के साहित्य मे ऐसी कृतियो के उदाहरण मिल जायेगे जिनके मूल मे कोई दर्शन निहित हो। हिन्दी साहित्य का तो अधिकांश ही ऐसी रचनाओ का है। साहित्य, प्रचार का माध्यम नही है, और न किन्ही दार्शनिक या राजनीतिक सिद्धान्तो का घोषणा पत्र है, लेकिन कोई कृति यदि साहित्य की शर्तों को पूरा करते हुए दर्शनिक आधार ग्रहण करती है, तो उसका कलात्मक मूल्याकन घटता नही है।

साहित्य के सन्दर्भ मे मनोविश्लेषणवाद का अध्ययन करने से पूर्व इस वाद की व्याख्या आवश्यक है, जो साहित्य मे अनुभूति का विषयीगत और आत्मनिष्ठ रूप है।

मनोविश्लेषणवाद के तीन प्रमुख याख्याता हैं– फ्रायड, एडलर और जुग।

(क) फ्रायड

फ्रायड मूलतः एक चिकित्सक थे जो मानसिक रोगों पर विशेष ध्यान देते थे। मानव व्यक्तित्व में चेतन के अतिरिक्त एक और स्तर होता है जिसे अचेतन कह सकते हैं। इन दोनो के बीच एक अभेद्य सी मालूम देने वाली दीवार है जिसे तोडकर अचेतन मन मे प्रवेश किया जा सकता है। उन्ही तीन स्तरों को फ्रायड ने अचेतन, अर्धचेतन और चेतन (Unconcious, Sub councious, Concious) कहा है। अचेतन की कल्पना फ्रायडियन मनोविश्लेषण का आधार भूत सिद्धान्त है। मष्तिष्क का तीन चौथाई यही अचेतन है और मनुष्य के विचार, रहन–सहन के ढग की स्वाभाविकता या अस्वाभाविकता का मूल प्रेरक यही

अचेतन है हमारे व्यावहारिक जीवन के सारे कार्यकलाप अचेतन से प्रभावित रहते है, इसी कारण मानसिक रोगो के उपचार मे अचेतन का अनावरण आवश्यक है। अचेतन मन वह भाग है जिसमे असामाजिक, अनैतिक, एव अनुचित इच्छाए बन्द रहती है अचेतन का विषय सामान्यतया दु खदायक, असह्य एव अमान्य होता है। अत चेतन मन मे यह अपने वास्तविक स्वरूप मे प्रकट न हो करके आवृत रूप मे अभिवयक्त होता है प्रतीको के रूप मे यह स्वप्न आदि के माध्यम से निरन्तर अचेतन के कारागार से मुक्त होने की चेष्टा करता है। किन्तु मौलिक होने के कारण इनका बहिष्कार नही हो सकता। निरन्तर वेश बदलकर ये चेतना मे प्रगट होते है।

फ्रायड ने सम्मोहन, स्वतन्त्र साहचर्य, स्वप्नो के तात्पर्य निरूपण तथा मनोविश्लेषण के द्वारा दमित इच्छाओ को मुक्त करते हुए नवीन मनोचिकित्सा को जन्म दिया। उन्होने मनोविकृति एव असामान्य मानसिक अनुभूतियो के बारे मे सर्वथा नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है। उनके पश्चात् अब सामान्यत यह माना जाने लगा है कि कामवासना व्यक्तित्व के निर्माण मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सस्कृति एव विचारो का निर्माण काम वृत्ति से प्रभावित होता है तथाकथित उच्च विचार भक्ति एव आदर्श प्रेम आदि वास्तव में काम वृत्ति के विविध रूप है।

अर्ध चेतन वर्तमान मे ज्ञान और अनुभूति का विषय नहीं हो सकता है। पर थोडे प्रयत्नो से अनुमान्य हो सकता है। मष्तिष्क में सबसे बडा और महत्वपूर्ण अश अचेतन मे जन्म लेता है। उसमें अब तक की अनुभूतिया रहती है, जिन्हे विशिष्ट प्रयत्नो से पाया जा सकता है।

मानव प्रकृति के विषय मे फ्रायड के विचार के अनुसार "समाज अकेले व्यक्तियो का समूह है, जो केवल सर्वश्रेष्ठ को जीवित रहना चाहिए के आधार पर एक दूसरे के प्रति हिस्र और क्रूर रहते है और केवल अपनी सुरक्षा के लिए सगठित होते हैं। उनकी इन हाथी दॉत की मीनारो के पीछे वह दुर्गन्धित गुफा रहती है जहा अपनी शारीरिक आवश्यकताओं या वैयक्तिक सम्बन्धो का व्यापार अपने स्वार्थ के लिए निर्दयता से कर सकते है और इन लाभो की आनन्द प्राप्ति के लिए अपने मन की निबिडतम कंदरा मे जा सकते है, जह्नां किसी प्रकार की बाधा न हो।"[72]

फ्रायड काम वासना को मानव जीवन की मूल प्रेरक शक्ति मानते है। जीवन के समस्त रूपो मे यह यौन प्रवृत्ति के रूप मे विद्यमान रहती है। 'द फ्यूचर आफ इलूजन' मे फ्रायड ने धर्म के स्वरूप की विस्तृत मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। बालक के विकास की तीन अवस्थाओ मे भेद करते हुए फ्रायड 'ओरल' तथा 'अनल' अवस्थाओ को प्रारम्भिक मानते है। 'फैलिक' अवस्था मे बालक के अदर माता-पिता के प्रति विशिष्ट भावो का विकास होता है। इस अवस्था मे बालक मे माता के प्रति एव बालिका मे पिता के प्रति अनुराग विकसित होता है। फ्रायड इसे मातृ मनो ग्रन्थि (Ocdipus Complex) कहते है। इस ग्रन्थि मे बालक अपने विरोधी लिग के प्रति आकर्षित होता है। बालिका पिता की ओर आकर्षित होती है इसे पितृ मनो ग्रन्थि (Electea Complex) कहा जाता है। बालिका का बालक की ही भाति विरोधी लिग के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। फ्रायड के अनुसार समस्त प्रेम यौन भाव अथवा काम वासना पर आधारित है।

फ्रायड के विचार में व्यक्ति एक सामाजिक अणु है जिसे समाज की आवश्यकता केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के समय होती है। जीवत्व में उनके विश्वास ने इस मत की स्थापना की, कि व्यक्ति हर कष्ट का कारण स्वय है, ये कष्ट विपरीत सामाजिक या आर्थिक स्थितियो की उपज नही है। मूल पाप के ये स्पष्टीकरण क्रान्ति के बाद समाज ने अस्वीकृत कर दिए। उनके विचार मे मनुष्य स्वभावत अच्छा है, स्वतन्त्र है, समान है और अनन्त संभावनाओ से युक्त है अत जितने भी कष्ट उसे भोगने पडते है उनका कारण वैयक्तिक न होकर समाज या परिवेश ही है।

मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को परिचालित करने वाली काम वृत्ति को फ्रायड ने लिबिडो (Lıbıdo) कहा है। यह बडी शक्तिशालिनी होती है और बाह्य जीवन मे अपनी अभिव्यक्ति के लिए सदा उत्सुक रहती है। यह काम मूला और स्वार्थमूला है और समाज की धारणाओं से मेल नही खाती, अत हमारा चेतन इस पर नियन्त्रण रखता है। यह स्थूल काम भावना से सम्बन्धित नही है, इसकी सीमा मे मनुष्य के सारे उत्साहपूर्ण कार्यकलाप, प्रेम घृणा सब आ जाते है।

पूर्णत विकसित अनुमान दो प्रकार की मनोवृत्तियो का उल्लेख करते हैं जीवनेच्छा (इरोज) और मृत्यु भावना (थाटोज) जिसे बाद के लेखको ने मार्टिजेया डिस्ट्डो कहा। जीवनेच्छा आत्म रक्षण की भावना है और मृत्यु भावना

लिबडो से बहुत भिन्न है और अपने विरूद्ध पाश और आक्रमण का प्रतीक हैं, सदा मृत्यु के प्रति अग्रसर करती रहती है अैर अन्त मे सम्पूर्ण स्वाधीनता और तनावहीनता की स्थिति मे पहुँच जाती है। आत्म प्रेरित हिंसा क्योकि व्यक्ति के लिए खतरनाक है अत उसकी भयावहता को कम करने के लिए सतत् प्रयत्न अनिवार्य है जो दो प्रकार से किया जा सकता है। उसे लिबिडो से सम्बद्ध करके जिसके परिणाम स्वरूप उसका रूप आत्म पीडन या परपीडन का सुख हो जाता है, अथवा बाहर दूसरो के प्रति उसे उन्मुख करके।

वास्तविक व बाह्य ससार और सभ्यता की मागो के अनुसार व्यक्तित्व को परिवर्तित करने वाला अश मनोभाव कहलाता है। यह हमारी सहज और स्वाभाविक अन्त प्रेरणाओ पर नियन्त्रण रखता है और उन्हे परिमार्जित और परिषोधित करके ही क्रियाशील होने की अनुमति देता है। मष्तिष्क के उस प्रदेश को जहा मनुष्य की आरम्भिक प्रेरणाएं और प्रबल इच्छाए निवास करती है, प्राकृतिक स्वत्व कहा जाता है जिसमें अव्यवस्था होती है। 'इगो' या 'अहम्' व्यक्तित्व का चेतन व बौद्धिक अश है। इसकी सारी क्रियाए एव नियन्त्रण जान–बूझकर होते है। पर एक अवसर ऐसा आता है कि 'अहम्' द्वारा नियन्त्रण की क्रिया होती है जिसका उसे ज्ञान नही होता। यह एक तरह से अचैतन्य चेतन (Unconscious Conscious) है जिसे फ्रायड ने नैतिक अहम् (परा अहम्) या (Super Ego) सुपर इगो कहा है।

फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद मे निहित भाव यही है कि मानव जीवन मे कामभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है, समस्त प्रेम यौन–भाव अथवा काम भाव पर आधारित है, भक्ति, योग तथा साहित्य साधना मे निहित प्रेम भी वास्तव मे वासना परक होता है। यहां तक कि धर्म को भी व्यक्ति की अतृप्ति वासना का एक माध्यम माना है जो कि अन्य माध्यमो की अपेक्षा अधिक परिष्कृत, सामाजिक एव नैतिक होता है। सक्षेप मे व्यक्ति के समस्त क्रियाकलाप यौन भावनाओ से प्रेरित होते है, यही फ्रायड के दर्शन का मूल तत्व है।

(ख) एडलर

एडलर का मूल विचार था कि मानव होने का अर्थ हीनता की भावना से ग्रस्त होना है जो अन्त मे विजयी होता है।

जो बालक उपेक्षित, बिगडा हुआ या घृणा का पात्र होता है वही हीनता की शक्तिशाली ग्रथियो से ग्रस्त रहता है और प्रसन्नता के वातावरण मे भी वह बालक अपने को क्षुद्र, असहाय और वयस्को की दया का पात्र समझता है। हीनता की भावना की पूर्ति के लिए बालक जीवन के आरम्भिक वर्षो मे ही परिवार की स्थितियो से जूझने के लिए कुछ विशेष बचाव खोज लेता है। अपने प्रतिदिन के अनुभवो के आधार पर वह ऐसा दृष्टिकोण बना लेता है जिसे एडलर ने जीवन शैली कहा है। इसी जीवन शैली के आधार पर उसका वैयक्तिक विकास होता है।

एडलर के विचार वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual psychology) कहलाते है, और फ्रायड द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो पर उनकी आस्था नही है। लिबिडो को एडलर काम वासना न मानकर विजय–वासना मानते है। उनके अनुसार हर व्यक्ति मे दूसरे पर विजय पाने की, दूसरे से श्रेष्ठ रहने की भावना विद्यमान रहती है। यही विजय कामना मानसिक विकृतियों का कारण है जिसके प्रभाव स्वरूप मनुष्य मे जिस जीवन–शैली का निर्माण हुआ है उसमें सामाजिक और वैयक्तिक आदर्श प्रेमपूर्वक नही रह सकते। व्यक्ति का उच्चता का ध्येय सामाजिक जीवन के विरूद्ध पडता है। हीनता ग्रंथि सब मे होती है और इसी के कारण मानव की जीवन शक्ति का निर्माण होता है।

(ग) जुंग

जुंग की (Analytic of Psychology) फ्रायड के मनोविज्ञान की उपशाखा कही जा सकती है। जुंग का दृष्टिकोण एक दार्शनिक और रहस्यवादी जैसा है। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अचेतन, दमन, प्रतीकात्मक स्वप्न आदि सब पर इनका विश्वास है पर कुछ परिवर्तित अर्थ मे।

अचेतन के जुग ने व्यैक्तिक चेतन (Personal Conscious) और समस्त चेतन (Racial conscious) दो स्तर किए हैं। वैयक्तिक चेतन भोगेच्छु, स्वार्थी, वीभत्स और क्रूर मूल वृत्तियों का तथा दमित भावनाओ का रहस्यागार है पर यदि मन के अतपटल को भेद कर देखा जाए तो उसमें एक समष्टि मन का स्तर मिलता है जो हमारी सारी सौंदर्यप्रियता, नीतिमत्ता और खूबियो का आदिस्रोत है। हमारे चेतन मन को जिन खूबियों और भलाइयों का ज्ञान रहता है वे अपने तात्विक रूप में समष्टि मन मे वर्तमान रहती है। अचेतन जिस तरह

हमारी अनैतिक भावनाओ का आगार है उसी तरह नैतिक का भी है। उसी व्यक्ति का व्यक्तित्व पूर्ण विकसित होता है जिसके वैयक्तिक अचेतन और समष्टि अचेतन मे पूर्ण सामजस्य हो। इस सामजस्य की स्थापना के बाद मनुष्य की प्रतिभा को अधिक से अधिक क्रियान्वित होने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। फ्रायड के द्वारा निर्धारित दमित भावनाओ का आगार, अचेतन मन को मानते हुए भी जुग कहते है कि इसके बाहर, समष्टि मन भी होता है जिसका दमित भावनाओ से कोई सम्बन्ध नही है। इसमे निवास करने वाली भावनाएँ अस्पष्ट, निराकार, अनियत्रित और अनिर्वचनीय होती है पर यह मानव जाति मे निसर्ग से प्राप्त है और युग–युग से मनुष्य मे निवास करती आई है। सत्य की खोज, अदृश्यशक्ति मे विश्वास, देवत्व और ईश्वरत्व मे आस्था, दूसरे शब्दो मे आध्यात्मिक उत्प्रेरणाओ का निवास चेतनातीत समष्टि अचेतन मे रहता है और हमारी चेतना को भी प्रभावित करता है।

जुग का सबसे प्रसिद्ध सिद्धान्त वह है जिसमे उन्होने व्यक्ति को अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दो प्रकारो में बॉटा है। अन्तर्मुखी व्यक्ति विचारो मे लीन रहता है और उसकी कल्पना जाग्रत रहती है, सामाजिकता की उसमें कमी होती है, भावावेग मे वह कम आता है, और नीरस होता है। बहिर्मुखी व्यक्ति सदा प्रसन्नचित्त, संसार के कार्यों मे अभिरूचि रखने वाला, सामाजिक प्रवृत्ति का होता है, उसमें कल्पना का अभाव होता है और कभी–कभी निरुत्साहित भी हो जाता है। उलझे और खडित व्यक्तित्व, संक्रात सवेदना और खंडित बिम्बो की प्रचुरता मनोविश्लेषण का ही प्रभाव है।

(iv) प्रगतिवादी कविता पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभावः

छायावादोत्तर व्यक्तिवादी कविता किन्हीं अशों मे उत्तर छायावाद अर्थात छायावाद के ही विस्तार का प्रमाण देती है। प्रगतिवाद का आधार मार्क्सवाद है। मार्क्सवाद समष्टिवाद, साम्यवाद का पोषक है। जबकि छायावाद व्यक्तिवाद का।कोई भी नवीन विचारधारा जब पूर्ववर्ती विचारधारा के बाद आती है, तो वह नवीन विचारधारा पूर्ववर्ती विचारधारा को पूरी तरह से समाप्त नही कर पाती है, प्रधानता अवश्य प्राप्त कर लेती है। हिन्दी साहित्य का इतिहास इसी व्यक्तिवाद एव समष्टिवाद के द्वन्द्व का इतिहास रहा है। छायावाद व्यक्तिवादी विचारधारा

का पोषक रहा तो प्रगतिवाद समष्टिवादी विचारधारा का पोषक रहा है। प्रयोगवाद मे पुन व्यक्तिवाद को प्रधानता मिली, किन्तु अन्तिम समय मे समष्टिवाद एव व्यक्तिवाद का समन्वय अस्तित्ववाद के रूप मे स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार से हम देखते है कि व्यक्तिवादी विचारधारा छायावाद, उत्तर छायावाद मे स्वप्नवादिता निराशा, आदि को प्रगतिवादी कवि फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी दर्शन से प्रभावित हो करके वायवीयता के स्थान पर मासलता प्रदान करता है। जहा इसमें एक ओर मासलता और अराजकतावादी दृष्टिकोण है तो वहीं दूसरी ओर इसमे गार्हस्तिक प्रेम की पावनता और शिवत्व के दर्शन भी होते है। चूँकि प्रगतिवादी कविता की मूल दृष्टि समष्टिवादी मार्क्सवादी रही है, इसलिए व्यक्तिवादी मनोविश्लेषणवादी दर्शन से प्रभावित कविता इसमे बहुत ही कम नाम मात्र की मिलती है। प्रगतिवादी कविता की गहन सुचिन्तित सामाजिक चेतना ने प्रेम सम्बन्धो को भी प्रभावित किया। गार्हस्तिक प्रेम की कविताओ का आदर्श 'सिन्दूर तिलकित भाल है' केवल वासना का उफान नही है—

"बज उठता है सासो का स्वर, प्रेम तान से भीतर बाहर।
मन ताकता पुतली मे आकर, मैं पाता सुख अग लगाका,
मुझको तेरा साथ चाहिए।"[73]

इस कविता में श्रृगार भावना के संतुलित रूप के दर्शन हुए हैं। इसमें न तो उत्तर छायावादी कविता जैसी कसक और आहें मिलती है और न ही प्रयोगवादी कविता का दमित मनोविश्लेषणवादी दर्शन से प्रभावित यौन भावनाओ का चित्रण जिसमे उत्तेजना तो है लेकिन शमन नही।

इन सबके विपरीत कुछ कविताएँ ऐसी भी है जिनमे गार्हस्तिक प्रेम की अभिव्यक्ति का आग्रह नहीं है, बल्कि दमित वासना व मासलता की गंध आती है। सिन्दूर तिलकित भाल को याद करने वाले कवि की ही 'वह तुम थी' कविता इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं, और इस जैसी अन्य कविताओ में—

"चाहिए किसको नही सहयोग, चाहिए किसको नहीं सहवास।"[74]

इस पंक्ति मे छायावादी पलायन, रूमानी कल्पना विलास एवं प्रेक्षण नही है, यथार्थवादी मासल ठोस अनुभूत स्थितियों का वर्णन है।

"झाडी के एक खिले फूलने नीली पखुरियो के,
एक खिले फूल ने मुझे काट लिया।
ओठ से और मै अचेत रहा धूप मे।"[75]

इसी प्रकार नागार्जुन की एक कविता से प्रगतिवादी ऐद्रियता और भाव प्रवणता के सश्लेषण की गहनता और ऊष्म उद्वेलन का अनुमान लगाया जा सकता है—

"तुम नही हो पास, मै तरसता हूँ, प्यार के दो बोल सुनने के लिए।
एक की ही दस अगुलियॉ नही है काफी कदाचित।
रेशमी परितृप्तियो का जाल बुनने के लिए।"[76]

नागार्जुन की प्रेयसी कविता भी इस सम्बन्ध मे दृष्टव्य है—

"पास ही सोई पडी श्लथ कुन्तला
प्रेयसी की थप—थपाई पीठ
जग गई तो दिखाकर तारे दो चार
कहा मैने पकड उसका हाथ।
दो घडी का हमारा इनका रहा है साथ
हो रहे विदा, गा दो सुमुखि एक विहाग।"[77]

इस प्रकार हम देखते है कि प्रगतिवादी कविता जहा एक ओर सूक्ष्म रूप से मनोविश्लेषणवादी दर्शन से प्रभावित है लेकिन उसका स्वरूप बहुत कुछ मर्यादित रहा है। उसमे एक आन्दोलन स्वरूप नारी मुक्ति के उद्घोष का स्वर भी व्याप्त है। नारी के जननी, सखी, और प्यारी' सभी रूपो को मान्यता देकर उसने स्त्री को प्रेम के क्षेत्र मे भी अभूतपूर्व स्वतन्त्रता दिलाने की इच्छा जाहिर की है—

"अगों की अविकच इच्छाऍ रहे न जीवन पातक,
वे विलास में बने सहायक होवें प्रेम प्रकाशक।"[78]

वस्तुत प्रगतिवादी कवियो ने यौन जनित मांसल भावनाओं का चित्रण तो किया, लेकिन यह चित्रण बहुत ही अल्प मात्रा में मिलता है, और जो है भी वह उतना प्रखर नही है, उस पर मार्क्सवादी दर्शन, मुक्ति, आदि का आवरण अवश्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 पत–युगवाणी राजनाथ शर्मा हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–638

2 केदारनाथ अग्रवाल फूल नही रग बोलते है।

3 वही।

4 वही।

5 शमशेर बहादुर सिह घिर गया समय का रथ।

6 नागार्जुन

7 नागार्जुन युगधारा आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास बच्चन सिह पृष्ठ–250 से उद्धृत।

8 केदार नाथ अग्रवाल

9 नागार्जुन।

10 केदार नाथ अग्रवाल कडई का गीत बच्चन सिह · आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–252 से उद्धृत।

11 नरेन्द्र शर्मा . प्रो0 मोहन अवस्थी हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास पृष्ठ–305 से उद्धृत।

12 राजनाथ शर्मा हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास,पृष्ठ–634 से उद्धृत।

13 वही।

14 वही।

15 वही, पृष्ठ 635।

16 वही पृष्ठ–635।

17 Cocker, op. Cit P-45

18 मेल्विन सीमेन ("On the meaning of alination" A merican socılogıcal review December, 1959. P.-61)

19 (Economıc and Phılosophical Manu Seript 1844, P-28)

20 (Marx and Engels on Relıgion-P -38)

21 मार्क्सवादी लेनिनवादी दर्शन, अनुवादक नजरूल हसन लोक साहित्य प्रकाशन–1981, पेज–47

22 मार्क्स—ऐंगेल्स कलेक्टेड वर्क्स, खण्ड 3, प्रोग्रेस पब्लिकेशन पृष्ठ—175

23 धर्म, मार्क्स और ऐंगिल्स, अनुवादक रमेश सिन्हा इकियन पब्लिशर्स लखनऊ 1972 पृष्ठ—80।

24 नया हिन्दी साहित्य काव्य डॉ0 शिव कुमार मिश्र पृ० 187, उद्धृत श्री उमेश चन्द्र मिश्र (1964) ग्रन्थम, पृ० 153 ।

25 सतरगे पखो वाली · नागार्जुन, पृ० 19 ।

26 सतरगे पखो वाली नागार्जुन, पृ० 21 ।

27 प्यासी पथराई ऑखे सतरगे पखो वाली पृ० 18 ।

28 हस—जून 1948 अक 1 पृ० 640 ।

29 हस गई — 1949 — अक 8 पृ० 492 ।

30 प्यासी पथराई ऑखे पृ० 21 ।

31 सतरगे पखो वाली नागर्जुन, पृ० 28 ।

32 हस अप्रैल, 1948, अक 7 ।

33 रूप तरग राम विलाश शर्मा 'आशा' शीर्षक, पृ० 46।

34 रूप तरग, पृ० 8।

35 रूप तरग—पृ० 10 ।

36 रूपतरग हड्डियो का ताप · शीर्षक कविता से, पृ० 19।

37 रूप तरग हड्डियो का ताप : शीर्षक कविता से, पृ० 20 ।

38 रूप तरग पृ० 74 ।

39 पजाब हत्या काड र्शीषक कविता ।

40 जीवन के मान सुमन यह किसका ककाल पडा है शीर्षक कविता, पृ० 86 ।

41 प्रलय सृजन 'कलकत्ते का अकाल शीर्षक कविता पृ० 75 ।

42 जीवन के गान, पृ० 86 ।

43 प्रलय सृजन, पृ० 2।

44 प्रलय सृजन . सोवियत रूस के प्रति . शीर्षक कविता से, पृ० 4, 5 ।

45 प्रलय सृजन · मास्को अब भी दूर है, पृ० 63—64 ।

46. राह के दीपक : 'सूहर' कविता से, पृ० 47 रागेय राघव।

47 पिघलते पत्थर, 'बहुत दूर' कविता से पृ० 6 रागेय राघव।

48 पिघलते पत्थर उफान, कविता हो श्री रागेय राघव, पृ० 75 ।

49 राह के दीपक 'मजदूर' कविता।

50 पिघलते पत्थर, पृ० 17 ।

51 रूप छाया, पृ० 3 ।

52 पिघलते पत्थर, पृ० 17 ।

53 युग की गगा, पृ० 36 ।

54 युग की गगा, पृ० 33 ।

55 युग की गगा, पृ० 49 ।

56 हिन्दी की स्वच्छन्द और प्रगतिशील काव्यधारा तथा तत्सम्बन्धी वादो का सापेक्षिक अध्ययन श्री राजेन्द्र मिश्र, पृ० 375 ।

57 'लोक और आलोक', पृ० 22 ।

58 'लोक और आलोक', पृ० 22 ।

59 'लोक और आलोक', पृ० 83 ।

60 'लोक और आलोक', पृ० 47 ।

61 'लोक और आलोक', पृ० 47 ।

62 राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य श्री रामेश्वर शर्मा, पृ० 98

63 'युग की गगा' पृ० 56

64 धरती पृ० 84 ।

65 धरती पृ० 84 ।

66 धरती पृ० 17 ।

67 धरती पृ० 7 ।

68 गुलाब और बुलबुल, पृ० 52 ।

69 धरती पृ० 9 ।

70 धरती, पृ० 5 ।

71 धरती, पृ० 7 ।

72 Freud's view on human nature depicts society as a mass of isolated individuals, where most natural emotions is hostility, pushing and

joshling each other in the name of the fittest, but willing under certain circumstances to bend together for self protection Their Ivory towers conceal the inner cave by the entrance of which they ruthlessly trade physical needs or personal gain returning to the innermost successes to enjoy them without interference J A C Brown· Frend and the post-Freudians, Page-12 से उद्धृत ।

73 केदारनाथ अग्रवाल–लेखक के पत्र से ।

74 नागार्जुन सतरगे पखो वाली, पृ० 18 ।

75 केदारनाथ अग्रवाल–गोविन्द द्विवेदी द्वारा उद्धृत आलोचना, 23 अक्टूबर–दिसम्बर, 1972 ।

76 डॉ० प्रकाश चन्द्र भट्ट द्वारा उद्धृत नागार्जुन जीवन और साहित्य, पृ० 47 ।

77 वही ।

78 पत युगवाणी, पृ० 47 ।

तृतीय–अध्याय

प्रयोगवाद

प्रयोगवाद

(अ) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

'प्रयोगवाद' प्रयोग को काव्य प्रवृत्ति के रूप मे पेश करता है यह तार सप्तक' के कवियो के वक्तव्यो मे 'प्रयोग' शब्द की अनेकश आवृत्ति को देखकर आलोचको द्वारा रख दिया गया नाम है। यह नाम उक्त काल खण्ड की सभी प्रवृत्तियो को ध्वनित नही करता। इससे महज साहित्यिक प्रयोग सम्बन्धी कुछ एक प्रवृत्तियो का बोध होता है। फिर भी हिन्दी साहित्य के इतिहास मे यह नाम लोकप्रिय हो चला है। इसलिए बेहिचक यह मान लेना चाहिए कि प्रगतिवाद के बाद सन् 1943 से 52 ई० तक की अज्ञेय, गिरजा कुमार माथुर' प्रभाकर माचवे, मुक्ति बोध नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय धर्मवीर भारती, नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार एव नरेश आदि की कविताएँ एव उनकी प्रवृत्तिया प्रयोगवादी हैं। प्रयोगवाद के कवि नयी कविता के भी कवि है और प्रयोगवाद की ढेर सारी प्रवृत्तियां नयी कविता की भी प्रवृत्तिया है। इस कारण से प्रयोगवाद की अन्तिम काल सीमा नयी कविता की उत्तरवर्ती सीमा सन् 1964 ई० तक खीची जा सकती है।

हिन्दी मे प्रयोगवाद का जन्म एव विकास ऐसे परिवेश मे हुआ कि जब हिन्दी साहित्य प्रगतिवादी व मार्क्सवादी विचारो से आन्दोलित था। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिक्रियावादी शक्तियो ने एकाकी व सगठित दोनो रूपो मे विभिन्न प्रकार के आरोप–प्रत्यारोप लगाकर इसका विरोध करना आरम्भ कर दिया था। मजदूरों व कृषकों के शोषण से पोषित पूजीवादी व्यवस्था के धार्मिक ठेकेदारो, जनता का रक्त सोखने वाले नौकरी पेशा व पूजीपतियो ने इस समाजवादी प्रगतिवादी विचारधारा से अपने अस्तित्व को खतरा महसूस किया इसलिए इन लोगो द्वारा इस विचारधारा का विरोध किया जाना स्वाभाविक था। प्रगतिवादी साहित्यकार व्यष्टिगत न होकर समष्टिगत चेतना से अनुप्राणित रहा, इसके प्रतिक्रिया स्वरूप उन साहित्यकारो ने इसका विरोध किया जो साहित्य को वैयक्तिक निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का माध्यम मानते थे। इन कवियो ने अपनी अतृप्त कुठित, दमित भावनाओ को अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य की ओट लेकर चित्रण करना आरम्भ कर दिया। इन्होने सिद्धान्त रूप मे मानकर यह

कहा कि साहित्यकार को किसी भी विचारधारा मे न बधकर स्वच्छन्द रूप से अपनी वैयक्तिक भावनाओ को अभिव्यक्ति करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। चूकि उस समय साहित्य मे सर्वत्र प्रगतिवाद व्यापत था इस कारण ये प्रतिक्रियावादी इसकी लोकप्रियता से सशकित होकर, पाठको को आकर्षित करने के लिए कुछ प्रगतिवादी साहित्यकारो एव साहित्यिक चमत्कारवाद का सहारा लिया। पाठको को चौकाने के लिए इन्होने ऐसा प्रचार किया कि हमारा साहित्य और उसकी माध्यम भाषा दोनो ही अत्यधिक रूढिग्रस्त और प्रगतिशील रूप धारण कर चुके है, वे नवीन अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने मे असमर्थ है, इसलिए इनका बहिष्कार कर नए प्रयोग करना चाहिए और इनके द्वारा नये–नये अप्रचलित शब्दो, वाक्यो प्रतीको, बिम्बो, का प्रयोग आरम्भ हो गया। पाठको का इन नये प्रयोगो से चौकना लाजमी था, फलत इन लोगो की चर्चा परिचर्चा आरम्भ हो गई। हिन्दी मे इस प्रकार के साहित्य को आरम्भ मे प्रयोगवाद कहा गया।

प्राचीन साम्राज्यवाद एव अर्वाचीन पूजीवादी साम्राज्यवाद का मूल आधार शोषण रहा है। दोनों द्वारा प्रतिक्रियावादी व्यक्तिवादी दार्शनिक सिद्धान्तो को प्रश्रय दिया गया। 'व्यक्तिवाद, 'समष्टिवाद' का विरोधी एव महत्वाकाक्षा व अहवाद का पोषक रहा है। हिन्दी मे प्रयोगवाद भी अह मिश्रित अति महत्वाकाक्षा का ही परिणाम था, जिसे कि पूंजीपतियों द्वारा पोषण दिया जा रहा था। पूजीवाद इस तथ्य को भली भांति जानता था कि साहित्य प्रचार का एक सशक्त माध्यम है, इसलिए उसने अपने पूर्व मे अधिकृत लगभग सभी समाचार पत्रो, मासिक पत्र, पत्रिकाओं, और प्रकाशन सस्थाओ आदि के माध्यम से एव इन रचनाकारो को मोटी–मोटी तनख्वाहें देकर, इनके व इनकी रचनाओ के सम्मुख धनाभाव का सकट नही उत्पन्न होने दिया। इसके बदले मे इन रचनाकारो/कलाकारों ने प्रगतिशील समाजवादी भावनाओ एव विचारो को निशाना बनाकर इसके विरूद्ध अपना प्रयास जारी रखा।

हिन्दी मे प्रयोगवाद के जन्म व विकास के यही मूल कारण रहे है। प्रयोगवाद का एकमात्र लक्ष्य येन–केन प्रकारेण प्रगतिशील साहित्य का विरोधकर व्यक्तिवादी प्रतिक्रियात्मक भावनाओं और विचारो' का प्रचार करना रहा है। प्रसिद्धि प्राप्त करने के इस सुलभ साधन का यह प्रभाव पडा है कि अनेक प्रगतिवादी कलाकार भी इस खेमे मे जा मिले। उनकी रचनःओ मे वैचारिक और

शिल्पगत प्रयोगो के कारण दुरूहता रही मगर ये लोग अपनी प्रगतिशीलता का ढोल पीटते रहे। 'तार सप्तक' एव 'प्रतीक' पत्रिका के अवलोकन से यह साफ स्पष्ट हो जाता है कि इनमे सग्रहीत कवियो के अनुभव के क्षेत्र, दृष्टिकोण व लक्ष्य एक ही प्रकार के नही है। कुछ के विचार समाजवादी है तो कुछ सस्कारा से व्यक्तिवादी जैसे–शमशेर बहादुर सिह, नरेश मेहता और नेमिचन्द्र जैन। कुछ तो विचारो एव क्रियाओ दोनो से ही समाजवादी है–जैसे राम विलाश शर्मा, मुक्तिबोध। कुछ ऐसे है जो प्रगतिशील कविता मे व्यक्त जीवन मूल्यो को असत्य या सत्याभास मानकर अपने व्यक्तिगत जीवन मे तडपने वाली गहन सवेदनाओ को रूपायित करना चाहते है। प्राय ये सभी कवि मध्य वर्ग के अन्तर्गत आते है। जिन्होने समाजवादी/मार्क्सवादी विचारो व सस्कारो के परिप्रेक्ष्य मे कविताए लिखी वे वास्तव मे जनवादी कवि है, किन्तु जो ऐसा नही करके अपनी वैयक्तिक सुख–दु ख व सवेदनाओ को ही काव्य के सत्य के रूप मे नित नये माध्यमो द्वारा अभिव्यक्त कर रहे है। आलोचको द्वारा प्रयोगवाद के सन्दर्भ मे प्राय इन्ही कवियो को ध्यान मे रखा गया है। यह उचित भी है क्योकि मार्क्सवादी विश्वासो वाले कवि प्रगतिशील कविता की परिधि मे आ ही जाते है।

इसके अतिरिक्त प्रयोगवादी कलाकार स्वप्रचार के निमित्त परस्पर प्रशासा एव स्वय अपने पर ही ग्रन्थ एव निबन्ध लिखकर स्वयं को नवीन साहित्य का मसीहा घोषित करने मे तनिक भी सकोच नही किया। जैसा कि हमे पता है कि यह नई काव्यधारा प्रगतिवाद के विरूद्ध जन्मी व संगठित हुई थी योरोप मे भी प्रयोगवाद इसी अभिप्राय को लेकर सगठित हुआ था। इस विश्लेषण को आगे बढाने से पूर्व हमें प्रयोग शब्द के अर्थ एवं उसके वास्तविक अभिप्राय को समझ लेना चाहिए।

अज्ञेय जी ने दूसरे सप्तक की भूमिका मे कवि कर्म की व्याख्या करते हुए प्रयोग शब्द को स्पष्ट किया था। उनकी दृष्टि मे प्रयोग अपने आप मे इष्ट नही है, वरन् वह साधन है, दोहरा साधन है, एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है दूसरा वह उस प्रेषण क्रिया व उसके साधनो को जानने का साधन है। अज्ञेय जी ने प्रयोग को कोई नई बात नही माना है इसे स्वीकार करते हुए कहा है, "किन्तु कवि क्रमश अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रो मे प्रयोग हुए है उनसे आगे बढकर अब उन क्षेत्रो का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हे कभी नहीं छुआ गया था। भाषा को अपर्याप्त पाकर

विराम सकेतो से, अको और सीधी तिरछी लकीरो से, छोटे–बडे टाइप से, सीधे या उल्टे अक्षरो से लोगो और स्थानो के नामो से अधूरे वाक्य सभी प्रकार के इतर साधनो से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई सवेदना की सृष्टि पाठको तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।"[1]

जर्मन दार्शनिक नीत्शे ने भी प्रयोग को अपने जीवन दर्शन का आधार बनाया था। उनके द्वारा प्रयुक्त जर्मन शब्द "Versuch" का अग्रेजी पर्याय 'Experiment' होता है। जिस अर्थ मे नीत्शे जीवन को प्रयोग मानता है उसी अर्थ मे हिन्दी के प्रयोगशील कवि भी मानते है। नीत्शे का कथन है कि विचार के क्षेत्र मे नये–नये प्रयोग का साहस होना चाहिए, यह आवश्यक नही है कि प्रयोगो का एक सुसम्बद्ध क्रम हो, प्रयोगो का क्रम विच्छिन्न होता है क्योकि प्रत्येक प्रयोग अपने आप मे नया है और प्रत्येक शुरूआत नई शुरूआत है। नीत्शे का दावा था कि मौका पडने पर अपने पूर्ववर्ती विचारो के विरूद्ध घोषणा करने का साहस होना चाहिए। 'जोखिम के साथ जिओ' नीत्शे का ही नारा था। प्रयोगवादी कवि प्रयोग और अन्वेषण मे नीत्शे से किस हद तक प्रभावित हुए होगे इस विषय मे स्पष्टत तो नही बताया जा सकता है किन्तु तीसरे सप्तक के एक कवि के पच्चीस शील वाले वक्तव्य से स्पष्ट है प्रयोग का क्रम आगे चलकर नीत्शे तक अवश्य पहुँच गया। कहना न होगा कि जिस प्रकार सदेह की प्रवृत्ति एक हद के बाद सदेहवाद मे परिणति हो जाती है उसी प्रकार प्रयोग भी एक हद के बाद 'प्रयोगवाद' हो गया। अज्ञेय प्रयोग को दोहरा साधन मानते है। एक तो उस सत्य को जानने का साधन है जिसे वह प्रेषित करता है एव दूसरा उसकी प्रेषण क्रिया को और साधनो को भी जानने का साधन है अर्थात् प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अच्छी तरह जान सकता है।"

वस्तुत प्रयोग आशिक सत्य से पूर्ण सत्य की ओर उन्मुख हो विकास का पथ खोजने का प्रयास करता है। इस प्रकार प्रयोग साध्य न होकर पूर्ण सत्य को जानने का साधन या प्रक्रिया मात्र है। सक्षेप मे प्रयोग एक स्वस्थ, गतिशील, एव विकासमान प्रक्रिया है। जो समाज का कल्याण करती है।

साहित्यिक प्रयोगवाद की जन्मभूमि योरोप रहा है द्वितीय महायुद्ध के विनाश ने योरोपीय जीवन को ध्वस्त कर डाला था। सवेदनशील कलाकार की आस्था जीवन से विरक्त हो घोर अनास्थावादी बन गयी। वहा इसी अनास्थामूलक वातावरण में नवीन प्रयोगो का जन्म हुआ। प्रथम महायुद्ध के

महाविनाश (1914–18) ने नवयुवक साहित्यकारो के हृदय मे तात्कालीन सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध एक भयकर अनास्था भर दी थी। उन्होने परम्परागत साहित्य को इस अनास्था की अभिव्यक्ति मे असमर्थ मान भाव, भाषा, विचार, शैली आदि के क्षेत्रो मे नये–नये प्रयोग कर अपनी वैयक्तिक कुठाओ, निराशा, वेदना, आकाक्षा आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करने लगे। इसलिए इनके द्वारा कला क्षेत्र मे कला की स्वतन्त्रता का उद्घोष करते हुए ऐसे–ऐसे चमत्कार पूर्ण कला रूपो का सृजन किया गया, जो अपनी विचित्रता के कारण समाज का ध्यान इनके उपेक्षित, निराश, कुठित जीवन की ओर आकर्षित कर सके। साहित्य चित्रकला, मूर्तिकला आदि सभी कला–क्षेत्र इसके प्रभाव से अछूते नही रह पाये। योरोप मे साम्यवाद के बढते प्रभाव के कारण पूजीवादी व्यवस्था ने व्यक्तिवादी कला–सिद्धान्तो को समर्थन देना प्रारम्भ कर दिया। साहित्य मे यह व्यक्तिवादी सिद्धान्त प्रयोगवाद, 'अस्तित्ववाद' अति यथार्थवाद आदि नाम से प्रसिद्ध हुआ। अग्रेजी मे इसके जन्मदाता प्रसिद्ध कवि और आलोचक टी०एस० इलियट माने जाते है। उन्होने अपने समकालीन प्रसिद्ध आलोचक आई०ए० रिचर्ड्स की सहायता से एक दुरूह मगर ऊपर से आकर्षक लगने वाली काव्य प्रणाली का प्रवर्तन किया था। एजरा पाउण्ड आदि साहित्यकारों ने इसे आगे बढाया था। रिचर्ड्स ने इसी के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि भविष्य मे कविता अधिकाधिक दुरूह होती जायेगी और बहुत थोडे से लोग ही उससे लाभान्वित होगे। इस नई काव्यधारा को क्रोचे के अभिव्यंजना वाद से भी पर्याप्त सहायता एव सवर्धन प्राप्त था। अनास्था के स्वर की चीत्कार इलियट के काव्य मे देखी व सुनी जा सकती है। इसके सम्बन्ध मे डॉ० देवराज ने स्पष्ट लिखा है कि, "हिन्दी प्रयोगवाद भी केवल युग से प्रभावित नही है वह बहुत हद तक इलियट एव एजरा पाउण्ड आदि की शैली के अनुकरण मे उपस्थित हुआ है।"[2]

चूकि योरोप के कवि भुक्तभोगी थे इसलिए उनके काव्य मे इन तत्वो का उपस्थित रहना स्वाभाविक था किन्तु भारतीय कवि एव पाठक ने इसे नही भोगा था फिर भी हिन्दी के प्रयोगवादियों ने योरोप के व्यक्तिवादी अस्तित्ववादी दर्शनो की अनेक विशेषताओ को यथावत अपनाते हुए कला का लक्ष्य अपने व्यक्तित्व अर्थात व्यक्तिगत कुठाओ और दमित वासनाओं से मुक्ति माना है। फ्रायड का शिष्यत्व स्वीकार करते हुए अपनी वासनाओ कुठाओ की अभिव्यक्ति को ही अपनी कला साधना का चरम लक्ष्य घोषित किया।

(ब) हिन्दी कविता में प्रयोगवाद एवं उसकी प्रवृत्तियाँः

प्रयोग तो प्रत्येक युग मे होते रहे है पर प्रयोगवाद नाम ऐसी कविताओ के लिए प्रचलित हो चला, जो अपने मे नये बोधो, सवेदनाओ तथा उसको सम्प्रेषित करने वाली चमत्कारपूर्ण शिल्पगत विशेषताओ को लेकर प्रारम्भिक रूप मे 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित तार सप्तक के माध्यम से सन् 1943 ई० मे प्रकाशन जगत मे उपस्थित हुई। इसमे निम्नलिखित सात कवियो की कविताए सग्रहीत है। गजानन माधव मुक्तिगोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरजा कुमार माथुर, डॉ० राम विलाश शर्मा और अज्ञेय। इस सग्रह मे सग्रहीत रचनाओ मे रचनाकारो द्वारा नवीन प्रयोग का दावा किया गया, जिससे इन कवियो को प्रयोगवादी कहा जाने लगा। इनके अतिरिक्त रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार, एवं नरेश आदि की कविताएँ एव उनकी प्रवृत्तिया भी प्रयोगवादी ही है। प्रगतिशील कविताओ के साथ विकासमान प्रयोगवाद की ढेर सारी प्रवृत्तिया नयी कविता की भी प्रवृत्तिया रही, इसलिए प्रयोग वाद का पर्यवसान नयी कविता मे हो गया।

तारसप्तक के कवियो मे भारत भूषण अग्रवाल रामविलाश शर्मा, एव मुक्ति बोध प्रगतिवादी है। तार सप्तक की पृष्ठभूमि सन् 1942 ई० मे प्रगतिशील लेखक सघ के अखिल भारतीय सम्मेलन मे बनी थी। चूकि प्रगतिवाद का अपना एक सुनिश्चित दार्शनिक आधार एवं कहने का भाव एक ही है, कहने का ढग भले ही अलग–अलग हो। अज्ञेय द्वारा तार सप्तक मे लिखा गया है कि "इस सग्रह मे जो कवि रखे गये है, उनके एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी स्कूल के नही है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नही अभी राही है। राही नही राहो के अन्वेषी। उनमें मतैक्य नही है, सभी महत्वपूर्ण विषयों मे उनकी राय अलग–अलग है जीवन के विषय मे, समाज धर्म और राजनीति के विषय मे, काव्य वस्तु और शैली के, छन्द और तुक के, कवि के दायित्वो के प्रत्येक विषय मे उनका आपस मे मतभेद है। यहा तक कि हमारे जगत के ऐसे सर्वमान्य और स्वय सिद्ध मौलिक सत्यो को भी स्वीकार नही करते।"[3]

इस वक्तव्य से यह प्रतिध्वनित होता है कि प्रयोगवादी कवि अपनी वैयक्तिक अनुभूतियो एव दमित महत्वाकाक्षाओ की अभिव्यक्ति की उद्याम लालसा लिये हुए था। व्यक्तिवादी, अस्तित्ववादी एव फ्रायड के

मनोविश्लेषणवादी विचारधारा से प्रभावित ये कवि अपने जीवन के प्रत्येक क्षण की सवेदनाओ को अभिव्यक्त कर देना चाहते थे। कवियो की उन परिस्थितियो का अज्ञेय ने तारसप्तक' मे वर्णन किया है, ''आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओ से लदा हुआ है, और वे कल्पनाएँ सब दमित और कुठित है, उनकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते है और इस आन्तरिक सघर्ष के ऊपर एक बाह्य सघर्ष भी बैठा है जो व्यक्ति और व्यक्ति का नही, व्यक्ति और समूह का, वर्गों और श्रेणियो का सघर्ष है।''[4]

अज्ञेय द्वारा दूसरा सप्तक सन् 1951 ई० मे सम्पादित व प्रकाशित किया गया। इसमे निम्न सात कवियो को सम्मिलित किया गया। भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरि नारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती। इन कवियो मे भी विचारधाराओ का वैभिन्य था। शमशेर बहादुर सिह आदि नवीन प्रयोगो के मोह से ग्रस्त होते हुए भी विचारो से प्रगतिवादी थे। लेकिन इस सग्रह मे प्रयोगवाद का स्वरूप अधिक स्पष्ट एव गहरा था। इसके उपरान्त अज्ञेय ने 1959 ई० मे तीसरा सप्तक सग्रहीत और सम्पादित किया। इस सग्रह मे प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिह, कुवर नारायण, विजय देव नारायण साही, और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताए सग्रहीत थी। ये सभी कवि प्रयोगवाद के कट्टर समर्थक और प्रचारक बने।

प्रयोग एक साधन है, किसी सत्य तक पहुचने का वह स्वय मे लक्ष्य नही हो सकता है। सत्य साध्य है एव प्रयोग उसका साधन, साधन को ही साध्य मान बैठना, इसी कारण प्रयोगवादियो को कटु आलोचना का कोपभाजन बनना पडा। इसी सन्दर्भ मे सन् 1951 ई० मे अज्ञेय द्वारा अपने दूसरे सप्तक मे इसके लिए सफाई देना पडा कि, ''प्रयोग कोई वाद नही होता, प्रयोग अपने आप मे इष्ट नही है, वह साधन है और हमे प्रयोगवादी कहना उतना ही निरर्थक है जितना कवितावादी कहना।''

प्रयोगवादियों के सन्दर्भ मे यही 'नकेनवादियो' की चर्चा भी आवश्यक है। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार तथा नरेश ने प्रपद्यवाद के नाम से शुद्ध प्रयोगवादी रचनाएं देने का दावा किया। 'प्रपद्यवाद को इन कवियो के नाम के प्रथमाक्षरो से ही नकेनवाद भी कहा जाता है। ये तीनो ही कवि बिहार के

रहने वाले थे।इन्होने अपने 12 सूत्री घोषणा पत्र मे कहा (1) प्रयोगवाद सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है उसके लिए शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त है। (2) वह महान पूर्ववर्तियो की परिपाटियो को भी निष्प्राण मानता है। (3) प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवादी साध्य आदि इन्ही आधारो पर प्रपद्यवादियो ने 'तार सप्तक' के कवियो को प्रयोगशील, तथा अपने को असली प्रयोगवादी घोषित किया। ये कहते है, "प्रयोग के वाद से तात्पर्य यह है कि यह भाव और भाषा, विचार और अभिव्यक्ति, आवेश और आत्मप्रेषण, तत्व और रूप इनमे से किसी मे या सभी मे प्रयोग को अपेक्षित मानता है। दूसरे शब्दो मे प्रपद्यवाद अपने वाद के आधार से सतत प्रयोग करते जाना ही अपना लक्ष्य मानता है। 'तार सप्तक' का प्रकाशन 1943 ई० मे हुआ एव प्रपद्यवाद का प्रकाशन 1956 ई० मे। इस दृष्टि से देखा जाये तो प्रपद्यवाद प्रयोग के नाम से वाद चलाने का कालान्तरित प्रयास था।[5]

प्रयोगवाद छायावाद की कोरी अनुभूति परकता एव प्रगतिवाद के व्यापक जीवन क्षेत्र वाले समाजवादी उछांह के विरूद्ध एक आधुनिक व्यक्ति की सवेदनात्मक प्रतिक्रिया है। रूमानियत एक सीमा के बाद ऊबाउ हो जाती है एव अभोगा यथार्थ जिसमे परिस्थितियो को अनुकूल बनाये ही वर्ग सघर्ष दिखाया जाता है भी उपादेय नही रह जाता है। इसलिए प्रयोगवादी कवि छायावादी सवेदना एव प्रगतिवादी यथार्थ को फेटकर अपनी कविता का रसायन तैयार करता है। उसमे बौद्धिकता का प्रबल आग्रह है प्रयोगवादी कवि दृष्टि सुख को अन्तिम एव अनिवार्य नहीं मान लेता हर चीज जो आंखो से गुजरती है, उस पर वह मनन करता है। इसलिए उसकी कविताओ में अनुभूति सजग विवेक के फ्रेम मे कसी हुई मिलती है। प्रयोगवाद के अगुवा कवि अज्ञेय अनुभूति की प्रामाणिकता के जितने भी दावे करे पर वे भी मात्र शुद्ध अनुभूतियो पर निर्भर नही रहते। अनुभूति के सघन क्षण मे भी उनका विवेक सजग रहता है। अज्ञेय की इसी बौद्धिकता ने उन्हे सारतत्व पाने के लिए अभिलक्षित किया है–

"मत हमें रूपाकार इतने व्यर्थ दो,
हम समझते हैं इशारा जिन्दगी का।
हमे पार उतार दो,
रूप मत बस सार दो।

यह सार प्राप्त करने की अभिलाषा अस्तित्ववादी दर्शन से अभिप्रेरित है। यहा पर सार्त्र के विचार "अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है" का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यहा रूप से तात्पर्य कवि के निजी अस्तित्त्व एव उसको भविष्य मे जो भी बनना होगा वही उसका सार है। यद्यपि व्यक्ति जन्म से ही अस्तित्ववान हो जाता है एक निश्चित रूप रेखा प्राप्त करता है तथापि वह अपने कर्मों द्वारा ही अपने लक्ष्य को, (सार) को प्राप्त करता है। दृश्य मे डूबना नही, डूबकर मोती निकालना मष्तिष्कीय उद्योग है। सौन्दर्य पर ठहरना ऑखो का धर्म है, पर यहा कवि ऑख की चाह को स्थगित करता हुआ मष्तिष्क की माग को प्राथमिकता देता है।

प्रयोगवादी कविताओ मे जो यथार्थ का प्रबल आग्रह दिखाई देता है उसके मूल मे भी बौद्धिकता है और यही प्रयोगवादियो के अभिव्यक्ति को धार देती है। मुक्ति बोध कहते है "समाज के सामजस्य के अभाव के फलस्वरूप तथा उसके विरूद्ध उसमे प्रखर बौद्धिक व्यक्तिवाद का विकास हुआ। कुछ लोगो मे अन्तर्मुखी चेतना उदित हुई तो कुछ में बर्हिमुखी। चेतना अधिक यथार्थोन्मुख हुई, चाहे वह अन्तर्मुखी हो या बर्हिमुखी। कुछ मे बाह्य चित्र प्रधान हुए कुछ मे अन्तश्चित्र। यह स्वाभाविक ही था कि इस खेमे के कुछ लोग आगे चलकर मार्क्सवादी होते।" 'तार सप्तक' मे ही देखे तो मुक्ति बोध, नेमिचन्द्र जैन, राम विलाश शर्मा, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे मार्क्सवादी है तो अज्ञेय एव गिरजा कुमार माथुर गैर मार्क्सवादी। इनमें स्पष्ट वैचारिक मतभेद है। बावजूद इसके वे प्रयोग के नाम पर एक मत हैं।

प्रयोगवाद कविता का नया चेहरा गढने के लिए सकल्पबद्ध है। सर्जना के लिए वह प्रयोग को महत्व देता है। प्रयोग होगे तो नई–नई राहे बनेंगी। प्रयोग वृत्ति ही उन्हे राहो के अन्वेषण से जोडती है। स्वय रास्ता बनाने एव उस पर चलने मे एक सुख है। उपलब्धि का सुख, सर्जक एव भोक्ता होने का सुख इसलिए उसने बनी बनाई राह ठुकराकर नयी राह बनाने का उद्यम किया। इसके अतिरिक्त उन्हे परम्परा से मिली राह जिस पर असख्य पद चिन्ह पहले से ही अकित थे, वहा अपने पैरो की छाप छोडकर उन्हें सुरक्षित रख पाना सदेहास्पद था। लिहाजा कवि अस्मिता के संकट ने इन्हे प्रयोग के लिए उकसाया।

"तेरा कहना ठीक जिधर मै चला नही वह पथ था,
मेरा आग्रह भी नही रहा मै चलू उसी पर सदा
जिसे पथ कहा गया,
जो इतने—इतने पैरो द्वारा रौदा जाता रहा
कि उस पर कोई छाप नही पहचानी जा सकती थी।"

राहो के अन्वेषण की प्रवृत्ति अपनी पहचान बनाने की कोशिश का ही उपक्रम है।

प्रयोगवाद मे ह्रासोन्मुख मध्यम वर्गीय जीवन का निपट नंगा रूप अकित है। प्रयोगवादी कवियो द्वारा जिस नवीन सत्य की खोज एव उसके अभिव्यक्ति की घोषणा की थी वह सत्य इसी मध्यम वर्गीय समाज के व्यक्ति का ही था। विचारो मे लपेटकर जीवन को परोसने से अब तक जीवन की सच्चाई छिपी ही रह गई थी। इसीलिए प्रयोगवाद मे वाद ग्रस्तता से परहेज की प्रवृत्ति मिलती है। दूसरा सप्तक की भूमिका में 'अज्ञेय' जोर देकर कहते हैं, "प्रयोग का कोई वाद नही है। हम वादी नहीं रहे, नही है।[6] यहां वाद का तात्पर्य साहित्यिक वाद से उतना नही है जितना कि राजनीतिक दार्शनिक मतवाद से है। वाद या दर्शन मे एक विशेष लीक पर चलने एवं विशेष ढंग की तर्क प्रणाली को अपनाने का आग्रह होता है। अत सत्य तक पहुंचने के लिए वाद मुक्त होना एवं सतत प्रयोगशील बना रहना आवश्यक है।

प्रयोगवादी कवि यथार्थवादी है। वे भावुकता के स्थान पर ठोस बौद्धिकता को स्वीकार करते है। ये मध्यम वर्गीय व्यक्ति जीवन की समस्त विद्रूपताओ, जडता, कुठा, अनास्था पराजय, एव मानिसक सघर्ष के सत्य को बडी बौद्धिकता के साथ उद्घाटित करते हैं। मध्यम—वर्गीय व्यक्ति जीवन की पीडा के अनेक स्तर इन मध्यम वर्गीय प्रयोगवादी कवियो मे देखी जा सकती है। यह पीडा बोध इन कवियो में इतना गहरा और सजग है कि वे इसे एक दार्शनिक स्तर पर एक चिरन्तन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं—

"दु ख सबको माजता है
और चाहे स्वय सबको मुक्ति देना वह न जाने,
किन्तु जिनको माजता है
उन्हे यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखे।"[7]

इन सबके बावजूद प्रयोगवादी कविता मे दमित काम वासनाओ की विशेष रूप से प्रधानता दिखती है। मध्यम वर्गीय कवि की तीव्र काम सवेदनाए कठोर सामाजिक बधनो के समक्ष उभर न सकी कुठित होती गईं, पीडा दायक बन गई। छायावादी कवियो ने कल्पना लोक मे नारी के साथ साहचर्य स्थापित कर अपनी प्यास मिटा ली लेकिन यथार्थ आग्रही कवियो के लिए यह सभव नही था, फलत उन्होने कल्पना का रगीन आवरण हटाकर दमित यौन वासनाओ के नग्न रूप को स्पष्ट कर दिया। फ्रायड का मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त इनका प्रधान जीवन दर्शन बन गया। इनके द्वारा कही स्पष्टत तो कही बारीक प्रतीको तथा बिम्बो के माध्यम से दमित काम वासनाओ एव उलझी हुई सवेदनाओ को स्थापित किया गया। अज्ञेय, शमशेर, गिरजा कुमार माथुर और धर्मवीर भारती के नाम इस सन्दर्भ मे लिए जा सकते है।

प्रख्यात जर्मन दार्शनिक नीत्शे भी प्रयोग दर प्रयोग पर बल देता है। उसके अनुसार एक प्रयोग दूसरे को यदि काटता भी है, तो भी श्लाध्य है। उसका कहना था कि अपने ही परवर्ती विचारो के विरुद्ध घोषणा करने का साहस होना चाहिए। न केन के 'केसरी कुमार' की 'साझ' शीर्षक कविता जर्मन दार्शनिक नीत्शे के विचार को ही उदाहरित करती है, जिसके प्रारम्भ मे ही कवि नही कहकर न केवल अपने पूर्ववर्ती कवियो द्वारा दिए गये उपमानों को अस्वीकार करता है, वरन् साझ के लिए गढे गये अपने पूर्ववर्ती उपमान (जैसे साझ एक असभ्य आदमी की जम्हाई है' या साझ एक शरीर लडकी है) भी से नही जचते है और अन्तत कवि 'नहीं—नही' कहता हुआ उसे एक रद्दी स्याही सोख बताकर संतोष कर लेता है —

> "सॉझ एक रद्दी स्याही सोख है
> जो कही मूल पर लाल संशोधनो को,
> लाल सशोधनों पर काले मूल को,
> उलटा लेता है, काक पट समेत।
> और समन्वय के द्वन्द्व मे स्वय बेकाम हो जाता है।"[8]

सत्य का अनुसंधान प्रयोगवाद की एक अन्य प्रवृत्ति है। बदलते हुए परिवेश मे कोई एक मानदण्ड या मानक लेकर चलना असभव है। वह सत्य के सभी स्तरों को उद्घाटित नही कर सकता। दूसरी बात अनुसधान एक ओर सत्य तक ले जाता है तो दूसरी ओर आत्म निर्माण की जमीन भी तैयार करता

है। अज्ञेय की सत्य सम्बन्धी स्थापनाओ मे इसी कारण से 'स्व' के निर्माण की पूरी तैयारी झलकती है। 'उड चल हारिल' में नव निर्माण ही आत्म निर्माण की पहचान या शिनाख्त देता है–

> "उड चल हारिल, लिए हाथ मे, यही अकेला ओछा तिनका।
> ऊषा जाग रही प्राची मे, कैसी बाट भरोसा किनका।
> कॉप न यद्यपि दसो दिशा मे, तुझे शून्य नभ घेर रहा है,
> रुक न यद्यपि उपहास जगत का, तुझको पथ से हेर रहा है।
> तु मिट्टी था किन्तु आज मिट्टी, को तूने बाध लिया है
> तू था सृष्टि, किन्तु सृष्टा का, गुर तूने पहचान लिया है।[9]

उपर्युक्त रचना की अंतिम पक्तियो मे अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। सार्त्र की विचारधारा 'अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है' यह वही 'सार' है जो आत्म निर्माण रूप मे यहा परिलक्षित हो रहा है।

साहित्यिक अनुसंधान सामूहिक प्रयास से नहीं होता। उसमे भरोसे के साथ स्वय ही लगना होता है। यहा एक प्रयोग मे सफल हो जाना भी काफी नही होता, बल्कि जीवन को प्रयोग के अन्तहीन सिलसिले मे गूंथना होता है। अत व्यक्तिगत प्रयास से सफल प्रयोग तक पहुॅचने मे कवि आत्म रक्षा एव आत्म विस्तार की क्रमिक नीति अपनाता है। इसी से उपजी है प्रयोगवाद की व्यक्तिवादी कला दृष्टि जो व्यक्तिगत स्थिति से लेकर सामाजिक स्थिति तक फैलती सिकुडती है। अज्ञेय में वैयक्तिक असतोष है जो पुराणपंथी समाज पर लाठी की तरह बरसता है–

> "ठहर ठहर आततायी जरा सुन ले
> मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
> रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय
> मेरी अवहेलना की टक्कर संभाल ले।"[10]

ऐसा ही असंतोष अन्य कवियों में भी है। पर वे अपने असंतोष को व्यापक दायरे मे ले जाने की आकांक्षा रखते है। जड समाज से विद्रोह करने का भाव इनमे है, पर शुरू–शुरू में शायद ये विद्रोह को परिवर्तन से जोडने वाली वैज्ञानिक पद्यति से अनभिज्ञ है, ये मात्र भावनात्मक विस्फोट करके रह जाते हैं। 'तार सप्तक' काल मे भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन एव मुक्तिबोध मे ऐसे ही विस्फोट की अनुगूज सुनी जा सकती है।

"मेरा जग से द्रोह हुआ पर मै अपने से ही विद्रोही।
गहरे असतोष की ज्वाला सुलग जलाती है मुझको ही।"[11]

प्रयोगवादी मानते है कि प्रयोग खतरे से खाली नही है। सबसे बडा खतरा तो स्वय के टूटने बिखरने का है। इसलिए प्रयोग के लिए साहस आवश्यक है। दूसरी बात यदि प्रयोग असफल होता है, तो समय एव परिश्रम की हानि तो होती ही है, साथ ही वह प्रयोग प्रयोग नही बल्कि प्रयास मात्र कहलाएगा। सफलता ही प्रयोग तथा उसके साथ जुडे प्रयास को अर्थदीप्ति देती है। 'अज्ञेय' कहते है, पारखी मोती परखता है, गोता खोर के असफल उद्योग नही। गोता खोर का परिश्रम या प्रयोग अगर प्रासगिक हो सकता है तो मोती को सामने रखकर ही।" अत महत्व अनुसंधान की प्रवृत्ति का है, वे यह भी मानते है कि साहस छोटा या बडा नही होता चाहे उससे मिली उपलब्धि छोटी या बडी क्यो न हो। बज्र चट्टान की छाती विदीर्ण कर देता है एव स्वाती की बूद सीपी के मर्म को भेदकर ही मोती बनती है, दोनों मे खतरे से खेलने का साहस है। इनमें से किसी के साहस को कम या अधिक करके नहीं आंका जा सकता है। कलात्मक सर्जना भी निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, नव निर्माण के लिए यहां भी जो प्रयोग होते हैं उनमे भी साहसिकता एव धैर्य अनिवार्य है। साथ ही उन्हे श्रेणीकृत नही किया जा सकता है–

"बूंद स्वाती की भले हो,
बेधती है मर्म सीपी का उसी निमर्म त्वरा से
ब्रज जिसमें फोडता चट्टान को,
भले ही फिर व्यथा के तम मे,
बरस पर बरस बीते।
एक मुक्ता सीप को पकते।"[12]

कुछ आलोचकों द्वारा प्रयोगवादी भाषा एवं शिल्प पर निम्न आरोप लगाया जाता रहा है। नूतनता के प्रति अत्यधिक मोह प्रयोगवादी कवियो में देखा जा सकता है। काव्य को नई भाषा एवं नये रूप में प्रस्तुत करने का मोह ही इस काव्य की दुरूहता अस्पष्टता और समाज निरपेक्षता का प्रधान कारण रहा है। इसी कारण इस प्रयोगवादी काव्य मे छायावादी सुन्दर शब्द विन्यास, भावनाओ की मधुर अभिव्यक्ति तथा मूर्त विधायिनी कल्पना का अभाव रहा है। ये सदैव ऐसी उपमाओ उत्प्रेक्षाओं, रूपकों, प्रतीकों और शब्दो की खोज में लगे रहते हैं जो पाठको को चमत्कृत कर दे भले ही उनके साथ भावों का तादात्म्य न हो

सके। इस प्रयत्न मे भाव एव विचारो मे क्रमागतता नही रह जाती, सवेदना उलझकर रह जाती है। सवेदना का यह उलझाव एव विचारो का यह क्रम–भग प्रयोगवादी की बहुत बडी निर्बलता है।

प्रयोगशीलता तीन क्षेत्रो मे सक्रियता दिखलाती है, एक 'रूप रचना के क्षेत्र मे' दूसरे वस्तु तत्व या कथ्य के क्षेत्र मे, एव तीसरे भाषा के क्षेत्र मे। ये आलोचक प्रयोगवाद को नये–नये शिल्प प्रयोग (फार्मलिज्म) के रूप मे देखते है। जबकि वह प्रयोगवाद की महज एक प्रवृत्ति है। यदि यहा मुक्ति बोध का यह कथन स्वीकार लिया जाये कि 'वस्तु तत्व मे इतनी शक्ति होती है कि वह स्वय अपने रूप को लेकर आता है तो यह एक तन्हा प्रवृत्ति भी न रहकर अनुषगी प्रवृत्ति बन जाता है। शिल्प के क्षेत्र मे नकेनवादियो ने कुछ अच्छे एव कुछ विचित्र प्रयोग किए। इनकी रचनाओ मे शब्दो को खीच तानकर या उन्हे जोड–तोड कर नई अर्थवत्ता लाई गई है–

"नाचो शकर नाचो कै–लाश पर"[13]

कै–लाश मे स्थान विवृत्ति डालकर कवि ने दोहरे अर्थ की सृष्टि की है। इसका अर्थ कै एव लाश भी है और शकर भगवान का निवास कैलास भी। नलिन विलोचन शर्मा ने शब्दो को जोडकर नये सामाजिक शब्दो की रचना की है–

"मुझे धूलप को बिना चश्मा लगाये देखना आता है"[14]

धूलप का अर्थ धूल मिश्रित धूप है। यहा शब्द योग (धूल+धूप = धूलप। धूल–प = धूल। धूलप–ल = धूप) के जरिए प्रयोग किया गया है। इसी अर्थ मे प्रयोगवादी (नकेनवादी) प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छद का स्वयं निर्माता है।

दूसरे सप्तक मे अज्ञेय ने लिखा है, "प्रयोग दोहरा साधन है, क्योकि एक तो वह उस सत्य को जानने का साधन है, जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे उस प्रेषण की प्रक्रिया को और उसके साधनो को जानने का भी साधन है। अर्थात प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।"[15] प्रेषण क्रिया एव साधन मे भाषा शिल्प आदि आते है। प्रयोगवादियो की दृष्टि मे भाषा ही नये कथ्य एव नये शिल्प का शोध करने वाला सबसे समर्थ औजार है। इसी की सहायता से कवि

कलात्मक अनुभव के क्षणो को पहचानता पकडता एव प्रस्तुत करता है। काव्य के शिल्प और वस्तु का अनुसधान इसी अर्थ मे प्रयोगशीलता है।

(स) प्रयोगवाद का दार्शनिक आधार

(1) अस्तित्ववाद

अस्तित्ववादी विचारक एक प्रकार से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र चिन्तक है। अस्तित्ववाद कोई वैचारिक सम्प्रदाय नही है यह पूर्ण रूप से निश्चित एव सर्वमान्य सिद्धान्तो को प्रतिपादित करने का प्रयास नही है, बल्कि इसका लक्ष्य इस प्रकार के प्रयत्नो का विरोध करना रहा है। यह दर्शन के किसी नये सम्प्रदाय को स्थापित करने की चेष्टा से प्रादुर्भूत नही हुआ है। यह कोई वाद नही बल्कि एक दृष्टि है। वाद और दृष्टि मे अन्तर है यदि वाद खण्डित हो जाये तो वाद की सार्थकता समाप्त हो जाती है, किन्तु दृष्टि यथेष्ट अथवा अयथेष्ट हो सकती, किन्तु वह खण्डित नही हो सकती है। इस प्रकार दृष्टि का पूर्ण निराकरण संभव नही है। अत· अस्तित्ववाद को समझने के लिए अस्तित्ववादी दृष्टि का स्पष्टीकरण आवश्यक है। इसी विलक्षणता के कारण दर्शन के क्षेत्र मे इसका प्रवेश साहित्य के माध्यम से हुआ। इसकी अभिव्यक्ति साहित्यिक रचनाओं जैसे कहानियों, नाटको उपन्यासो आदि में बडे रोचक एवं सार्थक ढग से सभव था।

पारम्परिक दर्शन का चिन्तन क्षेत्र अनिवार्य रूप से अवधारणात्मक है। उसका लक्ष्य दार्शनिक अवधारणाओं का विश्लेषण करना है, किन्तु अस्तित्ववादी विचारको के लिए इस प्रकार का चिन्तन यथार्थ से सर्वथा हटा हुआ है अस्तित्ववादियो के अनुसार अमूर्त भावो के विश्लेषण से सत्य की प्राप्ति नही हो सकती है। मानवीय सत्य की खोज हम उस प्रकार नही कर सकते जिस प्रकार कोई सर्जन चीड फाड करता है। उसके लिए तो उन्हें आत्मसात करना होगा और भावात्मकता की बिना उपेक्षा किए उन्हे जानने की चेष्टा करनी होगी। हमारे लिए यह महत्वपूर्ण नही है कि मनुष्य का सार्वभौम स्वरूप क्या है, बल्कि महत्वपूर्ण है अस्तित्व की स्थितियां जिनमें हमे जीना है। इसके लिए मनुष्य की वैचारिक दृष्टि भी इन अस्तित्वमूलक अनुभूतियो के अनुरूप ही होनी चाहिए। यही कारण है कि अस्तित्ववाद की केन्द्रीय एवं मौलिक मान्यता यह है कि विचार को मनुष्य पर अथवा अस्तित्ववादी व्यक्ति पर केन्द्रित होना चाहिए।

हमारा चिन्तन चाहे जिस रूप मे हो उसके केन्द्र मे मनुष्य ही है, अत वह मनुष्य के अस्तित्व की उपेक्षा करके सार्थक नही हो सकता है। इसीलिए अस्तित्ववादी दृष्टि मानव केन्द्रित दृष्टि है। इस अर्थ मे कुछ समालोचको का कहना कि अस्तित्ववादी चिन्तन दर्शक की दृष्टि का चिनतन नही, बल्कि अभिनेता की दृष्टि का चिन्तन है। हेगल की प्रत्ययवादी दृष्टि का उपहास करते हुए किर्केगार्ड कहते है कि हेगल हमारे सामने जगत तथा मनुष्य के सम्बन्ध मे एक विशाल नाटकीय दृश्य प्रस्तुत करते है, किन्तु वे भ्रान्त है, क्योंकि वे देख ही नही पाते कि मानवीय नाटक के पात्र हम सभी हैं, हमे नाटक देखने की आवश्यकता नही है, क्योकि हम तो नाटक खेल रहे है। इन सभी बातो का केन्द्र यही है कि अस्तित्ववादियो के अनुसार मानवीय सत्य को समझने के लिए मनुष्य की अस्तित्ववादी स्थिति के अनुरूप ही विचार करना आवश्यक है।

अस्तित्ववादी दार्शनिको को आधुनिक मनुष्य की वर्तमान स्थिति की पूर्ण जानकारी थी। यह पूर्ण रूप से समकालिक विचार है। यद्यपि विभिन्न विद्वानो ने अस्तित्ववाद की वैचारिक विशिष्टताओ की साम्यता प्राचीन ग्रीक और भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायो मे एवं ईसाई धर्म दर्शन मे करने का प्रयास किया है। यह सच है कि अस्तित्ववाद का उद्‌भव एक विशेष प्रकार की मानव स्थिति के अनुभव पर निर्भर है। यह अनुभूति वह मानवीय स्थिति है जिसमे आधुनिक युग का मनुष्य घिरा है। विज्ञान और तकनीक की प्रगति से विकसित मानसिकता ने मनुष्य को यान्त्रिक बना दिया, इससे मानवीय सवेदनाएं मर सी गई। इसके अतिरिक्त दो विश्व युद्धो की विभीषिकाओ की स्पष्ट अनुभूति आदि की पृष्ठ भूमि मे अस्तित्ववादी दृष्टि सृजित होती है। इससे स्पष्ट हैं कि अस्तित्ववादी चिन्तन समकालीन चिन्तन है। कार्ल–यास्पर्स ने कहा है कि एक अर्थ में सभी दर्शन समकालीन ही होते है किन्तु अस्तित्ववाद को इस अर्थ मे समकालीन नही कहा जा रहा है। यह इस अर्थ मे समकालीन है कि इस प्रकार की दृष्टि इस युग की देन है।

कुछ विद्वानों के अनुसार आधुनिक युग मनुष्य के लिए एक विशेष प्रकार की आपातीय स्थिति है। विज्ञान और तकनीकी उपलब्धियो के परिणाम स्वरूप मनुष्य के सुख सुविधाओ में वृद्धि हुई। किन्तु जैसे–जैसे सुखभोग के उपकरण बढते जा रहे है वैसे–वैसे सुख भोग की अनुभूति भी शिथिल पड़ती जा रही है। मशीनी जीवन जीते–जीते मनुष्य भी मशीन बनता जा रहा है। उसके सारे कर्म

यन्त्रवत होते जा रहे है तथा उसकी आन्तरिकता एव उसकी मानवीयता का हनन होता जा रहा है यह स्थिति मानव के आमानवीयकरण की प्रक्रिया है। मनुष्य की मानवीयता अर्थात सवेदनशीलता समाप्त होती जा रही है, अस्तित्ववादी विचारको को इस विषमता की अनुभूति है। उन्हे चिन्ता है कि मनुष्य कही इस प्रकार की स्थिति मे कही खो न जाये। अत वे यह आवश्यकता महसूस करते है कि मनुष्य को उसकी मानवीयता उसकी विशिष्टता एव उसके होने की गरिमा की अनुभूति करायी जाये। इसी कारण अस्तित्ववाद मनुष्य को विचार के केन्द्र मे प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करता है। इस विशेष अर्थ मे अस्तित्व मानवता–वादी दर्शन है।

अस्तित्ववाद बुद्धिवाद की विरोधी विचारधारा है। यह हेगल और उसके अनुयायियो के अतिशय बुद्धिवाद के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया है। अस्तित्ववादियो के अनुसार तार्किक और बौद्धिक चिन्तन के द्वारा मानवीय सत्यो को आत्मसात नही किया जा सकता है। इस सदर्भ मे किर्केगार्ड का यह कथन प्रसिद्ध है कि 'सत्य आत्मनिष्ठता है' मानवीय समस्याओं का सम्बन्ध मनुष्य की अनुभावात्मक स्थितियो से है। मनुष्य के लिए उसका अनुभव ही वास्तविक सत्य है। प्रेम, घृणा सत्य, आदि का सम्बन्ध उतना बौद्धिक चिन्तन से नहीं है जितना कि साक्षात अनुभूति से है। घृणा का बोध तब तक नही हो सकता है जब तक कि व्यक्ति घृणा का साक्षात् अनुभव न किया हो। इसी प्रकार गरीबी, उपेक्षा अरूचि, दुरास्था, एबसर्डिटी आदि की प्रतीति चिंतन परक नही बल्कि अनुभव परक होती है। इससे स्पष्ट है कि अस्तित्ववाद मनुष्य की उपेक्षा के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया है।

चितन तथा विज्ञान दोनो मे ही मनुष्य की आन्तरिक चेतना मानवता का प्राय हनन होता रहा है। हेगल जैसे अमूर्तभावो के पोषक मनुष्य के अस्तित्व के स्थान पर सारतत्व का चित्र प्रस्तुत करते हैं जो जीवन और अस्तित्व की गलत समझ पर आधारित है। उल्लेखनीय है कि सोरेन किर्केगार्ड ने हेगल के समय मे ही बुद्धिवाद का विरोध प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु हेगल के प्रखर व्यक्तित्व के समक्ष किर्केगार्ड की बात दब गई। अस्तित्ववाद विज्ञान के विरूद्ध नही है, किन्तु अति वैज्ञानिकता के विरूद्ध अवश्य हो जाता है। यह इस मत के विरूद्ध है कि मनुष्य को एक वस्तु समझ लिया जाय। आधुनिक मनोविज्ञान की व्यवहारवादी व्याख्या के अनुसार मनुष्य प्रतिक्रियाओ का समूह मात्र है जो

उद्यीपनो के अनुरूप व्यवस्थित हो सकता है। अस्तित्ववाद इस प्रवृत्ति का विरोधी है। अस्तित्ववाद का मुख्य लक्ष्य मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित करना है। अत यह अति वैज्ञानिकता और अति बौद्धिकता जो अमानवीय करण का मार्ग खोल देती है का विरोध करता है।

अस्तित्ववाद मनुष्य के सार्वभौम एव अनिवार्य गुणो पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने की प्रवृत्ति का विरोधी है। पाश्चात्य दार्शनिक सस्कृति मे प्लेटो और अरस्तू के युग से लेकर हेगल पर्यन्त मनुष्य की व्याख्या एक विवेकशील प्राणी के रूप मे की गई है। किन्तु जो स्थापनाए एक मनुष्य पर लागू होती है आवश्यक नही है सभी मनुष्यो पर लागू हो। किन्तु वास्तविकता ऐसी नही है, मनुष्य मे उसकी वैयक्तिकता प्राथमिक होती है। एक ही परिस्थिति मे रहने वाले विभिन्न व्यक्ति भिन्न–भिन्न रूप मे क्रिया शील होते है। अत मनुष्य के सामान्य और जातिगत लक्षणो को जान लेने से उसके यथार्थ स्वरूप का बोध नही हो सकता है।

परम्परागत रूप से दार्शनिक चिन्तन समग्र दृष्टि की बात करता है, किन्तु अस्तित्ववादी इस प्रवृत्ति के विरूद्ध है। सिद्धान्तत जब भी हम किसी दृष्टि की बात करते है तो विशेष परिप्रेक्ष्य की ही दृष्टि होती है। यहा तक कि तथाकथित समग्र दृष्टि भी किसी व्यक्ति विशेष की ही दृष्टि होती है। कोई व्यक्ति ही यह तय करता है कि वह सभी वस्तुओ को एक समग्र दृष्टि से देखेगा। यदि कोई सार्वभौम निष्कर्ष स्थापित भी होता है तो वह भी किसी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से ही स्थापित होता है।

अस्तित्ववाद आत्मनिष्ठता की उपेक्षा के भी विरूद्ध है। प्राय· सभी प्रकार के मानव विज्ञानो का ध्यान बाध्यता और वस्तुनिष्ठता पर आधारित होता है। वे यह मानकर चलते है कि मनुष्य की क्रियाओ व्यवहारों, स्नायुतन्त्र आदि का निरीक्षण एवं परीक्षण करके मनुष्य को समझा जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के अध्ययनो से केवल मनुष्य के बाह्य स्वरूप को ही समझा जा सकता है। उसके आन्तरिक स्वरूप को नही। जबकि मनुष्य का यथार्थ स्वरूप उसकी आन्तरिकता एव आत्मनिष्ठता मे ही निहित है।

यद्यपि अस्तित्ववाद का केन्द्र व्यक्ति है किन्तु इससे यह व्यक्तिवादी या आत्मनिष्ठतावादी नहीं हो जाता है। अस्तित्ववाद पर व्यक्तिवाद का आरोप तब

सही होता जब वह व्यक्ति को विश्व का मानदण्ड बना देता। प्राचीन सोफिष्ट विचारक प्रोटा गोरस के इस मत को अस्तित्ववाद नही मनता है कि 'मनुष्य प्रत्येक वस्तु का मानदण्ड है' अस्तित्ववाद का यही कहना है कि व्यक्ति का वास्तविक अस्तित्व उसकी आन्तरिकता मे है।

अस्तित्ववाद उन सभी सिद्धान्तो एव प्रयत्नो के विरूद्ध है जो मानव अस्तित्व के विषय मे पूर्णतया अन्तिम निष्कर्ष स्थापित करने के प्रयत्न मे रहते है। आधुनिक मनोविज्ञान का लक्ष्य भी कुछ ऐसा ही है जिसे प्राप्त नही किया जा सकता है। मनुष्य के अस्तित्व के सम्बन्ध मे कोई पूर्ण रूप से निश्चित एव गणितीय उत्तर नही दिया जा सकता है। इसी कारण वह कहता है कि मनुष्य का अस्तित्व मूलत अनिश्चय और विभिन्न अर्थ बोधक होता है। इस प्रकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता व्यक्ति का स्वरूप चिन्तन और अनुभूति किस दिशा मे प्रवाहित होगी इसका पूर्ण निर्धारण नही हो सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि अस्तित्ववाद का केन्द्र मानव है और वह भी अस्तित्ववान व्यक्ति। अस्तित्ववाद अस्तित्ववान व्यक्ति की अनुभूतियो द्वारा मानव अस्तित्व की कहानी कहता है। मानव अस्तित्व की अनुभूति आन्तरिकता की अनुभूति है, अतः यह कहानी मनुष्य की आन्तरिकता की कहानी है।

जहा तक अस्तित्ववाद के नाम की सार्थकता का प्रश्न है, अस्तित्ववाद अस्तित्व शब्द के प्रचलित अर्थ को ग्रहण करके इसके मूलार्थ पर ध्यान देता है। इस अर्थ मे आर्विभाव या उद्गमन अथवा उभरना इसके मूल मे है। अत इस अर्थ मे अस्तित्व का अर्थ अस्तित्व की अनुभूति के साथ उभरते रहना, सतत् आविर्भावित होते रहना है। स्पष्टत. मानव के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु इस अर्थ मे अस्तित्ववान नही हो सकती है। केवल मानव को ही सतत अनुभूति होती रह सकती है कि वह अपने में अपने से उभर रहा है। अस्तित्व के शब्द के मूलार्थ मे केवल मानव अस्तित्ववान है, अत· अस्तित्ववाद को मानव केन्द्रित विचार होना ही है।

अस्तित्ववादी सन्दर्भ मे 'अस्तित्व' शब्द का अर्थ अस्तित्व की अनुभूति के साथ अस्तित्ववान रहना तथा इस अर्थ मे केवल मानव अस्तित्ववान है। अस्तित्व की प्रथम अनुभूति के साथ ही इस कहानी का आरम्भ होता है। अस्तित्ववाद इसे स्वीकार करता है कि जब बच्चा जन्म लेता है तो वह इस अनुभूति के साथ नही पैदा होता है। मनुष्य की कहानी का आरम्भ अस्तित्व की प्रथम अनुभूति के

साथ ही होता है, वह चाहे जब भी हो। अत अस्तित्ववाद मानव की आन्तरिकता की विकास की कहानी कहता है जिसका आरम्भ अस्तित्व की प्रथामानुभूति से होता है तथा मृत्यु तक अस्तित्व के सतत उभरने की कहानी है। इस अर्थ मे अस्तित्ववाद मानव आन्तरिकता के विकास की कहानी कह रहा है। इसीलिए सभी अस्तित्ववादी विचारको के ध्यान का केन्द्र अस्तित्ववान व्यक्ति तथा उनके विचार एव विवेचना का केन्द्र आन्तरिकता हो जाती है।

अस्तित्व की प्रथमानुभूति के साथ ही व्यक्ति को यह अनुभूति भी होती है कि वह एक परिस्थिति मे है। प्राथमिक अनुभूति मे परिस्थिति की चेतना विश्लेषण द्वारा स्पष्ट होने पर इस परिस्थित के दो मूल अवयव हमारे समक्ष आते है। एक वस्तुए तथा दूसरा अन्य। अब व्यक्ति को यह अनुभूति होती है कि उसकी वैयक्तिकता का विकास उसकी 'वस्तुओ की अनुभूति' तथा उसकी अन्य की अनुभूति से प्रभावित है। इस प्रकार उसके लिए अस्तित्व के तीन आयाम स्पष्ट होते है, वस्तु, वह स्वय, अन्य। इन तीनो के पारस्परिक सम्बन्धो व व्यक्ति की अन्य के प्रति अनुभूतियो आदि का विवेचन प्रत्येक अस्तित्वादी विचारक अपने–अपने ढग से करता है। कुछ इस विवेचन मे ईश्वर को ढूढ लेते है तो कुछ अनुभूति की पूर्णतया मानवीय व्याख्या को ही उपयुक्त समझते हैं। इस सबके बावजूद सभी की दृष्टि अस्तित्व के तीनो आयामो पर ही रहती है।

अस्तित्व की प्रथमानुभूति किसी ईश्वर की अनुभूति नही है, वह केवल आत्मानुभूति है। यह स्वयं की अर्थात उस अनुभूति मे स्वय अकेलेपन की अनुभूति है। अब इसी अनुभूति के अनुरूप आन्तरिकता को विकसित होना है।अत यह अनुभूति एक प्रकार से व्यक्ति की मौलिक स्वतन्त्रता की अनुभूति है। यदि यह अकेलेपन की अनुभूति नहीं होती, यदि इसमें कुछ 'और' भी अनुभव होता तो वह कुछ 'और' प्रभावित करता या बाधित करता या सहयोग करता। अत यह मूल अनुभूति एक दृष्टि से स्वतन्त्रता की अनुभूति है और स्वतन्त्रता के साथ दायित्व तो जुट ही जाता है। फलत 'स्वतन्त्रता और दायित्व' अस्तित्ववादी विचारकों के लिए एक बडा रूचिकर विषय बन जाता है, इसलिए अस्तित्ववादी विचारधारा मे 'स्वतन्त्रता और दायित्व' भी एक विचार बिन्दु है।

स्वतन्त्रता के विचार के साथ अनिवार्यत स्वतन्त्रता निर्वाह, के आधार पर इन विचारकों ने प्रमाणिक जीवन तथा अप्रामाणिक जीवन (Un Authentic

Existence) मे अन्तर किया है। कुछ विचारको ने प्रामाणिक जीवन की परिणति 'आस्था' एव ईश्वर विश्वास मे ढूढा तो कुछ ने इसे इसके साथ जुटी हुई चिन्ताओ एव सहचर्यो के साथ स्वीकार किया। अप्रमाणिक जीवन के चित्रण मे भी आधुनिक जीवन की विसगतियो के प्रकाश मे लाते हुए आधुनिक जीवन के सभी पक्षो का सफल चित्रण किया गया है।

मूलत निरीश्वरवादी अस्तित्ववाद मे शून्यता को विचार स्वरूप बार–बार उल्लेखित किया गया है। विचारको द्वारा इसके ज्ञानमीमासीय एव इसके अस्तित्व मूलक पक्ष दोनो पर ही प्रकाश डाला गया है। हाइडेगर तथा सार्त्र ने इसे अपने विचारो मे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। ज्ञानमीमासीय रूप मे इनके अनुसार, निषेध की सार्थकता यही है कि वह चेतना की संरचना मे योगदान देती है, तथा तात्विक पक्ष मे यह अस्तित्व की अनुभूति का अनिवार्य अग है। इस सन्दर्भ मे सार्त्र ने अपने ग्रन्थ सत् और असत् (Being and Nothing) मे निषेध की व्याख्या की है। उसके अनुसार चेतना विषया पेक्षी होने के कारण विषय नही हो सकती है चेतना और विषय में मौलिक भिन्नता है। यह भिन्नता स्वय न तो चेतना है और न विषय, यह कुछ नही है। कुछ नही या असत् एक प्रकार का अलगाव है जो चेतना को उसके विषय से अलग करती है। यद्यपि यह असत् है तथापि इस अलगाव के बिना चेतना सभव नहीं है। इसीलिए सार्त्र कहता है कि असत् चेतना को उत्पन्न करता है और यह चेतना के केन्द्र मे विद्यमान है। चेतना अपने अतीत तथा भविष्य को चिन्तन का विषय बनाती है। सभी विषयो से भिन्न होने के कारण चेतना अपने आप मे अकेली है। इस प्रकार वह पूर्ण स्वतन्त्र और आत्म निर्भर है। इसीलिए सार्त्र कहता है कि मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है।

(क) किर्केगार्ड (1813–1855)

डेनमार्क निवासी किर्केगार्ड हेगल के समकालीन थे उन्होने हेगल के समय मे ही कहा थ कि बुद्धिवादी दर्शन खोखला है। हेगल विचारों और भावो का ऐसा जटिल ताना बाना खडा करते है कि व्यक्ति उसकी कोटियो के द्वन्द्वात्मक व्यूह में ऐसा उलझ जाता है कि पुनः निकल नहीं पाता है। बौद्धिक चिन्तन की प्रक्रिया मानवीय सत्य को ग्रहण करने में असमर्थ होती है क्योकि यह ज्ञाता और ज्ञेय के द्वैत पर आधारित है। मानवीय सत्य के लिए इस द्वैत को दूर करना आवश्यक है। मानवीय सत्य को जानने का अर्थ है उन्हें धारण

करना, उनका साक्षात्कार करना। इसीकारण से बुद्धिवाद इस कार्य मे असफल हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि बुद्धिवाद अमूर्त चिन्तन के कारण अमानवीय करण का सूत्रपात करता है। अमानवीय करण की प्रवृत्ति सार्वभौमिकता पर विशेष बल देने के कारण उसे नीरस बना देती है। इसके फलस्वरूप मनुष्य के विशिष्ट स्वरूप की उपेक्षा हो जाती है। वह मानव समुदाय का एक उदाहरण मात्र बन जाता है। मनुष्य की विशिष्टताओ को उपेक्षित कर दिया जाता है, और समाज द्वारा बनाये गये नियमो को मान करके उसी के अनुरूप जीवनयापन करने लगता है। किन्तु यह मनुष्य के वास्तविक स्वरूप का निरूपण नही कर पाता है। दार्शनिक चितन के लिए भावना और सकल्प की उपेक्षा नही की जा सकती है, अत ज्ञान के लिए प्रेक्षक दृष्टि की अपेक्षा कर्ता दृष्टि अधिक महत्वपूर्ण है। दर्शन के लिए वैज्ञानिक विधि उपयुक्त नही हो सकती है, क्योकि यह विषय परक होती है, किन्तु दर्शन कोई विज्ञान नही है। उसकी दृष्टि आत्मनिष्ठ होती है।

किर्केगार्ड मनुष्य को विषय के रूप मे नही बल्कि विषयी के रूप मे अस्तित्ववान मानते है। भौतिक पदार्थों का वास्तविक अस्तित्व नही है, क्योकि वे विषय रूप है वे कभी विषयी नहीं हो सकते है। अपने जीवन की अनुभूतियो के आधार पर किर्केगार्ड ने मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित तीन अवस्थाओ का उल्लेख किया है।

(1) इन्द्रियानुभवापेक्षी अवस्था :

इस अवस्था मे मनुष्य का जीवन सहज प्रवृत्तियो से सचालित होता है, उसमे सुख की ओर प्रवृत्ति पायी जाती है। यह जीवन आनन्ददायक नही है। अत इससे उद्‌विग्न होकर आत्महत्या की कल्पना की किन्तु सयोगवश उनका नैतिकपरिवर्तन हो गया।

(2) नैतिक जीवन :

यह सजह प्रवृत्तियो से संचालित नैतिक नियमो से संचालित जीवन है। नैतिक जीवन सुख–लोलुप जीवन की तरह अव्यवस्थित नही होता है। बल्कि ऐसा जीवन कुछ मूल्यो और आदर्शों के प्रति प्रतिबद्ध होता है। किन्तु नैतिक जीवन मे भी व्यक्ति को पूर्ण संतोष नही मिलता है, क्योंकि ऐसा जीवन भी किसी न किसी सर्वव्यापी नियम के अनुसार संचालित होता है। इसके

फलस्वरूप मनुष्य पराधीन सा हो जाता है। उसे अपनी अपूर्णता का बोध होता है, किन्तु इस अपूर्णता के अनुभव से मनुष्य को पूर्णता का सकेत मिलता है। उसके बाद धार्मिक जीवन का विकास होता है।

(3) धर्म परायण अवस्था

किर्केगार्ड के अनुसार यह पूर्ण सत्ता व्यक्तित्व पूर्ण ईश्वर है। ईश्वर का यह ज्ञान बौद्धिक विवेचन का परिणाम नही हो सकता है,अत ईश्वर को सिद्ध करने के सभी तर्क असफल हो जाते है। ईश्वर का ज्ञान पूर्ण से अपूर्ण के साक्षात्कार का परिणाम है।

किन्तु इन तीनो अवस्थाओ मे कोई तार्किक सम्बन्ध नही है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे जाने के लिए मनुष्य को स्वय को स्वेक्षा से नियोजित करना पडता है। ये भी अनिवार्य नही है कि मनुष्य के जीवन मे केवल ये तीन स्थितिया ही घटित है। तार्किकता का अभाव होने के कारण धार्मिक जीवन आस्था के द्वारा स्वीकृत होता है। कोई व्यक्ति ईसाई धर्म मे जन्म लेने मात्र से सच्चा इसाई नही बन जाता है। ईसाई धर्म की मान्यताओ को तार्किक सत्य के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता है। विषयी निष्ठ होने के कारण ये मान्यताये आस्था मूलक है। अत. एक वस्तुनिष्ठ सत्ता के रूप मे ईश्वर की खोज करना असगत है। नैतिक निराशा से धार्मिक आस्था की ओर सक्रमण की प्रक्रिया को किर्केगार्ड ने नैतिकता का सोद्देश्य निलम्बन कहा है। इस अवस्था मे नैतिक आदेश निरर्थक हो जाते है। इस सन्दर्भ मे किर्केगार्ड ने 'अब्राहम' और 'ईसाक' का उदाहरण दिया है। अब्राहम अपने पुत्र ईसाक के बलि देने के लिए एकान्त मे ले जाते है, इसे धार्मिक आस्था का आदर्श दृष्टान्त माना जाता है। यहा नैतिक तथा धार्मिक आदेशो की अपेक्षा ईश्वर के प्रति समर्पण की आन्तरिक आस्था का ही महत्व है।

किर्केगार्ड का देहावसान सन् 1855 मे हुआ और साठ–सत्तर वर्ष तक किसी का ध्यान इनके विचारो की तरफ नही गया। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् पराजित जर्मनी मे साम्यवादी नेतृत्व मे क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रबल हुआ, दूसरी ओर पूजीवादी अपने आन्तरिक सकट से उबरने में असमर्थ होकर क्रमश फासिस्ट और तानाशाही की ओर बढा। इस निराशा और पराजय के सक्रमण

काल मे जर्मन बुद्धिजीवियो के किर्केगार्ड के अस्तित्ववादी दर्शन ने एक नया जीवन दृष्टिकोण दिया।

जर्मन दार्शनिक **कार्लयास्पर्स** ने सिद्ध किया कि बडे–बडे कल कारखानो वाली वर्तमान सभ्यता एक रोग है। मनुष्य जितना ही विचारो को वस्तुगत कसौटी पर परखता है, उतना ही मानव अस्तित्व की वास्तविक विशेषता से दूर होता गया है। चिन्तन की यान्त्रिक और वस्तुगत व्यवस्थाओ ने मानव मन को कुचल डाला है। मनुष्य अपना बाह्य जीवन देखकर समझता है कि वह प्रगति कर रहा है, वास्तव मे वह अपने मूल आन्तरिक शक्ति का नाश कर रहा है। मनुष्य के लिए दो ही रास्ते है या तो घमण्ड मे आकर वह ईश्वर की सत्ता का इन्कार करे या अपना दुखी मन उसे समर्पित कर दे।

मार्टिन हाइडेगर कार्लयास्चर्स के समकालीन व जर्मन थे, एव उन्ही की भाति वस्तुगत ज्ञान से इन्कार करते थे। इनका सिद्धान्त था कि मनुष्य जो कुछ देखता सुनता है, वह वस्तुगत ज्ञान नही होता, उसकी इच्छा से प्रेरित आत्मगत ज्ञान होता है। इनकी विचारधारा ज्ञान की वस्तुनिष्ठता पर नही, बल्कि आत्मनिष्ठता पर बल देती हैं किसी वस्तु को हम किस रूप मे देखे बुद्धि या मन इसका निश्चय पहले ही कर लेता है। जन्म लिए इस ससार मे ससार को मनुष्य वस्तुगत रूप मे नहीं जान सकता हैं वह स्वयं को रूपो के माया लोक मे खोया पाता है। यह माया लोक निरर्थक और निरूद्देश्य है, किन्तु इसी मे मनुष्य को जीना है इसलिए इसे सार्थक और सोद्देश्य बनाना होगा। यह तभी हो सकता है जब व्यक्ति अपना उद्देश्य निश्चित करके लक्ष्य को प्राप्त करने पर अमल करे। तभी उसे अपना अस्तित्व बोध हो सकता है। यद्यपि इस प्रकार से अपना उद्देश्य निश्चित करना कम लोगों के लिए सभव हो पाता है, वे दूसरे के गढे हुए मन्त्रो को जपते हैं। स्वय अपना उद्देश्य निश्चित करने की उनमे क्षमता नही होती। वे सदैव मृत्यु भय से सत्रस्त रहते है, रोजमर्रा के कार्यों मे अपने को व्यस्त रखते हुए इस भय को दूर रखना चाहते हैं। किन्तु मन इस तरह के बहलावे स्वीकार नही करता, उसमे यह अपराध भावना उत्पन होती है कि वह सत्य से ऑखे चुराता है। इसलिए मनुष्य को दृढता से मृत्यु भय से ऑखे चार करना चाहिए।

किर्केगार्ड और यास्पर्स ईश्वर मे विश्वास करते थे, किन्तु हाइडेगर ने अपनी व्यवस्था मे ईश्वर को स्थान नहीं दिया। तीनो मे समानता यह थी कि वे

वस्तुगत ज्ञान को अमान्य कर आत्मगत ज्ञान को स्वीकारते थे। किर्केगार्ड के बाद यास्पर्स और हाइडेगर अस्तित्ववाद के प्रमुख विचारक हुए। पराजित जर्मनी के बुद्धिजीवियो मे इन्होने अस्तित्ववाद को लोकप्रिय बनाया।

जर्मनी मे हिटलर के अभ्युदय के बाद फ्रास मे पूजीपतियो और राजनीतिको का एकदल फासिस्टवाद का समर्थक हो गया और दूसरा इसके विरोध मे कम्यूनिष्ट पार्टी के साथ था। इनमे से एक दल अस्तित्ववाद के प्रभाव मे आया। फ्रास पर हिटलर के आक्रमण के साल भर पहले सार्त्र का पहला उपन्यास 'उबकाई' (ला नौ से) छपा। युद्ध के दौरान उसका एक दार्शनिक ग्रन्थ 'अस्तित्व और शून्य' (लेत्र एल नेऑ) भी प्रकाशित हुआ। सन् 1946 मे सार्त्र ने एक भाषण दिया जो पुस्तक रूप मे छपा 'अस्तित्ववाद मानववाद है'', इसमे उन्होने उन लोगो को उत्तर दिया जो अस्तित्ववाद को मानवता का विरोधी मानते थे।

सार्त्र का कहना था कि, मनुष्य जब पैदा होता है, तब वह तुरन्त मानवीयता नही प्राप्त कर लेता है। वह मानवीयता अर्जित करता है, स्वतन्त्र इच्छा से उद्देश्य निश्चित करके। मानवीयता नाम की कोई ईश्वर निर्मित वस्तु नही है। ईश्वर विहीन संसार मे मनुष्य अपनी मानवीयता स्वय गढता है। वह जब अपना उद्देश्य निश्चित करता है तब उसके द्वारा अपना हित नही करता वरन् उद्देश्य का निश्चय मानव मात्र के लिए हितकर होता है। मनुष्य के आत्मगत ज्ञान के अलावा वह किसी पर निर्भर नही हो सकता। उसे अपना भाग्य स्वय निर्मित करना है। मनुष्य की यह नियति है कि वह अपना उद्देश्य स्वय निश्चित करे। सार्त्र के अनुसार भविष्य मे श्रमिक वर्ग की विजय होगी ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। मनुष्य जैसा निर्णय करेगे सामाजिक परिस्थिति वैसी ही होगी। मनुष्य का मन पैतृक सस्कारो या सामाजिक परिस्थितियो से प्रभावित होता है, यह कहकर हम अपनी स्वतन्त्रता से बच नही सकते। मनुष्य का आत्म सम्मान इस बात मे है कि वह वस्तु नही है। भौतिकवाद के लिए मनुष्य भी एक वस्तु हैं अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य अपनी क्षमता को सर्जनात्मक ढग से कर्ममय जीवन मे चरित्रार्थ करके अपना निर्माण स्वय करता है।

हिन्दी साहित्य पर अस्तित्ववादी विचारक सार्त्र का विशेषत प्रभाव देखा जा सकता है। अस्तित्ववाद का छायावादोत्तर कविता पर प्रभाव जानने से पहले सक्षेप मे सार्त्र की विचारधारा का परिचय निम्न है –

(ख) ज्यॉ पाल सार्त्र :

(1) अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है ·

प्लेटो से लेकर डेकार्ट एव हेगल तक प्राय सभी महान विचारक सार को सबसे अधिक महत्वपूर्ण और वास्तविक मानते रहे। अस्तित्व का स्थान गौण और उपेक्षित रहा, डेकार्ट ने 'मै सोचता हूँ (सार) से 'मै हूँ' (अस्तित्व) को सिद्ध करने का प्रयास किया। प्रत्ययवादी और वस्तुवादी दोनो ही दार्शनिको के अनुसार मनुष्य का मूल स्वरूप पहले से ही निर्धारित है। वह न तो अपने मूल स्वरूप का अतिक्रमण कर सकता है और न परिवर्तन। अस्तित्ववादियो के अनुसार यह सिद्धान्त मनुष्यो पर लागू नही होता है। मनुष्येतर प्राणियो और पदार्थो पर इसे भले ही लागू किया जाये तथापि मनुष्य के सन्दर्भ मे उसके अस्तित्व का प्राथमिक महत्व है। मनुष्य पहले अस्तित्व मे आता है, उसके बाद वह जैसा बनना चाहता है, वैसे ही बन जाता है। इस प्रकार उसका अस्तित्व उसके सार को निर्धारित करता है। मनुष्य इस बात के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है कि वह क्या होना चाहता है। उसकी नियति उसके नियन्त्रण मे है, क्योकि वह मूल्यो का सृष्टा है। मनुष्य का सार एक खुली सभावना (Open Possibility) है। वह अपने प्रयासो के द्वारा नये मूल्यो की खोज करता है। इसी लिए सार्त्र कहता है कि ''मनुष्य–मनुष्य का भविष्य है' (Man is the future of man) मनुष्य का कार्य ही उसका स्वरूप है, वास्तव मे मनुष्य अपने कर्मों के द्वारा ही अपने स्वरूप का निर्धारण करता है। यदि मनुष्य किसी नियम को स्वीकार या अस्वीकार करता है तो स्वेक्षा से, किसी बाह्य दबाव के कारण नहीं। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य के अस्तित्व की व्याख्या किसी यान्त्रिक नियम के आधार पर नही की जा सकती है। सार्त्र के अनुसार कोई भी ऐसा सार नित्य नही है जिसे ईश्वर के मन का प्रत्यय कहा जा सके। सार का निर्धारण मानव अभिरूचि और चयन की स्वतन्त्रता से होता है। उसकी वस्तुनिष्ठ सत्ता नही होती है। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि मनुष्य का सार सर्वथा निजी होता है। सार्त्र अपनी अबुद्धिवादिता (Non Ratıonalty) और व्यष्टिवादिता के बावजूद मनुष्य के सार्वभौमिकता को स्वीकार करता है। मनुष्य अपने कर्मो के द्वारा अपने सार को निर्धारित करने के

साथ–साथ दूसरे के सार को प्रभावित तथा निर्धारित करता है यह मनुष्य का एक महान उत्तरदायित्व है और वह उससे बच नही सकता। इसका घनिष्ठ सम्बन्ध स्वतन्त्रता से है।

सार्त्र के अनुसार मनुष्य स्वतन्त्र सकल्प से युक्त है। यद्यपि मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है तथापि वह दो बातो के लिए स्वतन्त्र नही है।

(1) मनुष्य जन्म लेने के लिए बाध्य है। मनुष्य का जन्म उसके अपने स्वतन्त्र चयन का परिणाम नही है।

(2) मनुष्य अन्य लोगो के साथ रहने के लिए बाध्य है। जो कि व्यक्ति अभीष्ट वर्ण की स्वतन्त्रता का उपयोग नही करता है उसका जीवन अप्रामाणिक हो जाता है। ऐसा व्यक्ति मशीन का एक पुर्जा मात्र है। मनुष्य का अस्तित्व उसकी मौलिक स्वतन्त्रता का सूचक है। मनुष्य की स्वतन्त्रता का समर्थन करते हुए सार्त्र कहता है कि, ''मनुष्य स्वतन्त्र होने के लिए अभिशप्त है'' किन्तु वह अपने जन्म के लिए स्वतन्त्र नही है। इसीलिए वह कहता है कि, ''मनुष्य ससार मे फेक दिया गया है।'' किन्तु स्वतन्त्र होते हुए भी मनुष्य अपने आप मे पर्याप्त नही है ''मै वही हूँ जो हो सकता हूँ।''

सार्त्र के अनुसार मनुष्य में जन्मजात कुछ नहीं है। वह जो कुछ सकल्प करता है तद्नुसार बन जाता है। मनुष्य जो कुछ है वह उसके लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार सार्त्र मनुष्य की अबाध स्वतन्त्रता का समर्थन करता है। ईश्वर मनुष्य की स्वतन्त्रता के मार्ग में एक बहुत बडी बाधा है। इसीलिए वह ईश्वर को भी नहीं मानता है। मनुष्य की स्वतन्त्रता और ईश्वर का अस्तित्व दोनो साथ–साथ सभव नहीं है। मनुष्य के निश्चित लक्षणो और क्षमताओं का विवरण नही प्रस्तुत किया जा सकता है। मनुष्य के अस्तित्व का अर्थ है। अपने अस्तित्व की चेतना का होना। सार्त्र के अनुसार, अस्तित्व स्थिर एवं अपरिवर्तनशील नही होता है। यह निरन्तर क्रियाशीलता है। मानव अपनी आकांक्षाओं को निरन्तर निर्मित करता रहता है। इसके विपरीत पशुओ का अपनी जीवन चर्या मे कोई योगदान नहीं रहता है, क्योकि पशु मूल्यो की सर्जना नही कर सकते है।

(2) स्वतन्त्रता की अवधारणा और मानवतावाद :

सार्त्र के अनुसार मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है। किन्तु स्वतन्त्रता के मार्ग मे दो बाधाये है—

(1) ससार मे जन्म लेना। (2) अन्य व्यक्तियो के साथ रहना।

मनुष्य ससार मे जन्म लेने के लिए बाध्य है, यह उसके स्वतन्त्र चयन का परिणाम नही है, अत अन्य अस्तित्ववादियो के समान वह कहता है कि, "मनुष्य ससार मे फेक दिया गयाहै, यह अवश्य है कि जन्म लेने के बाद मनुष्य निर्णय लेने मे स्वतन्त्र है। मनुष्य स्वतन्त्र होने के लिए अभिशप्त है। यहा तक कि प्रलोभन और दबाव की स्थिति मे लिए गये निर्णय भी स्वतन्त्रता पूर्वक सचालित होते है। सार्त्र के अनुसार मनुष्य एव मनुष्येतर प्राणियो मे अन्तर स्वतन्त्रता के कारण है। अन्य प्राणी कुछ नियमो से नियन्त्रित होकर व्यवहार करते है, इसके विपरीत मनुष्य नये नियमो की सरचना करता है। वह नियमो का पालन, परिवर्तन तथा उल्लंघन करने मे स्वतन्त्र है। अत. मनुष्य के अस्तित्व और स्वतन्त्रता की व्याख्या स्थिर एव यान्त्रिक नियमो के द्वारा नही की जा सकती है। मनुष्य जो सकल्प करता है वह उसके अनुसार ही बनता है। जन्मजात कुछ भी नही है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य जो कुछ है वह उसके लिए स्वय उत्तरदायी है। इस प्रकार सार्त्र मानव की अबाध स्वतन्त्रता का समर्थन करता है।

डेकार्ट ने सृष्टि कर्ता के रूप मे और लाइबनीज ने पूर्ण एव स्वतन्त्र चिदणु के रूप मे ईश्वर की कल्पना करके मनुष्य की स्वतन्त्रता को नष्ट कर दिया। सार्त्र के अनुसार ईश्वर का अस्तित्व मनुष्य की स्वतन्त्रता के मार्ग मे बाधक है। ईश्वर का अस्तित्व और मानव स्वातन्त्रय साथ—साथ नही चल सकते है। मनुष्य अपने सार का निर्माता स्वय है न कि ईश्वर। यदि ईश्वर को मनुष्य के सार का निर्धारक माना जाये तो मानव अपने प्रामाणिक अस्तित्व से वचित हो जायेगा। इसीलिए सार्त्र मनुष्य की स्वतन्त्रता के मार्ग मे बाधक समस्त नियत वादो का खण्डन कर देता है।

वह ईश्वर का खण्डन तर्क के आधार पर नही बल्कि अनुभूति के आधार पर करता है। अपनी आन्तरिक अनुभूति मे सार्त्र को अरूचि या अकुलाहट

मिलती है। उसमे ससार का जो रूप दिखाई पडता है उसका न तो कोई उद्देश्य है और न तो कोई सृष्टा।

जगत की वस्तुए वैसी ही है, प्रत्येक अस्तित्व कारण रहित है। वह दुर्बलता के कारण बना रहता है और सहसा समाप्त हो जाता है। मनुष्य के मन मे ईश्वर का प्रत्यय कैसे उत्पन्न होता है। इसका उत्तर मनो वैज्ञानिक है। उसके अनुसार अपूर्ण मनुष्य पूर्णता की प्राप्ति के लिए अपनी चेतना की शून्यता का अतिक्रमण करना चाहता है ताकि वह अपने मे सत् बन जाये। इसी 'अपने मे सत्' बनने की इच्छा के कारण मनुष्य ईश्वर की अवधारणा कर लेता है। इस प्रकार सार्त्र ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर ईश्वर के प्रत्यय का विवेचन किया है।

सार्त्र के अनुसार मनुष्य की क्रियाशीलता उसके अतीत के कारण नही हो सकती है अतीत के लिए मै कोई कर्म नही करता हूँ। जो हो चुका है उसके लिए कोई कर्म करना अर्थहीन है। जो नही हुआ है उसका निर्धारण सभव है। हमारी प्रेरणाए भविष्योन्मुखी होती है भूतोन्मुखी नही। यहा पर सार्त्र का मत फ्रायड से भिन्न है, 'फ्रायड के अनुसार हमारी क्रियाये भूतकाल के प्रभाव से परिचालित और निर्धारित होती है। हमारा चरित्र हमारे अतीत के आधार पर निर्धारित होता है। किन्तु सार्त्र के अनुसार हमारा चरित्र अतीत का परिणाम नही है,बल्कि भविष्य से प्रेरित होकर हमारे अपने वरण का परिणाम है। अत- हम अपने चरित्र के लिए स्वय उत्तरदायी है। वस्तुत स्वतन्त्रता ही मनुष्य का अस्तित्व एवं स्वरूप है। जो लोग अपने को स्वतन्त्र नही मानते है वे उत्तरदायित्व से बचना चाहते हैं, जो एक पलायनवादी मानसिकता को जन्म देता है। (मै वह हूँ जो बनूंगा, और मै वह नही हूँ जो मैं हूँ)

स्वतन्त्रता के कारण ही मनुष्य में सन्त्रास या परिवेदना पैदा होती है। परिवेदना से शून्यता का सम्बन्ध है। परिवेदना का कारण दुरास्था है। मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है इसलिए वह बुरे विश्वास मे पडने के लिए भी स्वतन्त्र है। दुरास्था असत बोलने से भिन्न है। झूठ बोलने के लिए कम से कम दो व्यक्तियो की आवश्यकता है, झूठ बोलने वाला व्यक्ति सत्य को जानते हुए भी वह उसे छिपाना चाहता है। किन्तु दुरास्था वाला व्यक्ति स्वय से झूठ बोलता है। वह अप्रिय सत्य को अपने से छिपाता है। दुरास्था एक आत्म प्रवचना है। उदाहरण स्वरूप प्रेमी और प्रेमिका का सम्बन्ध। इससे स्पष्ट है कि सार्त्र के अनुसार

मनुष्य का मूलभूत पारस्परिक सम्बन्ध विरोध एव सघर्ष पर आधारित है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध घृणा पर आधारित है। इसीलिए वह कहता है कि 'दूसरा मनुष्य नरक है' क्योकि स्वतन्त्रता मे बाधक है, मनुष्य की स्वतन्त्रता के कारण उसके मार्ग दर्शन हेतु न तो ईश्वर है, न कोई मूल्य है और न कोई नैतिक नियम ही। किसी भी प्रकार के नियत मार्ग का अनुसरण करना प्रवचनात्मक विश्वास के कारण होता है। यह मनुष्य के उत्तरदायित्व से भागने का प्रयास है। प्रामाणिक अस्तित्व उसी व्यक्ति का है जो दुरास्था मे नही पडता है। मनुष्य किसी योजना का अग नही है। यदि वह किसी योजना का अग होता तो वह उस योजना के अन्य अगो से सम्बद्ध होता और तब वह स्वतन्त्र नही होता। उसके असम्बद्ध होने का अर्थ यह है कि वह प्रयोजनहीन और व्यर्थ है। इस प्रकार सासारिक परिवेश मे मनुष्य विसगति की भावना से ग्रस्त हो जाता है। मनुष्य मे ससार की वस्तुओ के प्रति अरूचि पैदा हो जाती है। जैसे मनुष्य ससार की वस्तुओ के साथ भावात्मक सम्बन्ध रखता है। वह वस्तुओ पर अधिकार स्थापित करना चाहता है, किन्तु होता इसके विपरीत है, वस्तुए ही मनुष्य पर अधिकार कर लेती है। ससार मधु के समान स्नेहिल है। वह न तो तरल है और न ठोस है। वह मनुष्य के साथ ऐसा चिपक जाता है कि मनुष्य सासारिक वस्तुओ के साथ अपनी इच्छानुसार आचरण नही कर सकता है। अत. उनके प्रति अरूचि पैदा हो जाती है।

इससे स्पष्ट है कि सार्त्र ने मानव अस्तित्व एवं जीवन की निराशावादी व्याख्या की है। किन्तु अपने जीव के अन्त मे वह निराशावादी अस्तित्व को स्वीकार नही करता है। अपनी प्रसिद्ध रचना **'Beıng and nothingness'** मे वह कहता है कि, "मनुष्य का उद्धार सभव है किन्तु इसके लिए वैचारिक परिवर्तन आवश्यक है।" 1960 मे प्रकाशित पुस्तक **'Critique of Dılectıc Method'** मे सार्त्र ने अस्तित्ववाद की व्यक्तिपरक दृष्टि का परित्याग कर दिया। उन्होने उसके स्थान पर सघ परक दृष्टि का समर्थन किया। इस प्रकार वह मार्क्सवाद से प्रभावित हुआ। उसने यहां तक कहा कि, 'मार्क्सवाद इस युग का प्रमुख दर्शन है, और अस्तित्ववाद इसके अन्तर्गत एक विचार धारा मात्र है। पहले सार्त्र यह मानता था कि 'एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शत्रु है और उनके बीच का पारस्परिक विरोध कभी समाप्त नही किया जा सकता है। किन्तु बाद मे वह दूसरो के साथ संघ बनाने पर बल देता है। इस प्रकार जहा पहले नैतिक जीवन असंभव था वहीं बाद मे नैतिक जीवन संभव हो जाता है। किन्तु इसके

लिए सार्त्र को भारी मूल्य चुकाना पडता है। उन्हे मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतत्रता का परित्याग करके मनुष्य को सघ रूप यन्त्र का एक अग मानना पडता है। वह अन्त मे सघ को सर्वोच्च स्थान देकर आशावादी हो जाता है।

यह सच है कि अतिशय बुद्धिवादियो और प्रत्ययवादियो ने अस्तित्ववादी चिन्तन के आर्विभाव के पूर्व सारतत्व को सर्वाधिक महत्व दिया। जिसके फलस्वरूप मनुष्य के अस्तित्व का महत्व नगण्य हो गया। अस्तित्ववादियो ने उनके दुराग्रह को ठुकराकर अस्तित्व का समर्थन किया जिससे दर्शन की दिशा ही बदल गई। किन्तु अस्तित्व को ही दर्शन का सर्वस्व मानकर दर्शन के अन्य पक्षो की उपेक्षा करने के कारण अस्तित्ववाद भी एकागी हो गया। इस प्रकार एक अति का खण्डन करने के लिए अस्तित्ववादी दूसरी अति के जाल मे उलझ गये और उनका चितन प्रतिक्रियावादी हो गया। इसी कारण से कुछ आलोचको ने अस्तित्ववाद को निराशावादी दर्शन कहा है।

अस्तित्ववाद के विरूद्ध एक आरोप यह है कि वे जीवन के दु खमय पक्षो को विशेष रूप से उभारते है, मृत्यु मय, सताप, घृणा आदि का अतिशयोक्तिपूर्ण रूप प्रस्तुत करके वे हमे भयभीत करना चाहते है। इस प्रकार अस्तित्ववादी जीवन के उज्जवल पक्षो की उपेक्षा करके निराशावाद की पुष्टि करते है, वे सुख, संतोष, प्रेम, सौन्दर्य आदि से सम्बन्धित जीवन के भावात्मक पक्षो का निष्पक्ष मूल्याकन नही कर पाते हैं, वास्तव में भय, संताप, अरूचि आदि सवेगों को उत्तेजित करना चाहते है, और उसे सवेगात्मक रूप में प्रस्तुत करते है, किन्तु सवेगों को उत्तेजित करना दर्शन का कार्य नहीं है। यह मनोविज्ञान का कार्य है। किन्तु अस्तित्ववाद की यह आलोचना भी एक पक्षीय है। वास्तव मे सन्त्रास, भय, अरूचि, दुरास्था, मृत्यु आदि चाहे जितनी सामान्य बाते क्यो न हो परन्तु उनसे मनुष्य का जीवन एव चिन्तन प्रभावित होता है। अत. मनुष्य उनकी उपेक्षा नही कर सकता है, किन्तु सार्त्र जैसे कुछ अस्तित्वादी मनुष्य की स्वतन्त्रता को पूर्ण मान लेते है, सार्त्र के दर्शन मे स्वतन्त्रता अराजकता का पर्याय हो जाती है, वस्तुत भय तथा दबाववश लिए गये निर्णयों को भी स्वतन्त्र संकल्प का परिणाम मानना संकल्प के स्वतन्त्रता की मूल धारणा के विरूद्ध है। किन्तु अस्तित्ववादी चिन्तन आत्मगत होते हुए भी इस अर्थ मे व्यक्तिवादी नही है जिस अर्थ मे प्रोटागोरस व्यक्तिवादी है। प्रोटागोरस के अनुसार व्यक्ति विशेष है, प्रत्येक वस्तु का मानदण्ड है इसके विपरीत अस्तित्ववादियो के आत्मगत

अनुशीलन का केन्द्र मनुष्य की अपनी व्यक्तिगत समस्याये ही नही बल्कि सम्पूर्ण समाज की समस्याये है, प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए ही नही बल्कि मानव मात्र के लिए है। इससे स्पष्ट है कि अस्तित्ववादी का स्वान्त सुखाय किया गया आत्मनिष्ठ चिन्तन परजन हिताय का विरोधी नही है। उनके इस चिन्तन मे सार्वभौमिक और उदार दृष्टि की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है, इससे सिद्ध होता है कि अस्तित्ववाद एक मानवतावादी दर्शन है। जो मनुष्य की स्वतन्त्रता का उद्घोष करता है। यदि इसे मानववादी विचारधारा की पराकाष्ठा कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

(11) प्रयोगवादी कविता पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव :

द्वितीय विश्व युद्ध एक प्रकार के विचित्र मानसिक अवसाद तथा नैराश्य का जनक सिद्ध हुआ। शान्तिवादी नीति की घोर असफलता मार्क्सवादी सिद्धान्तो की वैजयन्ती फहराने वाले जनवादी, राष्ट्र की स्वार्थ लोलुपता, स्वातन्त्रयवादी शक्तियो का पाश्विक दमन एव पराभव, और राष्ट्रसघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय विचार मच का विलोप, ये सभी ऐसे कठोर सत्य थे जो हमारे देश एव जाति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रखते हुए भी हमारी प्रबुद्ध चेतना को प्रभावित करने से न बच सके।

प्रयोगवाद सम्पूर्ण परम्पराओ के विरूद्ध विद्रोह के रूप मे नवयुग मे नवीन बोध को वाणी देने के निमित्त आविर्भूत हुआ था। इस नवोन्मेष मे शायद 'ईश्वर' पहली कैजुअल्टी बना और प्रयोगवादी कवि बहुत कुछ सार्त व नीत्शे के समान नास्तिक बन गया। यद्यपि कि अस्तित्ववादी दर्शन निष्क्रियतावादी, पराजयवादी और निराशावादी नहीं है तथापि उसमे वेदना, निस्सहायता, एवं नैराश्य को जो महत्व मिला है वह द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद व्याप्त भय एवं सत्रास से जनित है। इसी विचारधारा के प्रभाव स्वरूप व नव स्वतन्त्रता प्राप्त भारत की परिस्थितिया भी बहुत कुछ उन परिस्थितियो से साम्यता रखती थी, जो कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की थी। प्रयोगवादी कवियो पर परिस्थित साम्यता के कारण इस विचारधारा का प्रभाव अवश्य पडा।

प्रयोगवादी कविता की भॉति प्रयोगवादी दर्शन (अस्तित्ववादी दर्शन) के आदि प्रवर्तक एवं पुरोधा अज्ञेय ही है, यद्यपि तार सप्तक के पॉच कवियो गजानन माधव मुक्ति बोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे

तथा राम विलाश शर्मा मे समाजवादी दृष्टिकोण स्पष्टत दृष्टिगोचर होता है तथापि उनके काव्य का मूल स्वर व्यक्तिवादी अस्तित्ववादी दर्शन से ही अनुप्राणित रहा है। मृत्यु भय, सत्रास, निराशा, क्षण जीविता, अपने स्व के अस्तित्व की अनुभूति, और अपने जीवन के लक्ष्य (सार) की अभिलाषा उनके कविताओ मे देखी जा सकती है।

सार्त का दर्शन अपने आरम्भिक रूप मे व्यक्तिवाद से प्रभावित रहा है। सार्त्र के अनुसार दूसरा मनुष्य नरक है' और उसकी स्वतन्त्रता के लिए बाधक है। उसकी यही व्यक्तिवादिता आत्मरति व आत्मोन्मीलन की भावना मुक्ति बोध की निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है–

"मै अपने से सम्मोहित, मन मेरा डूबा निज मे ही।
मेरा ज्ञान उठा निज से, मार्ग निकाला अपने से ही।"[16]

व्यक्तिवादी विचारधारा स्वयं के बारे मे ही उत्पन्न होती है, उपर्युक्त पक्तियो मे मुक्तिबोध की वैयक्तिक अनुभूतियो की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। अस्तित्ववादी विचारधारा अपने वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति, एव अपने अस्तित्व का प्रबोध करना चाहती है। व्यक्ति का अस्तित्व कही से आरोपित नही होता है, और न ही वह जन्म लेने मात्र से ही हो जाता है। जन्म के कुछ वर्षों मे जब उसमे वैयक्तिक चेतना प्रथम बार उत्पन्न होती हैं तभी उसे अपने 'स्व' या अस्तित्व का आभास मिलता है, यह अस्तित्व व्यक्ति के अन्तर से ही उद्भाषित होता है। उपर्युक्त पंक्तियों मे सार्त्र की विचारधारा अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है प्रति ध्वनित हो रहा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के नैराश्य एव मृत्युभय के वातावरण का प्रभाव एव अस्तित्ववादी दर्शन पर इस वातावरण के प्रभाव का प्रतिफल अस्तित्ववादी विचारक के मन में हमेशा मृत्युभय एवं अस्तित्व का सकट बना रहता है। उसे स्वप्न मे भी मृत्यु दर्शन होते रहते है इसी मृत्युभय का संत्रास मुक्तिबोध की निम्न पक्तियों में देखा जा सकता है।

"मैंने मरण चिन्तना की जब जीवन का दर्द बढ चला।
मानवता का कटु आलोचक अपने को ही दण्ड दे चला।।
मेरा मन गलता निज मे जब अपने से ही हार खा चुका।
दारुण क्षोभ अग्नि मे अपना प्रायश्चित प्रसाद पा चुका।।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

रक्त स्रोत से फूटा, मेरा गात शिथिल हिम शीतल।
मैने साक्षात् मृत्यु देख ली एक रात सपने मे उज्जवल।।[17]

यही मृत्युभय, अनास्था, भय, शका, निराशा व सत्रास की भावना नेमिचन्द्र जैन की निम्न पक्तियो मे भी देखी जा सकती है–

"तुम बुझो न मेरे प्राणो की आलोक किरण
अब रूको न मेरे अन्तर की धडकन।
विश्वास गिरा जाता है, गिरता जाता है।
पर थम न जाये बढते–बढते ये बिद्ध चरण।"[18]

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व मे व्याप्त निराशा का प्रभाव अस्तित्ववादी दर्शन पर पडा, कुछ इसी प्रकार की परिस्थितिया स्वतन्त्रता के पश्चात् तत्कालीन भारत के समक्ष भी थी। इसी कारण तत्कालीन परिवेश मे अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव हिन्दी साहित्य मे पडना कोई आश्चर्य की बात नही है। प्रयोगवादी कवि नेमिचन्द्र जैन की निम्न पक्तियो मे निराशा और मनोमग्नता के दर्शन किए जा सकते है–

"किन्तु पथ–प्रदर्शक, विवश मे हार जाता है भयकर मौन से
सतत निर्वासित ह्रदय से, तिरस्कृत व्यक्तित्व के
थोथे असगत दर्प ने मन की सहज अनजान
स्वाभाविक अनावृत धार को का दिया है कुण्ठित
सहज अगारे कि मानो दब गये हो,
बुझे से जैसे कि ठठी राख से।"[19]

दूसरे सप्तक के कवियो मे अस्तित्ववादी व्यक्तिवादी विचारधारा और अधिक प्रौढ रूप मे प्रतिध्वनित हुई है। हरि नारायण व्यास वैयक्तिक चेतना को पूजीवाद की देन समझते है। तार सप्तक का व्यक्तिवाद वस्तुत 'शेखर एक जीवनी' उपन्यास के पात्र शेखर की वैयक्तिकता का ही काव्यात्मक रूप था। तार सप्तक का कवि इसीलिए कुहरे ढंके चाद मे अपने व्यक्तित्व के प्रकाश का दर्शन करता है। 'दिन का बुखार' और 'रात्रि की मृत्यु' की चेतना उसे कंटकित करने लगती है। वह घोर अन्तर्मुखी हो जाता है और उसके कठ से चीत्कारे फूट पडती है। तार सप्तक मे इन्ही चीत्कारों का प्रधान्य है।[20]

तारसप्तक के अधिकांश कवियो की काव्य दृष्टि मे साम्यवादी व मनोविश्लेषणवादी विचारधारा का आग्रह अधिक है, जबकि दूसरे सप्तक के कवि

प्राय इससे मुक्त है। दूसरे सप्तक का कवि व्यक्तिवादी विचारधारा से प्रभावित है। वह अपनी निजी अनुभूतियो को अभिव्यक्त करना चाहता है वह भी अपने वैयक्तिक ढग से स्वतन्त्र रूप से। ये व्यक्तिगत अनुभूतिया किसी और की नही बल्कि उसकी स्वय की है। जीवन, मरण, दैन्यता आदि सभी उसके अपने जाने पहचाने है, उसके अपने स्वय के अस्तित्व का भान कराते है। इन सबसे उत्पन्न नैराश्य एव अरूचि का वर्णन निम्न पक्तियो मे श्री भवानी प्रसाद मिश्र जी ने अभिव्यक्त किया है–

"केवल स्वभाव है चुनने का चाव है जीने की क्षमता है।
मरने की क्षीणता वाणी की दीनता अपनी मै चीन्हता।"[21]

अस्तित्ववादी दर्शन का मूल व्यक्ति का स्वय का अस्तित्व' है। व्यक्ति का अस्तित्व जो कुछ आज वह है, उससे पूर्व ही सिद्ध है। यह अस्तित्व बाह्यारोपित नही है, बल्कि उसके अन्तर से उद्मासित है। सार्त्र की विचारधारा 'अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है' कुछ इसी प्रकार की विचारधारा रघुवीर सहाय की निम्न पक्तियो मे व्यंजित है–

"चलते चलते जैसे लिखता है कोई कागज पर।
ऐसे हिले–डुले मेरे अन्दर से वे अक्षर निकले।"[22]

अस्तित्ववादी दर्शन का लक्ष्य निराशावाद नही है, इतना अवश्य है कि परिस्थितिजन्य निराशा एव संत्रास का वर्णन जो यह करता है उसके मूल मे इससे मुक्ति का ही भाव झलकता है। बहुत कुछ ऐसा ही आशावादी स्वर रघुवीर सहाय निम्न पंक्तियो मे देखा जा सकता है–

"क्या पश्चाताप? नही, यह मेरा ध्येय नही।
मेरे जीवन की कोई घटना हेय नही
कुछ कर न सका भी मुझे खेद नही
लेकिन अब जो करना है उसकी चिन्ता है।"[23]

सार्त अपने दर्शन मे स्वतन्त्रता और मानवता की बात करते है। स्वतन्त्रता से तात्पर्य यहा वैयक्तिक स्वतन्त्रता से है और मानवतावाद उस स्वतन्त्रता से जनित दायित्व का प्रतिफल ही है। द्वितीय विश्व युद्धोत्तर विश्व मे नव निर्माण और मानवता के उद्धार सार्त्र की विचारधारा का केन्द्रबिन्दु रहा है। इसी क्रम मे प्रयोगवादी कवि श्री हरि नारायण व्यास जी की निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है–

"इसानियत की ज्योति दो,

अब उठो कधे मिलाकर, फिर नया जीवन बसाओ

दिग–दिगन्तो मे बसन्ती वायु परिधान फैला।"[24]

सार्त की विचारधारा 'नीत्शे' की भाति ईश्वर मे आस्था नही प्रकट करती है। नीत्शे की विचारधारा 'ईश्वर मर चुका है' का अस्तित्वादी दर्शन समर्थन करता है। अस्तित्ववादी ईश्वर का खण्डन तर्क के आधार पर न करके बल्कि अनुभव के आधार पर करता है। प्रयोगवादी कवि भारत भूषण अग्रवाल की निम्न पक्तियो मे इश्वर के प्रति इसी अनास्था के भाव व्यजित हो रहे है।

"कौन सा पथ? मार्ग मे आकुल अधीरातुर बटोही ने पुकारा।

कौन सा पथ है? महाजन जिस ओर जाये, शास्त्र हुकारा

अन्तरात्मा ले चले जिस ओर, बोला न्याय पण्डित,

साथ आओ सर्व साधारण जनो के क्रान्तिवाणी।

पर महाजन मार्ग गमनोचित न रथ है।

अन्तरात्मा अनिश्चय सशय ग्रसित क्रान्तिगति,

अनुसरण योग्या है, न पद सामर्थ्य कौन सा पथ है?"[25]

ईश्वर के प्रति अनास्था एव अनिश्चय की स्थिति एव व्यक्तिवादिता का आग्रह इन पंक्तियो मे देखा जा सकता है।

सार्त का अस्तित्ववाद अपने अन्तिम समय मे साम्यवाद की तरफ झुक गया। जीवन के संकीर्ण व्यक्तिवादी नैराश्य और कुण्ठा को त्यागकर मार्क्सवादी क्रान्ति चेतना से प्रभावित होकर वह इन समस्याओ से हार नही मानने वाला है, उस आक्रोश और आशा का स्वर जो कि निराशा के बीच से फूटा है, उसी जिजीविषा का वर्णन प्रयोगवादी कवि नेमिचन्द्र जैन की निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है–

"किन्तु मै हारा नही हूँ, फड फडाती है अभी बाहें।

कि अपने मार्ग के सारे अवरोध तोड दूँ।

फेफडों मे रक्त बहता है अभी इतना कि कस लूँ

उस बिखरती अथिर छलनामयी को।"[26]

प्रयोगवाद के प्रणेता अज्ञेय मे अस्तित्ववादी दर्शन विशेषतः सार्त्र के प्रभाव स्वरूप व्यक्तिगत चेतना (अहं) और वर्गगत चेतना (समूह) से सम्बद्ध अन्तर्द्वन्द्व को देखा जा सकता है।

"ठहर, ठहर, आततीय! जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा।
रागातीत, दर्प स्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले।
क्षण भर स्थिर खडा रह ले
मेरे दृढ पौरुष की एक चोट सह ले।
नूतन प्रचडतर स्वर से आततायी आज तुझको पुकार रहा मै।
रणोद्यत दुर्निवार ललकार रहा मै
कौन हूँ मै?
तेरा दीन दुखी पद दलित पराजित
आज जो कि क्रुद्ध सर्व से अतीत को जगा।
'मै' से 'हम' हो गया। 'मै के झूठे अहकार ने हराया मुझे,
किन्तु आज मेरे इन बाहुओ मे शक्ति है,
मेरे इस पागल हृदय मे भरी भक्ति है।"[27]

'मै' की व्यक्तिगत चेतना समूहगत चेतना में परिणत हो गई। यहा पर सार्त्र का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। प्रारम्भ मे सार्त्र की विचारधारा किर्केगार्ड, जा स्पर्स, व हाइडेगर की भांति व्यक्तिवादी रही बाद की उनकी विचारधारा समूहगत चेतना से अनुप्राणित हो गयी और वे अस्तित्ववाद को साम्यवादी/मार्क्सवादी दर्शन की एक शाखा मात्र मानने लगे। सार रूप मे यही कहा जा सकता है कि हिन्दी प्रयोगवादी कविता पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव अवश्य पडा है, लेकिन उतना प्रभाव नहीं है जितना कि नयी कविता पर पडा है।

(iii) प्रयोगवादी कविता पर मनोविश्लेषणवादी दर्शन का प्रभाव

बीसवी शताब्दी के आरम्भिक चरण मे ही फ्रायड की खोजो ने प्रेम और यौन के सह सम्बन्ध को अनावृत्त करते हुए यह प्रमाणित कर दिया कि भोज्य पदार्थों की भूख की भांति प्रेम भी एक प्रकार की भूख है जिसका कामेषणा से गहरा सम्बन्ध है। रोजमर्रा की भाषा मे 'भूख' शब्द का कोई समानार्थी नही है परन्तु विज्ञान मे इसके लिए **'लिबडो'** शब्द का प्रयोग होता है।[28] उन्होंने यह नवीन स्थापना प्रस्तुत की कि रत्यात्मक उत्तेजना उत्पन्न करने वाली मूलभूत प्रक्रिया सदैव एक ही होती है। उनके अनुसार नेपोलियन की प्रसिद्ध उक्ति में

किंचित परिवर्तन करते हुए कहा जा सकता है कि शरीर ही मन्तव्य है। उन्होने यह तर्क दिया कि क्यो कि जननेन्द्रियॉ अभी भी अपने पाश्विक रूप मे है अत आज भी प्रेम अपने बुनियादी रूप मे उतना ही पाश्विक है जितना पहले था।'[29]

परवर्ती मनोवैज्ञानिको ने पाश्विकता की इस अतिवादी स्वीकृति का परिहार करते हुए यह स्थापित किया कि कामेषण और प्रेम प्रकृत· पूर्ण रूप से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे पर आश्रित और पूरक है।[30]

इन मनोवैज्ञानिक खोजो और स्थापनाओ का प्रयोगवाद व नयी कविता पर व्यापक रूप से प्रभाव पडा। छायावादी काव्य मे प्रेम के साथ जो वायवीय धारणा जुड गई थी वह क्रमश धूमिल होने लगी। नये कवियो ने मुक्त रूप से स्वीकार किया कि उनकी कविता का अधिकाश भाग यौन से प्रेरित है। यह प्रेरणा फ्रायड के यौन दर्शन से ही प्राप्त हुई थी। प्रयोगवाद के प्रणेता स्वय अज्ञेय ने मुक्त कठ के यह स्वीकार किया कि "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन–वर्जनाओ का पुज है।" आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओ से लदा हुआ है और वे परिकल्पनायें सदा दमित और कुठित है। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे अक्रान्त है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते है।"[31] यही कारण है कि प्रगतिवादी आलोचको ने इस प्रवृत्ति को अस्वस्थ प्रवृत्ति के रूप मे देखा–मनोविश्लेषण शास्त्र का प्रयोगवादी कवियो पर बुरा प्रभाव यह पडा कि उन्होने जान–बूझकर अपनी सूझ के बल पर कविता में यौन प्रतीको का प्रयोग आरम्भ किया। यद्यपि यह प्रवृत्ति आगे विकसित नही हुई। छायावादी आदर्शवाद और द्विवेदी युगीन स्थूल नैतिकता के विरूद्ध परवर्ती कवियो के मन मे जो प्रतिक्रिया हुई उसकी अभिव्यक्ति प्रकृतिवादी यौन चित्रणो के रूप मे होने लगी और प्रयोगवादी कवियों को फ्रायड से सैद्धान्तिक सहारा भी मिल गया।[32]

यद्यपि डॉ0 शम्भू नाथ सिह प्रयोगवाद को छायावादी काव्य का विलोम काव्य मानते है तथापि प्रयोगवादी कविता में कुछ छायावादी अथवा उत्तर छायावादी रोमानियत शेष रह गई थी। जिसकी अभिव्यक्ति एकाधिक रूपो में हुई है। इस सन्दर्भ मे सर्वाधिक चर्चित कवि 'चंदरिमा के कवि' गिरजा कुमार माथुर है। चौथे दशक के आस–पास सम्बन्धो में आ रही कटुता तथा मृदुता और कटुता के सम्मिलन का यह और ऐसी अन्य कविताए परिचय देने में नितान्त असमर्थ होते हुए भी अत्यन्त रूमानी स्त्री का बिम्ब विकसित करती है–

"जीवन मे फिर लौटी मिठास
है गीत की आखिरी मीठी लकीर सी।
प्यार भी डूबेगा गोरी सी बाहो मे ओठो मे ऑखो मे।
फूलो मे डूबे ज्यो फूल की रेशमी–रेशमी बाहे
आज है केसर रगे वन।"[33]

यहा पर यौन भावो का चित्रण उत्तर छायावादी सस्कारो से प्रभावित रोमानियत परिवेश ग्रहण किए हुए है। यह प्रयोगवाद पर मनोविश्लेषणवाद के प्रभाव का प्रारम्भिक चरण कहा जा सकता है।

नेमिचन्द्र जैन की कविता मे भी चादनी के प्रति विशेष लगाव दृष्टिगत होता है, उन्हे चादनी रात अश्लेष मे साई हुई प्रेमिका का स्मरण कराती है–

"चॉदनी रात है चुप चाप समर्पित मोहित,
अचल दिगन्त के आश्लेष मे सोयी
खोयी अबूझ स्वप्न मे जैसे तुम ही कभी,
चुप चाप अनायास मेरी गोद मे
सो जाती हो . ... चॉदनी रात ओ।"[34]

लेकिन रोमानी आवरण लिए यह यौन भावनाये दमित व कुंठित होने लगी फलत प्रयोगवादी कविता ने पहली बार यथार्थ को उसकी पूरी कटुता के साथ, बिना किसी पलायन सुरग को अपनाये, झेला। इन कवियो से रोमानी स्वप्नों का नाता बिल्कुल टूट गया। स्थितिया अब इतनी इकहरी नहीं रह गई थी कि प्रयोगवादी कवि सारी परिस्थितियो से मुँह मोडकर बन्द शयनगार का हल चुन सकता। परन्तु इसके साथ ही अभी समाज उतना आगे नहीं बढा था कि यौन भावनाओ की र्निव्याज्य अभिव्यक्ति को छूट दे देता। इन संघर्षों से घिरकर उसकी सहज वासना। कुठित हो गई। स्वय अज्ञेय मे प्रयोगवादी कवियों की इस विषम अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है– "कवि के लिए इस परिस्थिति मे और भी कठिनाइयां है– एक मार्ग यौन स्वप्न दृष्टि का दिवास्वप्नो का है, उसे वह नही अपनाना चाहता। फिर वह क्या करे यथार्थ दर्शन केवल कुठा उत्पन करता है। वास्तव मे वीभत्सता की कसौटी पर चादनी खोटी दीखती है, कवि अपनी काव्य परम्परा का मूल्याकन करता है और चारण काल से लेकर छायावाद तक की कविता को तात्कालिक परिस्थिति अथवा जीवन प्रणाली पर घटित करके समझ लेता, किन्तु फिर भी आज के जीवन के दबाव की

अभिव्यजना का मार्ग उसे नही दीखता। कयोकि आज उसकी अनुभूतिया तीव्रतर है तो वर्जनाए भी कठोरतर है, परिणाम है व्यजना भीरू नेत्रो का विस्फार, जो अश्लील, इसलिए है कि भावनाओ और वर्जनाओ के सघर्ष को सहसा सामने ले आता है।"[35] इस दृष्टि से अज्ञेय की इत्यलम कालीन दो कविताएँ, 'प्रतीक्षा' और देख क्षितिज मे भरा चॉद दृष्टव्य है। दूसरी कविता मे कवि चाद के प्रति दमित वासना की अभिव्यक्ति करता है—

"देख क्षितिज पर भरा चाद मन उमगा, मैने भुजा बढायी।
हम दोनों के अन्तराल मे कभी नही कुछ दी दिखलाई।"[36]

वाह्य वर्जनाओ से प्रभावित होकर चेतन स्तर पर वासना की अभिव्यक्ति प्रतिहत अवश्य हो गई, किन्तु अवचेतन मे वे सभी इच्छाये वर्तमान रही जिन्होने यौन प्रतीको के अधिक्य को जन्म दिया। अज्ञेय ने स्वय स्वीकार किया कि—"आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओ का पुज है। उसके उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते है।"[37] इस प्रकार की प्रतीक योजना के उदाहरण के रूप मे प्राय अज्ञेय की कविता 'सावन मेघ' उधृत की जा सकती है—

"घिर गया नभ, उमड आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजो पर झुका सा।
विसद, श्वासाहत, चिरातुर छा गया
इन्द्र का नील वक्ष, वज्र सा,
यदि तडित से झुलसा हुआ सा।"[38]

वस्तुत इस कविता मे इस कामना का इतना अतिरेक हो गया है कि कुछ ही आगे चलकर कवि प्रतीक शैली को तिलांजलि देकर अभिधा को अपना लेता है—

"आह, मेरा श्वास है उत्तप्त,
धमनियों मे उमड रही लहू की धार।
प्यार है अभिशप्त तुम कहा हो नारि।"[39]

प्रयोगवाद मे मनोविश्लेषण दर्शन के प्रभाव का यह द्वितीय चरण का जिसमे कवि अभिधात्मक शैली को ग्रहण करके प्रतीक शैली व रोमानी परिवेश को त्याग देता है। ऐसे अभिधात्मक स्थलो पर कहीं—कहीं इस वासना का

स्वरूप अत्यन्त स्वार्थपूर्ण और परम्परागत हो जाता है प्रेम सम्बन्ध मे पुरूष स्त्री का साथी न होकर शाशक प्रतीत होने लगता है।

"तुम हॅसो, कह दो कि अब उत्सग वर्जित है
छोड दूॅ कैसे भला मै जो अभीप्सित है?
कोषवत्, सिमटी रहे यह चाहती नारी
खोल देने लूटने का पुरूष अधिकारी।
+ + + + + +
दूर रहने की ह्रदय मे ठानती क्या हो?
तुम पुरूष की वासना को जानती क्या हो?"[40]

क्रमश प्रतीक और भिधा शैली के बीच झूलते रहने का एक कारण, प्रेम और यौन भावनाओ के विषय मे इन कवियो की निजी धारणा भी थी। गद्य मे दमित वासना की अवधारणा को स्वीकार करते हुए भी अज्ञेय कविता में उसका निषेध करते है। हरी घास पर क्षण भर का वाचक कहता है–

"आओ बैठो क्षण भर तुम्हें निहारूॅ।
अपनी जानी एक एक रेखा पहचानूॅ
चेहरे की ऑखो की अन्तर्मन की,
और हमारी साझे की अनगिनत स्मृतियो की :
तुम्हे निहारूॅ। झिझकन हो कि निरखना
दबी वासना की विकृति है।"[41]

यह वही दमित यौन–भावना व वासना है जो कि मनोविश्लेषण दर्शन का आधार स्तम्भ है। प्रयोगवादी कविता ने युगो से चले आ रहे प्रेम सम्बन्धी इस मिथक को अनावृत्त कर दिया कि प्रेम केवल भावजन्य होता है। गिरजा कुमार माथुर ने इस तथ्य को सपाट ढग से अभिव्यक्ति किया है।

"मैं इन सारी बातो को हूॅ खूब समझता
बडे–बडे इस प्रणय काल के आदर्शों को
पर मुझको है पाता कि बिछुडन की इन तीखी पीडाओ मे।
ऊॅचे–ऊॅचे आदर्शों की इन बातो मे छिपा हुआ है भेद कौन सा।
तुम इस जीवन का निचोड जिसको कहते हो
वह सारा वेदान्त फल सफा,
काव्य कला की मधुर कल्पना केवल शारीरिक है।"[42]

अज्ञेय ने साप के चिरपरिचित काम प्रतीक का चुनाव करके प्रेम और वासना के अनिवार्य सम्बन्ध को उद्घाटित ही नही किया है, अपितु वासना की महत्व स्थापना भी की है–

> "वासना को बाधने को तूमडी जो स्वर–तार बिछाती है।
> आह! उसी मे कैसी एकान्त निविड वासना थर थराती है।
> तभी तो साप की कुडली हिलती नही फन डोलता है।"[43]

यहा क्रमश तूमडी का स्वर तार–तार बिछाना प्रेम का भावात्मक पक्ष है। जो प्रयास करने पर भी 'सॉप की कुडली' अर्थात् वासना को विचलित नही कर पाता।

प्रेम और यौन को सम्बद्ध करके प्रयोगवादी कवियो ने किसी अपराध बोध का अनुभव नही किया अपितु उसे जीवनदायिनी शक्ति के रूप मे स्वीकार किया–

> "वह आयेगी–
> मेरा ढाप लेगी नग अपनी देह से।
> बहते स्नेह से, अभी सूखी रेत हूँ ,
> पर हो जाऊँगा हरा, गति जीवित, भरा।"[44]

प्रयोगवादी कवियो ने यौन भावना से जुडी किसी भी प्रवचना को अस्वीकार करने का प्रण ले लिया और 'प्यास' और सिक्त दोनों को सहज रूप से स्वीकार किया। उसने इस यौन पिपासा को न तो गर्हित समझा और न ही इसका उदात्तीकरण करने का प्रयास किया –

> "पल भर ही सही, सिक्त जिस कण ने
> निर्मल समर्पण के जिस विविक्त क्षण ने
> अभी मुझे छुआ उसे क्यों झुठलाऊँ
> प्यास के जलते इस कठ मे।
> जो हलचल मची है उसे क्यो दबाऊँ।"[45]

यहा यह उल्लेखनीय है कि फ्रायड से प्रभावित जिस प्रकृतवाद की चर्चा डॉ0 शम्भूनाथ सिंह ने केवल प्रयोगवाद के सन्दर्भ मे की है उससे प्रगतिवादी भी मुक्त नही थे। एक कवि का आत्म स्वीकार दृष्टव्य है– "आज के समुन्नत मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण शास्त्र ने उसे यह भी अनुभव कराया कि स्वयं अपने ऊपर उसका कितना कम अधिकार है। स्वय अपने भीतर की अचेतन या

अर्ध चेतन वृत्तियो ने उसे कितना विवश कर रखा है।"[46] कुछ कवियो ने बुद्धि के स्तर पर प्राप्त किये गये ज्ञान को नैतिक स्खलन के रूप मे देखा है—

"अहकार के साथ बुद्धि की जबसे हुई सगाई।
हीन विवेक हुआ मानव—मन नैतिकता बिसराई।"[47]

केवल इतना ही नही अपितु यह भी देखा गया है कि प्रगतिवादी कविता मे स्त्री शोषण की समस्या पर विचार करते हुए कुछ कवियो ने केवल उसके काम जीवन पर ही दृष्टि केन्द्रित रखी। यह प्रवृत्ति विशेषत. अचल मे पाई जाती है, जो आलोचक की दृष्टि से बच नही पायी प्रगतिवाद के नाम पर पैदा होने वाले साहित्य मे अश्लीलता और उच्छृंखलता का कही आभास मिलता है तो उसका एक कारण है कि आधुनिक साहित्य पर दो भिन्न विचारधाराओ ने प्रभाव डाला है, जिनका जीवन के प्रति दृष्टिकोण एकदम विरोधी है। यह मार्क्स और फ्रायड की विचारधाराओ का प्रभाव है। फ्रायड की विचारधारा जो लेखक उसके प्रभावित हुए उन्होने अनियन्त्रित सेक्स, तृष्णा, प्यास, और वासना के गीत गाने शुरू किए। इस सारे दृष्टिकोण पर फ्रायड के प्रभाव की छाया है जो अभी तक एक दम नष्ट नही हो पायी है।[48] वस्तुत इस कविताधारा ने प्रेम के सम्बन्ध मे यौन को सर्वाधिक मुक्त रूप मे स्वीकार किया, जहां एक ओर प्रगतिवादी कविता में सामाजिक प्रतिबद्धता थी वही प्रयोगवादी कविता पर आधुनिकता का दबाव था, जिस कारण से फ्रायड के मनोविश्लेषण दर्शन का स्पष्ट प्रभाव प्रयोगवाद में देखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 अज्ञेय–तार सप्तक नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–627 से उद्धृत।

2 डॉ० देवराज प्रयोगवादी कवि एक चेतावनी, नयी कविता प्रथम अक, राजनाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–643 से उद्धृत।

3 अज्ञेय तार सप्तक।

4 अज्ञेय तार सप्तक, पृष्ठ–272।

5 डॉ० मोहन अवस्थी हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, पृष्ठ–310।

6 अज्ञेय–तार सप्तक डॉ० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

7 अज्ञेय नगेन्द्र वही, पृष्ठ–628।

8 केसरी कुमार सांझ कविता से उद्धृत।

9 अज्ञेय उडचन हारिल कविता से उद्धृत।

10 अज्ञेय।

11 मुक्ति बोध अन्तर्दर्शन (तारसप्तक) कविता से उद्धृत।

12 अज्ञेय सर्जना के क्षण कविता से उद्धृत।

13 नलिन विलोचन शर्मा।

14 वही पृष्ठ–635।

15 अज्ञेय तार सप्तक . डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–309।

16 मुक्तिबोध 'अन्तर्दर्शन तारसप्तक पृ० 18।

17 वही।

18 नेमिचन्द्र जैन 'नये पत्ते' (पत्रिका) 1953 – डॉ० शम्भूनाथ सिह प्रयोगवाद और नयी कविता पृ० 70 से उद्धृत।

19 नेमिचन्द्र जैन : 'व्यर्थ' शीर्षक कविता – तार सप्तक पृ० 30।

20 दूसरा सप्तक भूमिका पृ० 58–59 रमाशकर तिवारी – प्रयोगवादी काव्यधारा तथोक्ति नयी कविता) पृ० 73 से उद्धृत।

21 भवानी प्रसाद मिश्र वाणी की दीनता दूसरा सप्तक पृ० 28–29।

22 रघुवीर सहाय : दूसरा सप्तक पृ० 164–65।

23 वही पृ० 162–63।

24 हरिनरायण व्यास शिशिरान्त, दूसरा सप्तक पृ० 77।

25 भारतभूषण अग्रवाल तार सप्तक डॉ० शम्भूनाथ सिह प्रयोगवाद और नयी कविता पृ० 78 से उद्धृत।

26 नेमिचन्द्र जैन 'व्यर्थ' शीर्षक कविता पृ० 69 ।

27 कुमार शर्मा प्रयोगवाद और मुक्तिबोध, पृ० 33 से उद्धृत।

28- Sigmund freud - Complete Psychological works - Valume VII P 155 – नयी कविता मे प्रेम सम्बन्ध डॉ० सुषमा भटनागर, पृ० 182 से उद्धृत।

29 Sigmund freud Callected papers - Vol iv, P 215 से अनूदित।

30 "Altho totaly different in nature, sexual impulse and love are dependent on and complementary to each other" — Oswald Sehwarz — The psychology of Sex P 21

31 अज्ञेय तार सप्तक, पृ० 272

32 डॉ० शम्भू नाथ सिंह – प्रयोगवाद और नयी कविता पृ० 126।

33 गिरजा कुमार माथुर तार सप्तक पृ० 169।

34 नेमिचन्द्र जैन : एकान्त पृ० 60।

35 अज्ञेय तार सप्तक – वक्तव्य पृ० 273।

36 अज्ञेय पूर्वा, तार सप्तक पृ० 192।

37 अज्ञेय पूर्वा तार सप्तक पृ० 272।

38 वही पृ० 276।

39 अज्ञेय तार सप्तक पृ० 276।

40 अज्ञेय 'चिन्ता' पृ० 44–45।

41 अज्ञेय पूर्वा पृ० 249।

42 गिरजा कुमार माथुर धूप के धान, पृ० 23।

43 अज्ञेय आगन के पार द्वार, पृ० 30।

44 अज्ञेय पूर्वा, पृ० 183।

45 भारतभूषण अग्रवाल : अनुपस्थित लोग, पृ० 44।

46 अचल किरण–बेला, 'मैं अब तक' पृ० (क) ।

47 नरेन्द्र शर्मा हंसमाला, पृ० 20।

48. शिवदान सिह चौहान हस – अप्रैल, सन् 1942, पृ० 641–42।

चतुर्थ–अध्याय

नयी कविता

नयी कविता

(अ) नयी कविता एवं उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

छायावादोत्तर हिन्दी कविता साहित्य मे स्वतन्त्रता के बाद रचित उन कविताओ को नयी कविता की सज्ञा दी गई जिनमे परम्परागनुगत मूल्यो भाव बोधो, एव शिल्प आदि से आगे बढते हुए नवीन भाव बोधो शिल्प विधानो एव मूल्यो का अन्वेषण किया गया है। हिन्दी कविता साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर यदि दृष्टि डाला जाये तो हमे प्रत्येक युग मे अपने पूर्ववर्ती धाराओ या वादो की तुलना मे नित नवीनता की एक परम्परा गतिमान रही है। नयी कविता स्वतन्त्रता के बाद लिखी गई उन कविताओ के लिए चल पडा जिसकी वस्तु छवि एव रूप छवि दोनो अपने पूर्ववर्ती प्रगतिवाद एव प्रयोगवाद से विकसित होने के बाद भी अपने आप मे विशिष्ट है। इस काल मे प्रगति, प्रयोग, तथा परम्परा सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के काव्य का सृजन होता रहा है। विभिन्न प्रभावो से समन्वित इस युग की काव्यधारा व्यक्ति और समाज के विभिन्न क्षेत्रो को स्पर्श करती हुई आगे बढती रही है। दूसरे सप्तक के बाद सन् 1954 मे जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित नयी कविता नामक एक कविता सग्रह प्रकाश में आई। नयी कविता के कुल आठ अक ही अभी तक निकले हैं और प्रत्येक अक मे इसके समर्थन मे बहुत सी बाते कही गई जो कि पूर्णत कसौटी पर खरी नहीं साबित होती है। यह युग काव्य क्षेत्र मे विस्तार का युग रहा है उसमे जितना विस्तार रहा है उसकी तुलना मे गहराई और कला सौन्दर्य कम आ पाया है। इस युग के काव्य विवेचन से पहले उन परिस्थितियो के बारे मे जानना आवश्यक हो जाता है जो इस काव्य के मूल मे रही हैं।

देश के स्वतन्त्र होने पर यहा ऐसी परिस्थितियां पैदा हुई जिसने दो प्रकार की प्रवृत्तियो को जन्म दिया। एक आशावादी और दूसरी निराशावादी। आरम्भ मे वातावरण में एक उन्मत्त उल्लास के स्वर मुखरित हुए, सभी ने एक स्वर से इस नये उल्लास का उद्घोष किया, परन्तु देश के विभाजन ने जो एक अराजकता, हताशा, विध्वस और सामूहिक हत्याओ का दौर आरम्भ कर दिया था। उससे यह उल्लास की भावना दब गई। इसके उपरान्त देश के नये शासको ने जो रूप अपनाया उससे जन सामान्य का रहा सहा उल्लास भी

समाप्त हो गया। प्रेमचन्द्र के शब्दो मे कहे तो शासन की गद्दी पर गोरे साहब की जगह काला साहब आ बैठा था, पुरानी नौकरशाही कायम रही, शासन की नीति और प्रवृत्ति मे कोई मूलभूत क्रान्तिकारी परिवर्तन नही हुआ। नयी–नयी योजनाओ के नाम पर नये–नये कर लगाये गये। राजनीतिक क्षेत्र मे समाजवादी विचारधारा के समर्थको की उपेक्षा होने लगी फलस्वरूप सन् 1948 मे समाजवादी दल काग्रेस से अलग हो गया। आजाद भारत मे अपनी आशाओं को धूमिल होते देख युवक वर्ग निराश एव विद्रोही हो उठा। उसने परम्परा और सामाजिकता के विरूद्ध उच्श्रृखल लक्ष्यहीन, एव असतुलित विद्रोह आरम्भ कर दिया।

इन आन्तरिक परिस्थितियो के अतिरिक्त प्रसिद्ध अग्रेज कवि टी०एस० इलियट के काव्य का भी प्रभाव नयी कविता पर देखा जा सकता है। इसका स्वर विशुद्ध रूपेण घोर व्यक्तिवादी स्वर था। हमारा इस युग का यह काव्य उपर्युक्त आन्तरिक एव बाह्य परिस्थितियो से प्रभाव ग्रहण करते हुए आगे बढा है। 'प्रयोग' शब्द पर आक्षेप ने तथा मुक्ति बोध, गिरजा कुमार माथुर, नरेश मेहता नेमिचन्द्र जैन आदि द्वारा प्रगतिशील वस्तु तथा प्रयोगशील शिल्प के प्रयोग ने युग की मांग के अनुरूप समन्वय स्थापित किया। यह समन्वय ही स्वस्थ काव्य दिशा का सही निर्देशक बनकर नयी कविता के रूप में हिन्दी साहित्य मे सामने आया।

मुक्तिबोध ने कहा है कि नयी कविता वैविध्य मय जीवन के प्रति आत्म चेतन व्यक्ति की प्रतिक्रिया है, नयी कविता का स्वर एक नही विविध है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि नयी कविता में जीवन का कोई भी विषय अकाव्योचित नही माना जाता। उसमे मानव जीवन के यथार्थ को उकेरने का सीधा प्रयत्न प्रबल आग्रह के साथ हुआ है। अशोक बाजपेयी कहते है, संभवत नयी कविता के पहले कभी मानवीय सम्बन्धो को इतना गौरव नही मिला था, और न ही उसमे निहित करुणा, तनाव, अकेलापन, आतक सुख और अहलाद सक्षेप मे मानवीय सम्बन्धो की ट्रैजडी और कामेडी, दोनों ही इतने सीधे ढग से काव्य मे अवतरित हुए थे, जितने की नयी कविता मे हुए हैं। स्पष्ट है कि नयी कविता अपने समय सन्दर्भों में मानवीय उपस्थिति और लगाव की कविता है। वह बहुआयामी जीवन की सच्चाइयो को बिना लाग लपेट के रूपायित करती है। वह मताग्रही या मतवादी दृष्टिकोण को भी कायल नही। उसमे छायावादी

कल्पनाशीलता का नामोनिशान भी ढूढना भी कठिन है। दरअसल वह जीवन की बहुपक्षीय अनुभूतियो को कलम बन्द करने की एक जटिल यथार्थवादी प्रक्रिया है।

नयी कविता का सारा दृष्टिकोण आधुनिक है। आधुनिक दृष्टिकोण का अर्थ नये मूल्यो के लिए विकलता, और सवेदना से है। इसी दृष्टिकोण के तहत नया कवि आज के तनावो, सार्वभौम सकट, मनुष्य की पीडा एव उसकी नगण्यता तथा गरिमा से जुडता है, और इस सम्पृक्ति के दबाव मे अभिव्यक्ति एव सम्प्रेषण के माध्यमो को पुनराविष्कृत करता है। यह दृष्टिकोण अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल जैसे प्रौढता प्राप्त कवियो के पास भी है और केदारनाथ सिह, श्रीकान्त वर्मा, धूमिल, कुवर नारायण, राजकमल चौधरी, विजय देव नारायण साही, लीलाधर जगूडी, जैसे नये कवियो के पास भी।

नयी कविता मे किसी एक मतवाद का आग्रह नही है। यही कारण है कि उसके कुछ कवि गॉधीवादी है, कुछ अस्तित्ववादी, कुछ मार्क्सवादी, और कुछ अतियथार्थवादी। कुछ का स्वर राजनीति से प्रभावित है, तो कुछ का देह नीति से।

नयी कविता आधुनिक सवेदना के साथ मानवीय परिवेश के सम्पूर्ण वैविध्य को नये शिल्प मे अभिव्यक्त करने वाली हिन्दी की नवीनतम काव्यधारा है। प्रयोग एव सिद्धान्त के स्तर पर उसका सम्बन्ध प्रगतिवाद से भी है और प्रयोगवाद से भी। यहां कवि वादो की सीमाओं को लाघ कर कला और जीवन के क्षेत्र मे कुछ नया रचने के लिए उत्सुक नजर आते हैं। उनमें मनुष्य के बाहर भीतर के सघर्ष एव उससे उत्पन्न सच्चाइयों को वाणी देने की आतुरता है। इस प्रकार नयी कविता की सबसे बडी विशेषता है–कथ्य की व्यापकता।

इसका कारण है कि वह कोई वाद नही है, बल्कि व्यापक जीवन दृष्टि है। कथ्य कहॉ नही है? प्रगतिवाद और प्रयोगवाद ने कथ्यों को बांट लिया था किन्तु नयी कविता ने मानव को उसके समग्र परिवेश में सही रूप मे अंकित करना चाहा है। नयी कविता की दृष्टि मानवतावादी है, किन्तु यह मानवतावाद मिथ्या आदर्शों की परिकल्पनाओ पर आधारित नही है। यथार्थ की तीखी चेतना, परिवेश से जुडाव, चिन्तन एवं सवेदना के उलझे हुए अनेकानेक स्तर उसके

आधार है। इसने छोटे–बडे का भेद नही रखा छोटी–बडी अनुभूतियो, व्यक्तित्वो और क्षणो का बनावटी अन्तर नही स्थापित किया।

नयी कविता मे अनगिनत नये मानव सम्बन्धो को खोजा और चरित्रार्थ किया गया। इस सिलसिले मे अज्ञेय अभिजात्य सस्कार एव बोध वाले अकेलेपन के कवि है। मुक्तिबोध मे एक गहन निजी सघर्ष हमारे समय के राजनैतिक सामाजिक वैषम्य के साथ अनिवार्य रूप से जुड जाता है। रघुवीर सहाय पहले तो जीने के कर्म को उद्घाटित करते है और बाद मे समकालीन राजनीति से सीधे जुडते है। उनकी दृष्टि मे कविता हर दिन मनुष्य से एक दर्जा नीचे रहने के कर्म का बखान है। श्रीकात वर्मा का काव्य ससार एक तरह का आधुनिक नरक है, जहा किसी के न होने से कुछ नही होता केदारनाथ सिह की अपनी बच्ची के लिए एक नाम', रघुवीर सहाय की 'शक्ति दो पिता' सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'अपनी बिटिया के लिए दो कविताएँ' विजय देव नारायण साही की 'एक अर्धविस्मृत मित्र के नाम' और 'अलविदा' धूमिल की मोची राम' नागार्जुन की 'आकाल के बाद' इत्यादि कविताए ऐसी है जिनमे जाने पहचाने सम्बन्धो को उनकी पूरी जटिलताओ में चरित्रार्थ किया गया है। यह कहना निराधार नही होगा कि नयी कविता मे पहली बार मनुष्य पर पडने वाले दबावो एव मानसिक तनावो को इतने व्यापक स्तर पर पहचानने का प्रयास किया गया है।

(i) क्षणवाद/लघुमानववाद/द्वन्द्ध एवं तनाव :

नयी कविता की जीवन के प्रति गहरी आस्था है। जीवन के प्रति आस्था का अर्थ है जीवन के सम्पूर्ण उपभोग में अगाध विश्वास। आज की क्षणवादी और लघुमानववादी दृष्टि जीवन के मूल्यो के प्रति नकारात्मक नही, स्वीकारात्मक दृष्टि है। मनोविज्ञान द्वारा उद्घाटित सत्यो ने यह प्रमाणित किया है कि हम क्षणो मे जीते हैं। जो व्यक्ति इन क्षणो को जितनी ही सच्चाई से अनुभूत बनाकर जिएगा, वह उतना ही सम्पूर्ण जीवन जिएगा। क्षणों को सत्य मान लेने का अर्थ है जीवन की एक–एक अनुभूति को, एक–एक व्यथा को, एक–एक सुख को सत्य मानकर जीवन को उसके वास्तव रूप मे स्वीकारना।

नयी कविता में लघु मानव का अर्थ क्षुद्र मानव नहीं है। जो पाप या घृणा या असुन्दरता की मूर्ति हो। लघु मानव का अर्थ है वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी सवेदना, भूख–प्यास, और मानसिक आंच को लिए–दिए उपेक्षित

था। उसका लघु मानव किसी दर्शन, सम्प्रदाय या राजनीतिक दल के प्रति प्रतिबद्ध नही है। उसकी प्रतिबद्धता सहज मानवीय सवेदना के प्रति है या उन सभी वर्गों के लिए है जो जीवन के दर्दों के प्रति ईमानदार है, जो उधार का नही अपना जीवन जीते है। यह लघु मानव हर स्थिति मे अपने अह का पोषक और रक्षक है। यह लघु मानव अपने लघुता मे ही महान है।

"एक महान फलक पर अकेला एक बिन्दु
समूचे शून्य को अपने अस्तित्व मे सजोता
अपनी लघुता से फलक का विस्तार प्रेषित करता
+ + + + + +
सम्पूर्ण व्याप्ति का साक्षी पर अपने मे पूर्ण।" — ***लक्ष्मीकान्त वर्मा***

अज्ञेय ने भी लघुता को साहस एव अह से दीप्त बताया है।

"यह दीप अकेला स्नेह भरा है गर्व भरा मदमाता
पर इसको भी पक्ति दे दो
+ + + + + +
यह वह विश्वास नही जो अपनी लघुता मे भी कापा।" — *अज्ञेय*

लघुमानव द्वारा एक क्षण को जीने और भोगने की मजबूरी ही उसके लिए द्वन्द्व और तनाव का ससार रचती है। नयी कविता द्वन्द्व और तनाव को भी काव्य मूल्य की तरह उपस्थित करती है। एक अटका हुआ आसू' और 'पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता" शमशेर की काव्यानुभूति के तनाव के प्रतीक है। तनाव की दृष्टि से 'माया दर्पण' के कवि श्री कान्त वर्मा और 'आत्म हत्या के विरूद्ध' के कवि रघुवीर सहाय की कविताए उल्लेखनीय है। 'मायादर्पण' की आखिरी कविता की आखिरी पक्तियां हैं–

'तुम जाओ अपने वहिश्त मे,
मै जाता हूँ, अपने जहन्नुम मे।"[1]

स्वर्ग के मुकाबले अपने नरक मे जाने की चाह वैराग्य या निर्वेद की मनःस्थिति नही है। 'एक अधेड भारतीय आत्मा' मे रघुवीर सहाय 'कहने' और 'फिर भी कुछ न होने' के तनाव को व्यंजित करते हैं–

'कल फिर मैं एक बात कहकर बैठ जाऊँगा।[2]

कोई सुने या न सुने लेकिन अपनी बात कहने का हौंसला मरा नही है। भले ही कहकर बैठ जाना पडे। रघुवीर सहाय 'आत्म हत्या के विरूद्ध' कविता

सग्रह के आरम्भिक वक्तव्य मे कहते है "इस दुनिया को देखे जिसमे हमे पहले से ज्यादा रहना पड रहा है। लेकिन जिससे हम न लगाव साध पा रहे है, न अलगाव।" लगाव और अलगाव का यह तनाव कवि के अपने सर्जनात्मक तनाव का प्रतीक है।

अज्ञेय जिस मानसिक तनाव को प्रमुखता देते है, वह जीवन की विविधता से विभाजित और शिथिल होता है, जबकि मुक्ति बोध का तनाव द्विस्तरीय है एक ओर अपने परिवेश के साथ, दूसरी ओर स्वय अपने अन्दर, किन्तु अन्तत ये दोनो तनाव परस्पर सम्बद्ध है।

"भागता मै दम छोड धूम गया कई मोड"
या अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होगे
तोडने होगो ही मठ और गढ सब।"[3]

मे सघर्ष और तनाव की स्थिति जितनी बाहरी है उससे कही अधिक आन्तरिक है।

(ii) अनुभूति की जटिलता और प्रामाणिकता :

नयी कविता जीने की एक जटिल प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है। अनुभूति की जटिलता का सम्बन्ध सन्दर्भ से उत्पन्न होने वाले भावबोध की प्रकृति से है। 'हरी घास पर क्षण भर' मे प्रेमियो की बाहरी और भीतरी अनेक बाधाओं का पूरा बोध है। बाहरी बाधा के रूप मे 'माली चौकीदारो के समय का खटका और भीतरी बाधा के रूप में और न सहसा चोर कह उठे मन मे। प्रकृतिवाद है स्खलन।' प्रेम व्यापार के नाम पर अधिक से अधिक 'हरी घास पर क्षण भर' पास–पास बैठने का आग्रह था ।

"क्षण भर हम न रहे रहकर भी ।
सुने भीतर के सूने सन्नाटे में"।
किसी दूर सागर की लोल लहर की।"

इस अन्तस्थ भाव दशा मे स्मृति रूप प्रकृति के भी कई चित्र उभरते है –

"क्षण भर तुम्हे निहारूँ अपनी जानी एक–एक रेखा पहचानूँ
चेहरे की ऑखों की अन्तर्मन की।
और हमारे साझे की अनगिन स्मृतियो की।"[4]

हरी घास पर क्षण भर का सन्दर्भ व्यापक यथार्थ और सघन है। सन्दर्भ के अनुकूल ही इस कविता मे अनुभूति की जटिलता है।

नयी कविता का कवि उस अनुभव को कविता मे पिरोता है जिसे उसने जीने के दौरान प्राप्त किया है। क्षण भोग से उभरने वाला उसका निजी सुख–दु ख चाहे कितना ही लघु एव उपेक्षणीय हो किन्तु प्रामाणिक तो है ही।

अनुभूति शून्य व्यथारिक्त इतिहास असत्य है, निरर्थक है। इसलिए नयी कविता अनुभूति पूर्ण गहरे क्षण, प्रसग, व्यापार या किसी भी सत्य को उसकी आन्तरिक मार्मिकता के साथ पकड लेना चाहती है।

> ''आओ इस झील को अमर कर दे छूकर नहीं
> किनारे बैठकर भी नही एक सग झाक इस दर्पण मे
> अपने को दे दे हम इस जल को जो समय है'' — ***नरेश मेहता***

नयी कविता सगत और असगत बिम्बो के माध्यम से क्षणो की परिधि मे उफनते जीवन की सश्लिष्टता को मूर्तिमान कर देती है। ये कविताएँ आकार मे छोटी होती है किन्तु अनुभव की प्रामाणिकता के कारण प्रभाव में बहुत ही तीव्र होती है।

(iii) मूल्यों की परीक्षा :

नयी कविता ने किसी मूल्य को फार्मूले के रूप मे स्वीकार नहीं किया। एक सत्य होता है व्यक्ति का, एक होता है समाज का। कभी–कभी दोनो समान और कभी दोनों विषम होते हैं। मानव मूल्यो के प्रति आस्थावान व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विकल्प को सामाजिक सकल्प के सामने विसर्जित कर देता है। लका युद्ध करने के पहले युद्ध के विषय मे राम के मन मे संशय की रात्रि उमड–घुमड रही है। वे व्यक्तिगत रूप से युद्ध के विरूद्ध है किन्तु युद्ध सामाजिक हित में एक अनिवार्यता है। समाज का निर्णय युद्ध के पक्ष मे होता है। राम उसे स्वीकार करते हैं–

> ''मैने अपने को सौंप दिया ज्वारों को
> विवश धरती सा सौप दिया अपने को सौप दिया
> अब मैं निर्णय हूँ सबका अपना नही।''

नयी कविता ने धर्म, दर्शन, नीति, आचार सभी प्रकार के मूल्यो को चुनौती दी है यदि वे जीवन की नवीन अनुभूति, चितन और गति के रास्ते मे आते है या ऊपर से ओढे गये है। कुँवर नारायण के 'आत्मजयी' का नचिकेता बाप द्वारा सौपे हुए मूल्यो को अस्वीकारता हुआ यातनाये सहता है, और उन यातनाओ मे से ही उसे सही जीवन दृष्टि और शक्ति प्राप्त होती है। नयी कविता ने पीडा यातना, या शून्य को एक वस्तु स्थिति न मानकर उसे जीवन की रचनात्मकता से जोडा है। नये कवियो के लिए पीडा एक सर्जनात्मक शक्ति है–

> "एक शून्य है, मेरे ह्रदय के बीच
> जो मुझे मुझ तक पहुँचाता है।"[5]
> दु ख सबको माजता है और चाहे स्वय सबको
> मुक्ति देना वह न जाने किन्तु जिनको माजता है,
> उन्हे यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखे।" — *अज्ञेय*

एक रोचक तथ्य है कि नये कवियों ने रामायण की तुलना मे महाभारत को अपने ससार के लिए अधिक प्रसंगानुकूल पाया है। धर्मवीर भारती के काव्य नाटक 'अधायुग मे मूल्यों का सकट शुरू से अन्त तक बना हुआ है जिसके बिना पर महाभारत के बाद की निरर्थकता एवं दूसरे महायुद्ध के बाद की भयानक निरर्थकता को एक नाटकीय तादात्म्य दिया गया है। कुंवर नारायण 'नचिकेता' में नचिकेता के पुराण चरित्रो के माध्यम से जीवन का परम अर्थ ढूँढने की कोशिश करते है। 'असाध्य वीणा' मे अज्ञेय एक बौद्ध कथा के माध्यम से आत्मदान एव आत्म मुक्ति को चरित्रार्थ करते है। यह सब देखते हुए लगता है कि समकालीन अव्यवस्था को ढंग से समझने और वाणी देने के लिए नये कवियो ने पुरा कथाओ और मिथकों का भरपूर इस्तेमाल किया है। इलियट ने इसे ही 'वर्तमान का अतीत और अतीत की वर्तमानता' कहा है।

(iv) अपना ही परिवेश :

नयी कविता पर यह आरोप है कि उसने विदेशी कविता और दर्शन से बहुत कुछ उधार लिया है उसमें टी०एस० इलियट, डी०एच० लारेंस, एजरा पाउण्ड, वाद लेयर आदि की कविताओं में चित्रित युद्धोपरान्त की पीडा अनास्था, बिखराव, अकेलापन, अराजकता, एव मूल्यहीनता की छाया एव प्रभाव ग्रहण

किया गया है। यह आरोप पूर्णत सही नही है क्योकि नयी कविता मे निराशा एव मरणधर्मिता के साथ जिजीविषा और आस्था भी है दूसरे यह कि निराशा एव मरणधर्मिता की उत्पत्ति अपने ही समाज के विषम परिवेश से हुई है।

"जब होता हूँ बहुत–बहुत मै उदास
चमक–चमक जाता है अद्‌भुद आकारो मे एक सलीब
एक धर्मचक्र एक नगे फकीर की अभय हस्त – ***प्रभाकर माचवे***

यहा निराशा के बाद एक आश्वासन है। नयी कविता जीवन को अनुभूति के क्षणो मे पकडने की पक्षपाती है। अनुभूति प्राप्त करने वाला सृष्टा अपने परिवेश की ही उपज होता है।

(v) निराशा और अवसाद :

आज के कवि को कई स्तरो पर नैतिक और सामाजिक वर्जनाओ का सामना करना पड रहा है। वह अपने आस–पास की परिस्थितियो से सामजस्य बनाकर रखना चाहता है। पर हर जगह उसे निराशा ही हाथ लगती है–

"हमने जो कुछ भी अब तक सहा वह बहिश्त का सुख नही
जगली सुअर का अकेलापन हैं।" – ***हरि नारायण व्यास***

आज कवि निराशा की उस स्थिति का भी चित्रण कर रहा है, जिसमे वह न तो मर सका है और न जीवित ही हैं। अज्ञेय लिखते हैं–

"सुख मिला उसे हम कह न सके
सश्पर्स वृहत का उतरा सुरसरि सा
हम बह न सके
यो बीत गया सब हम मरे नही, पर हाय कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके।" – ***अज्ञेय***

इलियट ने भी कुछ ऐसी ही दशा का वर्णन करते हुए लिखा है–

I was nither living nor dead
and I know notning
Looking in the heart of light the silence

यही आज का खडित जीवन है, जिसमे आदमी त्रिशंकु की तरह लटका है, इस अहसास के साथ –हमे फिर से जीने का भय सहना है, मृत्यु मे रहना है।'

(vi) लोक सम्पृक्ति :

नयी कविता ने लोक जीवन की अनुभूति, सौन्दर्यबोध, प्रकृति और उसके प्रश्नो को एक सहज और उदार मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। साथ ही साथ लोक जीवन के बिम्बो, प्रतीको, शब्दो, उपमानो आदि को लोक जीवन के बीच से चुनकर अपने को अत्यधिक सवेदनपूर्ण और सजीव बनाया। उसकी यह विशेषता उसके यथार्थवादी होने की पहचान है। नयी कविता वस्तुपरक है। नामवर सिह ने कहा है, 'छायावाद काव्य रचना की प्रक्रिया जहा भीतर से बाहर की ओर है वहा नयी कविता की रचना–प्रक्रिया बाहर से भीतर की ओर है। एक में रूप के भाव का आरोपण है तो दूसरी मे रूप का भाव में रूपान्तर है।

नयी कविता की लोक सपृक्ति का वास्तविक प्रतिनिधि सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को कहा जा सकता है। प्रजातन्त्र तथा व्यापक मानवतावाद, लोक सपृक्ति तथा नयी कविता आज एक दूसरे से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है। ये सभी आधुनिक युग की महत्वपूर्ण उपलब्धिया है। सर्वेश्वर मे यह लोक सम्पृक्ति व्यक्तित्व के एक सहज गुण के रूप मे विकसित हुई है। नये वर्ष के आगमन पर वे सबके लिए शुभ चिंतना करते हैं–

"नया वर्ष सबको हो हर घर का, हर खेत का
हर खलिहान का, हर दिल का।" – ***सर्वेश्वर दयाल***

लोक सपृक्ति की भावना पर आधारित यह मानो नयी कविता का घोषणा पत्र कहा जा सकता है।

(vii) काव्य संरचना :

सरचना मे भी कुछ नये मूल्य आये। नयी कविता की काव्य सरचना दो प्रकार की है। 'प्रगीतात्मक' और 'नाटकीय'। छोटी कविताओ की संरचना मूलत प्रगीतात्मक है और लम्बी कविताओं की सरचना नाटकीय लेकिन सभी कविताओ की सरचना नाटकीय ही हो आवश्यक नहीं है। लम्बी कविताए भी अनुचिंतात्मक या आत्मपरक होती हैं और उनकी सरचना एक सीधी रेखा वाली न होकर

'वर्तुल' होती है। उदाहरण के लिए अज्ञेय की लम्बी कविता 'असाध्य वीणा' अपने आकार की लम्बाई के बावजूद एक प्रगीत है, तो निसदेह उसमे एक छोटी सी कथा भी है और नाटकोचित सवाद भी। इसके विपरीत श्रीकात वर्मा की 'समाधिलेख' रघुवीर सहाय की 'आत्म हत्या के विरूद्ध' राजकमल चौधरी की 'आत्म हत्या के विरूद्ध' राज कमल चौधरी की 'मुक्ति प्रसग' साही की 'अलविदा' और मुक्ति बोध की अधेरे मे शीर्षक लम्बी कविताए सही अर्थो मे नाटकीय सरचना वाली कविताए है।

नयी कविता की सरचना क्रिस्टल या स्फटिक की सरचना के समान है। इसका प्रमाण यह है कि आलोचना मे उद्धरण की सुविधा के लिए उससे कोई एक अश चुनना कविता के साथ अन्याय हो जाता है और जब भी ऐसा किया जाता है तो कविता की अन्विति की कीमत पर समग्र अर्थ की कीमत पर।

चूँकि नयी कविता मे हर विषय कविता का विषय हो सकता है, इसलिए नये कवियो ने काव्य सरचना को अधिक लचीला और समावेशी बनाया। नयी कविता मे सरचना के नये आविष्कृत तत्वों को पुराने से मिलाकर कई तरह के नये और उत्तेजक सयोजन किए गये। जैसे अज्ञेय ने पारम्परिक छद के एक तत्व तुक का सगीतात्मकता के लिए और मुक्तिबोध ने व्यग के लिए उपयोग किया है। नयी कविता 'मुक्ति छंद की कविता' नही बल्कि छंद मुक्त कविता है। नये कवि छद को एक पूर्वाग्रह मानते हैं। यह कहना गलत है कि नया कवि कविता मे बातचीत करता है, ठीक यह कहना है कि नया कवि बातचीत मे कविता करता है–

"बजो ओ काठ की घटियो बजो
मेरा रोम–रोम देहरी है सूने मन्दिर की जो — ***मुक्तिबोध***

नये कवियों ने अपने काव्य संरचना के लिए फैंटेसी का भरपूर उपयोग किया है उनमे मुक्तिबोध, श्रीकान्त वर्मा, रघुवीर सहाय प्रमुख है।

(viii) काव्य भाषा :

नयी कविता पुरानी काव्य भाषा का त्याग कर बातचीत की सामान्य भाषा का उपयोग करती है। संकेतों चिन्हों, सीधी टेढी, लकीरों, अधूरे वाक्यो आदि से

वह अपनी सवेदना प्रकट करती है, उदाहरण रूप मे सैय्यद सफीउद्दीन की एक रचना देखी जा सकती है–

→ ∇ ←

(हाय !)

→ ∆ ←

(नही चैन जागते ही कट गई रैन)

(प्रेम यानी इश्क यानी लव)

" | "

" | " 6

फैशन के रूप में स्थापित नयी कविता की यह शैली काफी दुरूहता लिए हुए है, और यह गद्य के आस–पास है, किन्तु कविता की भाषा एव बातचीत की भाषा की निकटता कलात्मकता के त्याग अथवा भावना की शिथिलता के कारण यदि उत्पन्न है तो वह निःसदेह निरर्थक है। ऐसी कविता मे सवेदनाघात नही होगा। ध्यान मे रखने की बात है कि नयी काव्य भाषा मे सामान्य वार्तालाप की भाषा के प्रयोग का अर्थ यह नही होता कि उसमे सस्कृत शब्दो का त्याग हो न वैसा माना ही जाता है।

नये कवियो ने अपनी भाषा को निजी प्रतीक व्यवस्था से समृद्ध किया है। हरी घास, इन्द्र धनु, सेतु, सागर, मछली, चक्रान्त शिला आदि बीसियो प्रतीक अज्ञेय द्वारा विकसित और प्रयुक्त हुए हैं। ये प्रतीक अज्ञेय की कविताओ मे बार–बार आते है। मुक्ति बोध ने अपने प्रतीक मिथिकल अतीत से या हाल के इतिहास से लिए है। विशाल वटवृक्ष, 'ब्रह्म राक्षस', 'पागल–मनुष्य' शक्ति पुरुष तथा महात्मा गाधी, तिलक, तालस्ताय, आदि इसका प्रमाण है। मा और शिशु अन्य उनके उल्लेखनीय प्रतीक है। अंधायुग एक कठ विषपायी' सशय की एकरात' कवियो ने मात्र पौराणिक आख्यानको से प्रतीक चुना है। ये प्रतीक ही नयी कविता पर लगे पाश्चात्य प्रभाव को आरोप को झुठलाते है।

(ix) काव्य बिम्ब :

नयी कविता के दौर मे काव्य बिम्ब पर काफी जोर दिया गया। केदारनाथ सिह ने घोषणा की, "कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब विधान पर। बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की वस्तु से होता है, उतना

ही उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है रूप को सक्षिप्त और दीप्त। काव्य वस्तु जितनी सश्लिष्ट, सूक्ष्म और जटिल होती है, उसे बिम्ब रूप मे अभिव्यक्त करना कवि के लिए उतना ही अनिवार्य होता है।''

''जल रहा है जवान होकर गुलाब
खोलकर होठ जैसे आग गा रही है फाग।''– ***केदारनाथ अग्रवाल***

1959 ई० का साल ऐतिहासिक दृष्टि से नयी कविता के विकास का प्राय चरम बिन्दु था। इस बिन्दु से एक रास्ता नयी कविता की रूढियो की ओर जाता था जिनमे बिम्ब आदि विज्ञापित नुस्खो के अधानुकरण की प्रवृत्ति थी और दूसरा रास्ता सच्चे सृजन का था जिसमे बिम्बवादी प्रवृत्ति के बधन को तोडना आवश्यक प्रतीत हुआ।

नयी कविता मे बिम्ब का आग्रह इतना बढा कि काव्य उपेक्षित हो गया और कविता की अच्छाई–बुराई बिम्ब पर निर्भर हो गई। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की 'वह खिडकी' शीर्षक कविता अपने सारे काव्य के बावजूद मुख्य रूप से पाठक के मन पर दो बिम्ब छोड जाती है।

''जिन्दगी मरा हुआ चूहा नही है
जिसे मुख मे दबाये,
बिल्ली की तरह हर शाम गुजर जाये
और मुडेर पर कुछ खून के दाग छोड जाये।''
''लोकतन्त्र को जूते की तरह लाठी में लटकाये।
भागे जा रहे है सभी सीना फुलाये।''[7]

यौन बिम्बो एव कल्पनाओ मे भी नयी कविता थी। अपनी अलग ही विशेषता है। कविता में ऐसे शब्दो का प्रयोग होता है जिससे निकलने वाला गौण अर्थ ऐसा यौन बिम्ब प्रस्तुत करता है, कि मुख्य अर्थ अमुख्य बन जाता है। अज्ञेय का एक बिम्ब दृष्टव्य है–

''और वह दृढ पैर मेरा है
गुरू, स्थिर, स्थाणु सा गडा हुआ
तेरी प्राण पीठिका पे लिंग सा खडा हुआ।'' – ***अज्ञेय***

धीरे–धीरे काव्य सृजन बिम्ब के दायरे से निकलकर एक खास तरह की सपाट बयानी की ओर अग्रसर हो रहा है–

'प्रिय पाठक ये मेरे बच्चे हैं कोई प्रतीक नही
और इस कविता मे मै हूँ मै कोई रूपक नही
यह मै खडा हूँ भरा–पूरा एक आदमी।"[8]

'एक अधेड भारतीय आत्मा' के माध्यम से रघुवीर सहाय का यह कथन उस बदली हुई मनस्थिति का अर्थपूर्ण सकेत है। कविता मे मै सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब विधान पर।" एक समय यह कहने वाले केदार नाथ सिह बिम्ब विधान का मोह छोडकर अब सीधे–सीधे इस प्रकार के वक्तव्य देने लगे है।

"तुमने जहा लिखा है
प्यार वहा लिख दो सडक फर्क नही पडता
मेरे युग का मुहावरा है फर्क नही पडता।" – *केदार नाथ सिह*

बिम्ब मोह टूटने का एक प्रधान कारण यह था कि कवियो की यह महसूस हुआ कि बिम्ब विधान सीधे सत्य कथन के लिए बाधक है। इसे विरोधाभास ही कहना चाहिए कि जबसे कविता में बिम्बो की प्रवृत्ति बढी सामाजिक जीवन के सजीव चित्र दुर्लभ हो चले। सुन्दर बिम्बो के चयन की ओर कवियो की ऐसी वृत्ति हुई कि प्रस्तुत गौण हो गया और अप्रस्तुत प्रधान इस तरह कवि की दृष्टि ही सकुचित नही हुई, कविता का दायरा भी सीमित हो गया। पहले जीवन से खीचकर प्रकृति की ओर फिर प्रकृति में भी विशेष प्रकार के रमणीय दृश्य की ओर।

वस्तुत इस बिम्ब मोह के टूटने का कारण सामाजिक और ऐतिहासिक है। छठे दशक के अन्त और सातवे दशक के आरम्भ मे सामाजिक स्थिति इतनी बिषम हो उठी कि उसकी चुनौती के सामने बिम्ब विधान कविता के लिए अनावश्यक भार प्रतीत होने लगा। जिस प्रकार सन् 36 तक आते–आते स्वय छायावादी कवियो को भी सुन्दर शब्दो और चित्रो से लदी हुई कविता निस्सार लगने लगी, उसी प्रकार सन् 60 के आस–पास नयी कविता की बिम्ब धर्मिता की निरर्थकता का एहसास होने लगा। इसके बाद जिस प्रकार की कविता लिखी गई, उसे अशोक बाजपेयी ने सपाट बयानी कहा है। अशोक बाजपेयी कहते है "नयी कविता बिम्ब केन्द्रित रही है और अक्सर कवियो मे विम्बो का ऐसा घटा टोप तेयार हुआ है कि कविता को बिम्ब से मुक्त कराकर ही उसे जीवत और प्रासगिक रखा जा सकता है। उनके सामने बिम्ब प्रधान कविता

कुछ शक की चीज बन गई और सपाट बयानी की तरफ कई कवि झुके और उसे अधिक विश्वसनीय माना जाने लगा।'' रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिह और श्रीकात वर्मा ने खास तौर पर सपाट बयानी के मूल्य को पहचाना लेकिन उसे अपनी बुनियादी विम्ब धर्मिता के प्रतिकूल न रखकर उसे उसके साथ सयोजित किया।

कविता सिर्फ बिखरे हुए विम्बो की श्रृखला नही है। विम्बो से कोई कुछ नया नही सीखता, क्योकि पहले से जो उसकी जानकारी मे होता है, विम्ब उसी को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने का ढग भर है। कविता मे विम्ब वास्तविकता के साक्षात्कार का ही सूचक नही होता प्राय वह वास्तविकता से बचने का एक ढग भी रहा है।

इस युग में प्राय दो प्रकार का काव्य सृजन हुआ। व्यक्तिपरक और समाज परक। व्यक्तिपरक काव्य के अन्तर्गत मुक्तक काव्य और गीत काव्य दो प्रकार की कविताए लिखी गई। व्यक्ति परक अनास्था एव समष्टिपरक आस्था दोनो का समन्वय हमे नयी कविता में देखने को मिलता है। समाज परक काव्य के अन्तर्गत प्रबन्ध काव्य, मुक्तक तथा गीतो की रचना इस युग की प्रमुख विशेषता रही है। इनका मूल स्वर सास्कृतिक उन्नयन, प्राचीन स्वस्थ परम्पराओ की प्रशस्ति व समाजवादी रहा है।

(x) समाज परक काव्य :

स्वतन्त्र भारत मे देश के विभाजन के उपरान्त उत्पन्न परिस्थितियो समस्याओ सिद्धान्तो और आस्थाओं के साथ–साथ नयी कविता मे विश्व समस्याओ, युद्ध की विभीषिका, परमाणु युद्ध की आशंकाओ एव मानवतावादी भावनाओ का अकन हुआ है। इस काव्य मे प्रधानत दो दृष्टिकोण हमारे समक्ष उपस्थित होते है। एक यथार्थवादी दूसरा सांस्कृतिक पुनुरूत्थानवादी। यथार्थवादी कवियों मे नरेन्द्र शर्मा, अचल, केदारनाथ अग्रवाल, राम विलाश शर्मा, रगेय राघव, त्रिलोचन, नागार्जुन आदि है। जिन्होने स्वतन्त्र भारत की तत्कालीन परिस्थितियो को अपने काव्य का विषय बनाया है। सांस्कृतिक पुनुरूत्थानवादी कवियो मे पत, दिनकर, बच्चन, माखन लाल चतुर्वेदी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन, भगवती चरण वर्मा, आदि का नाम उल्लेखनीय है, इन्होंने प्राचीन सास्कृतिक पुनुरूत्थान व मानवता के उन्नयन को अपने काव्य का विषय बनाया है। इस

समाजपरक काव्य मे प्रबन्ध, मुक्तक एव गीत तीनो ही प्रकार की रचनाये हुई हे, पौराणिक एतिहासिक तथा आधुनिक, तीनो ही प्रकार के प्रबन्ध काव्यो का सृजन इस काल मे हुआ है।

जहा तक पौराणिक प्रबन्ध काव्यो का सवाल है, इस काल मे, साकेत सन्त, रामराज्य (बलदेव प्रसाद मिश्र), उर्मिला (नवीन), रावण (हरदयाल सिह), एकलव्य (राम कुमार वर्मा), रश्मिरथी (दिनकर), जयभारत (मैथिलीशरण गुप्त), कृष्णायन (द्वारिका प्रसाद मिश्र), कनुप्रिया (धर्मवीर भारती) आदि प्रमुख रचनाओ का सृजन इस काल मे हुआ है।

पौराणिक ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यो मे दिनकर की उर्वशी, विष्णुप्रिया (मैथिली शरण गुप्त), आर्यावर्त (मोहन लाल महतो 'वियोगी'), बाणाम्बरी (रामावतार पोद्यार 'अरूण), सारथी (राम गोपाल शर्मा 'दिनेश') आदि का नाम गिनाया जा सकता है।

इस काल मे आधुनिक कालीन प्रबन्ध काव्यो मे जन नायक (रघुवीर शरण मिश्र) मेधावी (रंगेय राघव), प्रेमचन्द्र (परमेश्वर द्विरेफ), लोकायतन (पत), के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रबन्ध काव्यो का भी सृजन किया गया, जिनमें कवियो ने पौराणिक आख्यानो तथा महापुरुषो को ही अपना आधार बनाया है। इनके अन्तर्गत पौराणिक आधारो के माध्यम से वर्तमान युग की समस्याओ पर विचार किया गया है। रंगेय राघव का 'मेधावी' समाजवादी परिप्रेक्ष्य को ग्रहण करते हुए आदिकाल से अब तक के मानव विकास, की रूपरेखा एव उसके राजनीतिक, आर्थिक, सास्कृतिक, समस्याओ का चित्रांकन करता है। रधुवीर शरण मित्र के 'जननायक' एव पंत के 'लोकायतन' में युग पुरुष गॉधी जी का ही अकन किया गया है। प्रसिद्ध की दृष्टि से दिनकर का 'उर्वशी', पत का 'लोकायतन' तथा रामावतार पोद्यार 'अरुण' का 'बाणाम्बरी' इस युग के सर्वश्रेष्ठ काव्य रहे है।

सक्षेप मे इन प्रबन्ध काव्यो की निम्नलिखित विशेषताए मानी जाती है—

1 व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध,

2 युद्ध और शान्ति तथा हिसा और अहिसा का चित्रण।

3 वर्ग एवं वर्ण वैषम्य पर करारा प्रहार।

4 पौराणिक विषयो के माध्यम से आधुनिक युग की समस्याओ पर प्रकाश।

5 नारी पुरुष के सनातन आकर्षण और काम सम्बन्धो का दार्शनिक पुनर्विश्लेषण।

6 गॉधीवाद, मार्क्सवाद और फ्रायडवाद का प्रभाव।

7 उपेक्षित विशेषकर निम्न समझे जाने वाले पात्रो को नायक बनाना।

8 भाषा, छद, अलकार, शब्द शक्ति आदि अभिव्यक्ति के विविध उपकरणो का यथा सभव स्वच्छन्द प्रयोग।[9]

(XI) समाज परक मुक्तक कविताएं तथा गीति काव्यः

सन् 1947 मे भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति पर अनेक कवियो ने उल्लास मुग्ध हृदय से चिरवाछित आजादी का स्वागत करते हुए नयी आशाओ की दीप जलाए। पत ने गया—

"सभ्य हुआ अब विश्व सभ्य धरणी का जीवन
आग खुले भारत के सग भू के जड बधन।"[10]

और इससे भी आगे बढकर 'दिनकर' द्वारा समाजवादी शासन व्यवस्था को स्वप्न को हृदय मे सजोये हुए उद्घोषणा की गई—

"दो राह समय को रथ का घर्घर नाद सुनो
सिहासन खाली करो कि जनता आती है।[11]

परन्तु यह उल्लास अधिक समय तक नही रह सका, देश के विभाजनोपरान्त उत्पन्न साम्प्रदायिक वैमनस्य जनित दंगो ने विध्वस और जन सहार का ऐसा ताण्डव नृत्य किया जिसे देख युग दृष्टा, स्वप्नदर्शी गाधी जैसा महापुरुष भी हताश हो गया। भारत अभी इस सक्रमणकालीन स्थिति से उबरने की कोशिश कर ही रहा था कि एक धर्मांध व्यक्ति ने युग पुरुष गाधी की हत्या कर समूचे विश्व जनमानस को स्तब्ध कर दिया। हिन्दी के कवियो ने अपने अश्रुपूरित नयनों से गाधी जी को भावभीति श्रद्धांजलियां अर्पित की गई—नरेन्द्र शर्म ने गाया—

> "तुग हिमाद्रि समान आज दिक्काल परिधिके पार
> शोभित हो तुम वहा जहा पहुचे न शब्द झकार।
> अपने अलिखित गीत अनाधृत पुष्पो से इस हेतु
> अर्पित करता हूँ अजलि दे सादर बारम्बार।"[12]

पूजीवादी नग्नताण्डव के सामने आजाद भारत की जनता की स्थिति बहुत कुछ वैसी ही रही जैसी कि अग्रेजो व इसके पूर्व थी। पूजीपतियो एव मिल मालिको का शोषण उत्तरोत्तर शासन के वरधहस्त तले बढता ही गया।

इस स्थिति ने माखन लाल चतुर्वेदी जैसे लेखनी के धनी जन नायक कवियो को झकझोर, कहने पर मजबूर कर दिया–

> "वही तो सोना बनावे, खेत मे मोती उगावे।
> वही मेरी पतित प्रभुता का व्यथित बोझ उठावे।
> वही कठिन सुरग खोदे, वही उठ पर्वत बहावे।
> वही पत्थर सी भुजाए, राष्ट्र रथ के पथ बनावे।
> किन्तु उनके 'गले मे दारिद्रय नागन, कमर मे चिथडा नही है।
> दान 'दानो' की करें विधि, पेट मे टुकडा नही है।[13]

इस स्थिति से आक्रोशित ह्रदय दिनकर ने भावी जनक्रान्ति का आह्वान कर दिया–

> "अपने को ही नही देख, टुक ध्यान इधर भी देना।
> भूमि हीन कृषको की कितनी बडी खडी है सेना।
> बाध तोड जिस रोज फौज खुलकर हल्ला बोलेगी
> तुम दोगे कया चीज? वही जो चाहेगी सो लेगी।
> कृष्ण दूत बनकर आया है, सन्धि करो सम्राट।
> मच जायेगा प्रलय, कही वामन हो पडा विराट।"[14]

द्वितीय विश्व युद्ध की विभाषिका से आक्रान्त विश्व जनमानस अभी मुक्ति की सास भी नही ले पाया था कि पूंजीवाद एव साम्यवाद के विश्वव्यापी शीतयुद्ध ने तृतीय विश्व युद्ध के खतरे का आभास व आशका उत्पन्न कर दी। इसके परिणामो से सशंकित शान्तप्रिय कवियों ने विश्व शान्ति को उन्नयन एव प्रसार मे अपनी वाणी का स्वर मिलाना आरम्भ कर दिया।

आधुनिक कवि 'नीरज' ने कहा–

> "मै सोच रहा हूँ अगर तीसरा युद्ध छिडा
> इस नई सुबह की नई फसल का क्या होगा?"[15]

सन् 1962 के विश्वासघाती चीन के एव 65 के पाकिस्तानी आक्रमण ने देश मे पुन एक अद्भुद एकता का सचार कर दिया फलत अनेक कवियो की वाणी देश प्रेम के स्वर से झकृत हो उठी। प्रसाद के नाटको मे गाये गये देश भक्तिपूर्ण गीतो का यह नये युग बोध के साथ नया और मनोरम सस्करण था। वीरेन्द्र मिश्र, सोम ठाकुर, राम कुमार चतुर्वेदी 'चचल' आदि नव युवा कवियो ने देश गौरव देश श्री के गीत गये।

इसके अतिरिक्त अनेक कवियो ने समाज एव शासन मे व्याप्त भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि को लक्ष्य बनाकर अन्याय और अत्याचारो के विरूद्ध आवाज उठाई। पत, दिनकर, बच्चन, शिवमगल सिंह सुमन, नरेन्द्र शर्मा, गोपाल सिह नेपाली, सोहन लाल द्विवेदी आदि पुराने मँजे हुए कवियो के साथ नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, घनश्याम अस्थाना भारतभूषण, कमलेश, रवीन्द्र भ्रमर, शिव बहादरु सिंह भदौरिया, कमला चौधरी, सोम ठाकुर आदि नये कवि जन–जन की भावनाओ को मुखरित कर रहे थे।

जिस समय कवियों का एक वर्ग जनभावनाओ को अभिव्यक्ति दे रहा था। उसी समय अज्ञेय जैसे प्रतिभाशाली अहवादी कवि ने व्यक्तिवादी विचारधारा से ओत–प्रोत काव्य सृजन करके नयी कविता की धारा को दूसरी तरफ मोड दिया। एक ओर अस्तित्ववादी, फ्रायडवादी दर्शन से प्रभावित यह काव्य वैयक्तिक अह की परिधि मे रहते हुए सम्पूर्ण परिवेश के प्रति अनास्था भाव से आक्रान्त होकर, वैयक्तिक कुण्ठाओ, निराशाओ व मानसिक यातनाओ के चित्रण तक ही सीमित था तो दूसरी ओर इसमें आस्थावादी स्वर भी मौजूद थे जो उज्ज्वल भविष्य के निर्माणाकाक्षी थे।

(xii) व्यक्तिपरक अनास्थावादी काव्य :

अपने अस्तित्व के प्रति आशकित व वैयक्तिक कुण्ठाओ की अभिव्यक्ति इस काव्य का प्रमुख विवेच्य विषय रहा हैं इन्हे हमेशा अपने अस्तित्व की उपेक्षा का भय सताता रहता था।

"कूडे सा हमको तज कर तट के पास
मथर गति से बढ जायेगा इतिहास।"[16]

इन कवियो को अपना अस्तित्व किसी झूठ पर आधारित प्रतीत होता था–

"लगता है सारा अस्तित्व किसी झूठ पर
टिका हुआ जाता है, आप ही आप बिखर।"[17]

अस्तित्व के प्रति इस अनास्था ने इन्हे पराजयवादी बना दिया –

"इस थके मस्तिष्क मे मेरी पराजय
छिपकली सी पग दबाए चल रही।'[18]

इनकी पराजयवादी भावना ने इनकी आत्मा को कछुए के समान भयभीत और त्रस्त बना दिया था, फिर भी इनकी आत्मा मे सुखोपभोग की उद्याम लालसा और सुख के उस क्षण को पूरी तरह से भोग लेने की पूरी इच्छा थी। इनकी सुखोपभोग की दमित एव कुण्ठित इच्छाओं की सीमा का एक उदाहरण यहा द्रष्टव्य है, जिसमे इनकी वासना तृप्ति की लालसा सम्पूर्ण सामाजिक बधनो को तोडकर अभिव्यक्त हुई है–

'आज मुख्य मेहमान तुम रात के 'फ्लोर शो मे
एक बार बस एक बार अपने तन की छाप छोडना मुझ पर।
और साथ ही इतना और कहना है कि–
"उगलियो को कह दो आज रियायत न करें तनिक भी
किन्तु पेश आए मुनासिब बेरहमी से।"
क्योकि फैल रही है परिधि स्तनो की हसरते अब जवान है।"[19]

यहॉ पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी यौवनवादी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव यहा देखा जा सकता है। इन व्यक्तिवादी अनास्था मूलक काव्य के कवियो को हमेशा अपने अस्तित्व के विघटन का काल्पनिक भय सताता रहता था फलत इन्होने सम्पूर्ण सामाजिक मूल्यों को नकारते हुए व्यक्ति के सुखोपभोग मे ही डूबे रहना अधिक अच्छा समझा।

(xiii) व्यक्तिपरक आस्थावादी काव्य :

इन अनास्थामूलक व्यक्तिवादी कवियों के अतिरिक्त व्यक्तिवादी आस्था मूलक कवियो का भी एक वर्ग था, ये मानव स्वभाव की विकृतियो के

विघटनकारी प्रभाव को नष्ट कर स्वस्थ समाज व सृजन के आकाक्षी थे। इन कवियो ने आस्था के नये स्वर मुखरित करते हुए घोषित किया कि—

चढकर आया आज कर्म का युग नवीन।

और इसी स्वर ने मानव को निराशा और सत्रास से मुक्ति का सन्देश दिया।

"व्यष्टि भ्रष्ट जीवन समष्टि की सीमा मे
अपने विश्वासो का खोया सुख खोज रहा
आस्था के सूर्य को उसके घर द्वारे पर ले आओ,
लेकिन दरवाजे मे अडकर मत खडे रहो,
मन के घर आगन में नयी धूप आने दो।"[20]

यहॉ पर अस्तित्ववादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस वर्ग के कवि ने परम्परा के स्वस्थ रूपो को अपनाकर उन्हें नये युग के नये परिवेश के अनुरूप उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया और साथ ही व्यग और हास्य का सहारा लेते हुए परम्परा धर्म, कला, आदि के अनुर्वर, अनुपयोगी रूढ रूपो पर व्यग किए। यह व्यंग धर्म वीर भारती लक्ष्मीकात वर्मा, नागार्जुन आदि की रचनाओ मे देखा जा सकता है।

नयी कविता के पूर्व की हिन्दी कविता विभिन्न वादों के खेमो में विभाजित थी, परन्तु नयी कविता ने इन विभाजक रेखाओ को व्यर्थ सिद्ध करते हुए अपने मे प्रगति एवं प्रयोग का मिला जुला समन्वय स्थापित किया। नयी कविता के विवेचन से यही स्पष्ट होता है कि नयी कविता के मूल मे टूटे मानव मूल्य, अस्त–व्यस्त परम्परा, प्रताडित भावनाए, खण्डित मर्यादाए। उसका उद्देश्य है विद्रोहात्मक सक्रियता, अह की स्थापना, वैयक्तिक निष्ठा तथा बौद्धिक जागरूकता। नयी कविता चाहती है जीवन का यथार्थ चित्रित करना और जीवन का यथार्थ है वेदना, प्रतारणा, कुरूपता, निराशा, तथा बौनापन। इस तरह से नयी कविता मे जहां एक ओर ऐतिहासिकता एव पौराणिकता है तो दूसरी ओर सामाजिकता एवं समाजवादी दृष्टिकोण जहा एक ओर व्यक्तिवादी फ्रायड अनास्था का स्वर विद्यमान है तो दूसरी ओर व्यक्तिवादी आस्था का स्वर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव भी देखा जा सकता है इस प्रकार नयी कविता मे छायावाद प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद तीनों का अभूतपूर्व सामजस्य देखा जा सकता है।

(ब) नयी कविता पर अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव :

नयी कविता का आरम्भ किसी दर्शन को पुनरुज्जीवित करने के लिए नही हुआ था। हर वस्तु को अस्वीकार करने की भावना के कारण दर्शन का कोई स्पष्ट रूप हमे आरम्भिक नयी कविता मे नही मिलता है। कविता और कहानी दोनो ही क्षेत्रो मे जिस तरह से अस्तित्ववाद के नारे बुलद किए जा रहे है उससे यही लगता है कि अस्तित्ववाद पश्चिमी प्रभाव अथवा आरोपित आधुनिकता की आवश्यकता के रूप में आया है। कवियो को आधुनिक होने के लिए अपने को अस्तित्ववादी घोषित किए बिना निस्तार नही दीखता।

अस्तित्ववादी, गद्यलेखन को एक विशिष्ट कला रूप मानते है। जिसके द्वारा मानव चेतना, वास्तविकता का उद्घाटन करके क्रियाशील होती है। अत· साहित्य–सृजन के माध्यम से लेखक अपने अस्तित्व की सार्थकता खोजना चाहता है और अपनी स्थिति को प्रमाणिकता प्रदान करना चाहता है। कविता के क्षेत्र मे स्थिति कुछ भिन्न है। कविता विचारो के सम्प्रेषण का माध्यम नही हो सकती। कविता का विषय अनुभूति को विम्बो द्वारा सम्प्रेषित करना है। उसमे भाषा की बिम्ब क्षमता नहीं सांकेतिकता ही मूल्यवान होती है। कवि क्षण जीवी हो सकता है, किन्तु कविता में क्षण जीविता का विचार ही क्षण की अनुभूति की अभिव्यजना करेगा तभी काव्यात्मकता संभव होगी।

पश्चिम से आयातित दर्शन की संगति हम अपने परिवेश से नहीं बैठा सके है। क्यो कि अस्तित्ववाद को आरम्भ करने वाली परिस्थितिया हमारे देश की नही हो सकती है और सभवत यही कारण है कि हिन्दी की अस्तित्ववादी कहलाई जाने वाली रचनाओं मे देश की परिस्थितियो मे मानव की समस्याओ का समाधान नही है। कामू, काफ्का, कीर्केगार्ड, सार्त्र के नामो के साथ एक बनावटी सत्रास का आभास मिलता है। पश्चिम की परिस्थितियो में जो नैराश्य और सत्रास स्वाभाविक लगता है, हमारी परिस्थितियो में आरोपित होकर वह झूठ, आरोपण, और असगति के अतिरिक्त कुछ नहीं लगता।

नयी कविता उन विस्थापित युवामनो की अभिव्यक्ति है जो किसी प्रकार की मान्यता न पाकर अपने अग्रजों के प्रति विक्षोभ से भर जाते है और वह विक्षोभ जब कोई निकास नहीं पाता तो आत्मदया, आत्महीनता का बोध बनकर काव्य मे अभिव्यक्त होने लगता है। अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से सन् 1950 के

बाद साहित्य मे महत्व पाया है। हिन्दी नयी कविता के पीछे अस्तित्ववादी चिन्तन का आधार है। अस्तित्ववादी चिन्तन का हिन्दी नयी कविता पर प्रभाव निम्न रूप मे देखा जा सकता है–

(क) वैयक्तिकता पर विशेष आग्रह .

अस्तित्ववादी चिन्तन का वैयक्तिकता पर विशेष आग्रह है। नयी कविता के सन्दर्भ मे अह का महत्व एक सीमा तक इसी वैयक्तिकता का पर्याय हो सकता है। पश्चिम मे व्यक्तिवाद व्यक्ति को हर प्रकार की स्वाधीनता देता है। व्यक्ति किसी से प्रतिबद्ध नही है, न ईश्वर से न देश से, न समाज से और न ही परिवार से। यहा व्यक्तिवाद का स्वर उससे पर्याप्त भिन्न है। अप्रतिबद्धता के प्रति मोह तो व्यक्ति के मन मे है, किन्तु यह अप्रतिबद्धता अभी उसका 'प्रेय' मात्र है। वह इच्छित स्थिति है जिसे वह अनुभूति के स्तर पर कभी नही भोग सकता है।

"न खेलूँ मै अगर शतरग ऐसी गलत शर्तो पर
कि जिसमे सभी चाले बस तुम्हारी हो?
न हो स्वीकार यदि यह खेल मुझको
जीतना जिसको तुम्हारी बदनियत हो?
और जिसमे हारना मेरी नियति हो?"[21]

व्यक्ति का अहं उसे दुनिया से कुछ ऊपर उठा देता है। उसके अहं को तोडने वाला कोई भी प्रयास उसे असह्य है।

"अहं की चट्टान को तोडती आ रही आवाज किसकी।
कौन चुपके वस्त्र को तेज सुई की तरह छेदता?"[22]

अस्तित्ववादी के लिए वैयक्तिकता इसलिए आवश्यक है क्योकि अपने को भीड से अलग करने के प्रयास में जो कुछ वह करता है उसमे उसका स्वत्व अधिक है। जो कुछ कर रहा है उसके लिए वह स्वय जिम्मेदार है। दायित्व बोध की भावना मानवीय स्वतन्त्रता का ही परिणाम है। लेकिन स्वतन्त्रता का मतलब उसके लिए समाज से कटकर जीना नही है वह सब आघातों को सह लेता है–

"है छिपी, इन मुट्ठियों के बीच
मजबूरियां, लाचारिया, असमर्थताऍ

एक हो जिसको बताएँ मुट्ठिया ये है बनी फौलाद की,
सबको समेटे युग युगो से बन्द है अब तक।"[23]

और इसी प्रकार–

"क्या मै चीन्हता कोई न दूजी राह?
जानता क्यो नही निज मे बद्ध होकर है नही निर्वाह।"[24]

यह अतिरिक्त आत्म केन्द्रिकता की भावना वास्तव मे अस्तित्व के प्रति, सत्ता के प्रति शका का प्रतिफलन है। शका बार–बार उठाई गई है, जिसमे अस्तित्व मे प्रेम, मृत्यु, विषाद, भय सभी कुछ है– ये हमारे जीवन की अनिवार्यताएँ है जिनसे किसी भी प्रकार छुटकारा नही पाया जा सकता। ईश्वर के अभाव मे मनुष्य एक दम अकेला हो जाता है, और ईश्वर रिक्त समाज मे जीने वाला व्यक्ति उसी अकेले पन से अपने होने मात्र (अस्तित्व) पट शका के कारण अपने मे ही सिमट जाता है। अपने लिए उसे जो अर्थ ('सार') मिलता है। वह उसे संवेदनशील होने से बचाता है। पहले अपने 'अस्तित्व' का एहसास और उसके बाद अपने लिए 'सार' प्राप्त करने का आत्म सघर्ष महायुद्धो के बीच भटकी हुई मानवता के लिए सगत जीवन दृष्टि थी।

"लोभ के वशीभूत गद्‌गद्‌ श्रद्धालुओ के मेले मे,
भीड के प्रपंच बीच शकित जिज्ञासु एक
अशुभ उपस्थित हूँ।
मै अपनो के हठात सत्यो से दण्डित हूँ।
उनके विश्वासो से हारा हूँ, उनकी
नादानी से कुछ ऐसे अपराधी साबित हूँ,
मानो अपना ही हत्यारा हूँ,
जीवन मे कैसा यह कुटिल द्वैध?
यह कैसा विधान–निर्भय जीना वैध?
जीवित हूँ या केवल अपहृत हूँ?
सज्ञा हूँ या केवल व्यावहृत हूँ?
क्यो इतना उहापोह यदि मात्र अनुकृति हूँ तुम्हारी।"[25]

(ख) क्षणजीविता :

नयी कविता को देश की उहापोह ने जो अनुभूतिया दी उनमे इस अनिश्चितता का भी हाथ है। नया कवि क्षण की अनुभूति पर बल इसलिए देता है कि वह अपने को समसामयिक जीवन के प्रति प्रतिक्षण उत्तरदायी समझता है। उससे विरत होकर शश्वत की गोद मे विश्राम करने की कल्पना करना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है। जीवन क्रम की स्वाभाविक अखण्डता उसे क्षण की अनुभूति मे भी उन तत्वो की यथेष्ट उपलब्धि करा देती है जो वास्तव मे नित्य है–

"क्या बुरा है यदि क्षण से अचानक प्रस्फुटित होकर प्रगल्भ बहार सा
मूर्छित वनो मे पुन अपने बीज के भवितव्य ही तक लौट जाऊॅ
और अगला कदम ही मेरा उठाया क्रम कही भी या कही भी नही।"[26]

(ग) अप्रतिबद्धता :

अप्रतिबद्धता का प्रश्न स्वाधीनता के बाद सन् 1960 के आस–पास जितनी तीव्रता से उठने लगा उतना पहले कभी नही उठा। अप्रतिबद्ध वैसे ही रह सकता है, जिस पर कोई उत्तरदायित्व न हो और निजी सुख–दु·ख के चिन्ता के अतिरिक्त और कोई चिन्ता उसे न भावे। "यों स्वतन्त्रता के उपरान्त की साहित्यिक युवा पीढी के समक्ष तमाम स्थितियां इस प्रकार प्रतिफलित हुई है कि विश्वास नाम का तन्त्र छिन्न–भिन्न हो गया है। उसे लग रहा है कि इस यान्त्रिक उहापोह मे वह एक अनियन्त्रित इकाई बनकर रह गया है तमाम पारिवारिक तथा सामाजिक सम्बन्ध उसे मात्र कडुआहट के लग रहे हैं। उसे समय की अनिवार्य सत्ता ने अपने शिकंजे मे जकड लिया है। वह इस छटपटाहट को व्यक्त करने के लिए प्रतिश्रुत है। यह छटपटाहट उसे अलगाव दे रही है और यही अलगाव उसकी कृतियों में भी परिलक्षित हो रहा है।"[27] नयी कविता का कवि अपनी पीढी का विश्वास टूटता हुआ पाता है जिसके कारण अपने को अप्रतिबद्ध रखने के लिए उदासीनता ओढ रखी है–

"न हमारी ऑखे है आत्मरत,
न हमारे होठो पर शोक गीत।
जितना भी जी सके ऊब लिए
अब हमे किसी भी व्यवस्था मे डाल दो
–जी जाएगे।"[28]

और इसी प्रकार–

> ''ऐसी अवस्था मे तोडा भी जिसे नही जा सकता
> भोगा भी जिसे नही जा सकता
> छोड दूँ सोचता हूँ सोचना भी छोड दूँ।''[29]

यह अप्रतिबद्धता दायित्वहीनता तक विस्तृत नही है, उसने अपने ही सन्दर्भ मे अपने ही प्रति उदासीनता मे अभिव्यक्ति पाई है। वास्तव मे साहित्यकार किसी के प्रति प्रतिबद्ध नही है, प्रतिबद्धता एक ऐसी नागफास है जो यक्ति को मात्र कुठित करती है। उसे एक दायरे मे कैद कर देती है। वह दायरा राजनीतिक हो या सामाजिक मर्यादाओ का या साहित्यिक चिन्तन का। साहित्यकार कोई विदूषक नही है कि उसे किसी मानी हुई परिपाटी का सृजन करने के लिए बाध्य किया जाये। आज का विद्रोही साहित्य कार प्रतिबद्धता के प्रति कोई आकर्षण नहीं रखता। अगर किसी से प्रतिबद्ध है तो अपने आन्तरिक संघर्ष से, अपनी ग्रन्थियो से, अपने बेनकाब व्यक्तित्व से। जो क्रान्तिदर्शी व युगद्रष्टा रहे वे किन्हीं भी बन्धनो मे नहीं बधे।

> ''लीक पर वे चले जिनके, चरण दुर्बल और हारे है।
> हमें तो जो हमारी यात्रा से बने ऐसे अनिर्मित पथ प्यारे है।''[30]

इसी प्रकार मुक्तिबोध ने भी अप्रतिबद्धता के सकट को कई तरह से झेला है–

> ''अधूरी और सतही जिन्दगी के गर्म रास्तों पर हमारा गुप्त मन।
> जिसमे सिकुडता जा रहा जैसे कि हब्शी का गहरा स्याह।
> गोरो की निगाहो से अलग ओझल,
> सिमट कर सिफर होना चाहता हो जल्द।''[31]

यहा गोरे वे समकालीन है जिनके प्रति मुक्तिबोध एक अतिरिक्त घृणा से भरकर फैटेसी को शब्दबद्ध करने लगते है। एक निर्वासन की तीव्र इच्छा उपर्युक्त पक्तियों में व्यक्त है यहां पर सार्त्र की विचारधारा का प्रभाव 'The other man is hell" (दूसरा मनुष्य नरक है) का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। जब मन की घृणा भी चुक जाये तो अप्रतिबद्धता ही एक मात्र उपाय अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए बचा रहता है।

(घ) संत्रास :

अस्तित्ववादी विचारधारा विस्तृत पैमाने पर हुए युद्धोत्तर परिवर्तन के बाद उभरकर आई थी। योरोप के लिए यह युद्ध जितना निर्णायक था एशिया का वह भाग जो कि भारत है, भी उसकी लपटो की गर्मी से अशत परिचित हो सका था। फिर भी भारतीय साहित्य मे वर्णित सत्रास की पृष्ठभूमि युद्ध उतनी नही है जितना कि औद्योगीकरण व स्वतन्त्रयोत्तर विभ्रम।

व्यक्ति त्रस्त होता है कि किसी विभीषिका से, वह युद्ध हो या कोई भयकर परिवर्तन। यह सत्रास खड–खडाते हुए रोबोट, कम्प्यूटर, जबडा फाडे हुए आदमी को समूची निगल जाने वाली मशीनो, महत्वाकाक्षाओ की हत्याओ, बेतहाशा भागते हुए शहरो, या एक पर एक चढी आ रही सेनाओ मे दिखाई देता है जो हर कदम के साथ किसी देश को नक्शे से हटा देती है। किसी व्यक्ति को शतरज के मोहरे की तरह आगे बढा देती है या एक पर एक चढे मकानो के सामने गर्दन उठाये मानव को बौना बना देती है। यह सन्त्रास बीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण के लिए कोई नई बात नही है। सब जीते जा रहे है क्योकि जीवित है।

महानगरो मे जीवन की गति सिमट जाने के कारण रेगने वाले शहर भी लाल हरी बती के नियन्त्रण मे चलने लगे हैं। आधुनिकता के दौड मे हम शायद बहुत पीछे है, फिर भी यान्त्रिकता की विभीषिकता स्वाधीनता के बाद बहुत बढ गई है–

> "हर मकान की पीठ पर नये मकान हर दिन
> शहर की सीढी पर नया शहर,
> किन्तु नवागन्तुक के आने का बोध नही
> हर्ष नही, दु.ख नहीं, क्रोध नहीं।"[32]

इसके अतिरिक्त चिन्तन में एक प्रकार की सार्वभौमिक एकरूपता आने से यह स्थिति आ गई है–

> "मै किसी भी सडक पर निकल जाता और किसी भी
> बस पर आहिस्ता बैठ जाता हूँ मेरा कोई नाम नही।"[33]

(ङ) मृत्यु के एहसास का आतंक :

अस्तित्ववादी विचारधारा क्योकि महायुद्धो का परिणाम है, अत आसन्न मृत्यु का आतक मात्र उन्हे अपने से ही अजनबी बना देता है। जीवन की एक परिणति है, मृत्यु। आधुनिक मनुष्य की त्रासदी यही है कि वह जीवन और मृत्यु दोनो से ही नही उबर पाता। उसे जीवन के उत्तर मे ही प्रश्न मिलते है और मृत्यु के उत्तर मे भी–

> "जीवन क्या है? मृत्यु क्यो?
> मुक्ति कैसे? ईश्वर कहॉ?।"[34]

मृत्यु से इतना भयभीत है मनुष्य कि उसे हर गति में हर स्वर मे मृत्यु की ही पग ध्वनि सुनाई देती है –

> "सूखे पत्तो की – टूटती आवाज की,
> एक सुरी लय मे मृत्यु की पदचाप गूजती है"

इसी प्रकार की कुछ भावनाएं विजय देव नारायण साही ने भी अभिव्यक्त किया है। यद्यपि उन्हे मृत्यु का साक्षात्कार नही हुआ फिर भी किन्ही रातो मे–

> "देर तक मैने, अट्ठास और सगीत सुने हैं
> करीब तीसरे पहर जाकर, भयानक चीख सुनाई पड़ती है।"[35]

(च) ईश्वर की सत्ता में अविश्वास :

अस्तित्ववादी की तरह नया कवि भी ईश्वर को स्वीकार नही करता है। नया कवि नास्तिक नही है, लेकिन वह उन स्थापित मूल्यों के प्रति आस्तिक भी नही है जिनमे घटा बजाकर भगवान को जगाना और मन्दिर की देहरी पर माथा पटक कर प्रायश्चित करना ही आस्तिकता मानी जाती है। उनकी व्यस्तता उन्हे इतना समय ही नही देती कि वे ईश्वर के होने या न होने की समस्या पर बहस कर सके। ईश्वर के अस्तित्व मात्र तो उसके उत्तरदायित्व को समाप्त नही कर सकता। कवि को अपने पर आस्था ईश्वर मे विश्वास से अधिक है–

> "बार–बार अपने भीतर दोहराता हूँ, मैने जो कुछ किया।
> ठीक किया मै जो कुछ कर रहा हूँ, ठीक कर रहा हूँ।

मै जो कुछ करूँगा, ठीक करूँगा। अपने पर मेरी आस्था इतनी छोटी नही।

कि ईश्वर के कधे पर बैठकर ही इन पहाडियो के पार देख सके।"[36]

जिस ईश्वर की मृत्यु की बात नीत्शे ने की थी, वह इस युग के समस्त काव्य मे गायब है, उसका ईश्वरत्व कही खो गया है और उसके प्रभामण्डल का प्रकाश खण्डित हो गया है। ईश्वर के होने न होने से वैसे भी कुछ विशेष अन्तर नही पडता है–

"ईश्वर तो नही ही है सहा नही जाता अन्याय अगर,
तब यह बदबू भरी मास की कोठरी छोड दो वह तो नही ही है।"[37]

अस्तित्ववादी दृष्टिकोण काफी सीमा तक इस दृष्टिकोण के समकक्ष है। ईश्वर के अस्तित्व के प्रति दोनो निरपेक्ष है और दोनो ही ईश्वर को इतना महत्व भी नही देते कि उसके होने न होने पर विवाद करे।

अस्तित्ववादियो का विरोध ईसाइयो के ईश्वर से है जिसे वे व्यर्थ समझते है। साठ के बाद की कविता भी ईश्वर के किसी ऐसे रूप का विरोध करती है जिसके नाम के साथ सैकडो विश्वसनीय अविश्वसनीय दन्त कथाए जुडी हो।

ईश्वर का विचार मात्र इस काव्य के विपरीत पडने लगता है। अपने को निर्वासित किए हुए ये आत्म हारा केवल अपने लिए उत्तरदायी है और इनका उत्तरदायित्व ईश्वर के होने मात्र से इनके कंधे पर से नहीं उतर जाता।

इसके अतिरिक्त मुक्ति बोध की अधेरे मे कविता पर सार्त्र की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अधेरे मे कविता मुक्तिबोध की सबसे अधिक चर्चित एवं कलात्मक रचना है। कविता का प्रारम्भ जिन्दगी के अधेरे कमरो से होता है–

"जिन्दगी के कमरो मे अधेरे लगाता है चक्कर कोई एक लगातार।
आवाज पैरो की देती है सुनाई बार–बार   बार–बार,
वह नहीं दीखता नहीं ही दीखता, किन्तु वह
रहा घूम तिलस्मी खोह मे गिरफ्तार कोई एक।"[38]

और फिर वही कवि कहता है कि वह रक्त लोक स्नात पुरुष और कोई नही है,

"वह रहस्यमय व्यक्ति अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है,

पूर्ण अवस्था वह
निज सम्भावनाओ, निहित प्रभावो प्रतिमाओ की,
मेरे पूर्ण का आर्विभाव,
हृदय मे रिस रहे ज्ञान का तनाव,
वह आत्मा की प्रतिमा।"[39]

सार्त्र की विचारधारा का प्रभाव यहा स्पष्ट हैं, व्यक्ति को उसके अस्तित्व का मान उसे जन्म से ही नही प्राप्त हो जाता है, बल्कि धीरे–धीरे एक अवस्था आने पर स्वत ही इसका आभास उसे हो जाता है कि वह स्वय वही है। कोई दूसरा नही। मुक्तिबोध की उपर्युक्त पक्तियो मे कवि को उसी अस्तित्व बोध का भान हो रहा है।

जैसा कि कवि ने पहले ही स्पष्ट किया कि यह उसकी न पायी गई अभिव्यक्ति है

"जो लगातार घूमती है जग मे
पता नही जाने कहाॅ जाने कहाॅ, वह है।"[40]

और अभिव्यक्ति को पाने के लिए कवि उसी गलियो, सडको, पठारो, पहाडो, समुद्रो की खाक छानता फिरता है–

"खोजता हूँ पठार.. पहाड.. समुन्दर जहां मिल सके मुझे
मेरी खोयी हुई परम अभिव्यक्ति अनिवार आत्म संभवा।"[41]

जिस प्रकार सार्त्र के दर्शन की परिणति मार्क्स से प्रभावित साम्यवाद मे हो जाती है उसी प्रकार 'अधेरे मे' कविता में मुक्ति बोध का दृष्टिकोण भी अन्तत मार्क्स से प्रभावित हो उठता है–

"यह कथा नही है, सब सच है, हाॅ भाई।।
कहीं आग लग गयी कही गोली चल गयी!!"[42]

कवि ने कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी घटना की बार–बार पुनुरूक्ति से जन क्रान्ति का जो अविस्मरणीय माहौल पैदा किया है उसमे भव्याकार भवनो के विकृत चेहरे बेनकाब हो गये हैं।"[43]

हिन्दी कविता में आत्मजयी के अतिरिक्त ऐसी कोई कृति नही है जिसे पूर्ण अस्तित्ववादी स्वीकार किया जाये। आत्मजयी का नचिकेता अस्तित्व का

प्रश्न उस रूप मे उठाता है जिसमे अस्तित्व, प्रेम, युद्ध, मृत्यु, विषाद का पर्याय है। जिनसे पलायन किया ही नही जा सकता। ईश्वर विहीन समाज मे जीने वाले व्यक्ति का अकेलापन और मृत्यु आधुनिक सन्दर्भों मे मृत्यु है जो मनुष्य के होने को समाप्त कर देती है, क्योकि व्यक्ति मरता है, और अपनी मृत्यु मे वह बिल्कुल अकेला है विवश असात्वनीय।

हाइडेगर ने भी यही कहा है कि "मनुष्य ऐसे अकेला नही होता, केवल मृत्यु के समय ही उसे अपनी हताशा और विवश स्थिति का बोध होता है।"[44]

निराशा आज अधिक स्थायी है, घोर यथार्थ से उसकी मुक्ति नही होती और न ही नैराश्य से वह उबर पाता है–

"जिधर मार्ग उधर आगे पहले ही से एक कठिन अनिश्चय,
पीछे आ खडी होती है एक नयी दीवार जो पहले न थी।
एक डरावनी छाया और हिचकते पावो को धमकाकर आगे ढकेलते।
घातक इरादो के निमर्म इशारे किसी को फॉद जाने का जी चाहता है।"[45]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नयी कविता पर अस्तित्ववादी दर्शन का व्यापक प्रभाव रहा है। एक ओर अस्तित्ववादी दर्शन जहां साम्राज्यवाद पूजीवादी विचारधारा का विरोध का स्वर मुखर करती है वही नयी कविता ने व्यक्तिवादी आदर्शों के अनुरूप ही इसे स्वीकार किया है, अस्तित्ववादी विचारधारा से हटकर भी वैसे बहुत सी रचनाये हुई हैं जिन पर फ्रायड का प्रभाव परिलक्षित होता है उसका विवेचन आगे किया जा रहा है।

(स) नयी कविता पर मनोविश्लेषणवादी दर्शन का प्रभाव :

नयी कविता का काव्य सामाजिक और वैयक्तिक दोनो ही दृष्टियो से आभाव का काव्य है। यही अभाव व्यक्ति में कुठाएं और हीनभावनाएं उत्पन्न करने का उत्तरदायी है। नयी कविता में इसकी अभिवयक्ति क्षणवाद एव भोगवाद के रूप में हुई है। कवि ने अपने इन्ही आभावों और दमित इच्छाओ की अभिव्यक्ति काव्य के माध्यम से करता है–

"हजारो सालो से सूरज मरा हुआ पडा है
हजारो सालो से आकाश की छाजन चू रही है,
हजारो सालो से मरे बच्चे पैदा हो रहे है,

हजारो सालो से ताजी हवा के इश्तहार सासो मे छपे है
हजारो सालो से धूप का इतिहास धरती की छाती पर लिखा है
मुझे इस धरती को पढने से डर लगता है
मुझे क्षितिज की भूरी दीवारो से डर लगता है,
मुझे आसमान की निगाहे कुतरने से डर लगता है
यह दुनिया एक फाहशा औरत की अँधियारी डाली है–
मुझे इस फाहशा के प्यार मे यो ही
गुजरते जाने से डर लगता है बेहद।[46]

एक अपूर्ण सुख स्वप्न की स्मृति तृप्ति देती है किन्तु उसके बीत जाने का दर्द जो रिक्तता दे जाता है वह मन को कुठित कर देती है–

तुम यहा, बैठी हुई हुई थी अभी उस दिन
सेब सी बन लाल, चिकने चीड सी वह
बॉह अपनी टेक पृथ्वी पर, यहां इसपेड जड पर बैठ
मेरी राह मे उस धूप मे.. चाहता मन तुम यहा बैठी रहो,
उडता रहे चिडियों सरीखा वह तुम्हारा धवल आचल
किन्तु, अब तो ग्रीष्म, तुम भी दूर, और यह लू।''[47]

इसी प्रकार की अतृप्त और कुंठित यौन भावनाओ की अभिव्यक्ति गिरजा कुमार माथुर की निम्न पक्तियो मे भी देखा जा सकता है–

''गूँज रही पिछले रगीन मिलन की यादें
नींद भरे आलिंगन मे चूडी की खिसलन
मीठे अधरों की वे मीठी–मीठी बातें।''[48]

नयी कविता का कवि यौन भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए रीतिकालीन व छयावादी सस्कारो को छोड दिया। इन कवियो ने अपनी दमित व कुठित यौन भावनाओ की अभिव्यक्ति साफ–साफ एवं सहज भाव से किया, किसी कल्पना व प्रतीक का आवरण ओढकर नहीं।

''आह मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियो में उमड आई लहू की प्यास
प्यार है अभिशप्त तुम कहां हो नारि?''[49]

व्यक्ति का चेतन उसके अचेतन से प्रभावित व परिचालित रहता है। उसकी काम प्रेरक मनोवृत्तिया इसी अचेतन की ही उपज हैं, और इसकी

अभिव्यक्ति सहज भाव से न होने पर ये कुठित हो जाती है, और मनोविकार, व मानसिक रोगो का कारण बनती है इसलिए इसकी अभिव्यक्ति को फ्रायड अनिवार्य मानते है। शमशेर, केदारनाथ सिह, कुवर नारायण, और विपिन अग्रवाल की अधिकाश कविताओ मे भी यह बात देखी जा सकती है—

> ''वह मुझे एक बहुत बडे काफी हाउस मे ले गई,
> जहॉ गोल चीनी के वर्तनो की भरमार थी
> वृत्तो से मर्यादित सात समुन्दरो की दुनिया थी,
> उनके बीच मेरा समतल पन देख
> उसने मेरे दोनो हाथो को अपने हाथो मे ले लिया,
> वह मुझे एक बहुत बडे मेले मे ले गई,
> जहॉ सब खुश थे सबको बडा मजा आ रहा था,
> वहॉ मुझे खाली हाथ देख,
> उसने अपनी दृष्टि मे मुझे बाध हल्के से चूम लिया
> वह मुझे एक सजे सजाये कमरे मे ले गई,
> जहॉ कुर्सिया थी मेजे थी और उसकी प्रिय,
> कुत्तो की नस्ले और नीली पीली बिल्लियां थी,
> उनके बीच मुझे परेशान देख उसने वहॉ मुझे
> रूकने के लिए अपनी दो टॉगे उधार दे दीं
> इसी को सच समझे, तबसे मैं कही गया नही,
> यहीं पडा हूँ।''[50]

इस कविता मे सभी विम्ब यथार्थ जीवन के और बहु परिचित है। वह स्त्री अचेतन मन की प्रेरक शक्ति काम वृत्ति है जो ससार में आये एक अजनबी को, जो स्वय कवि है, आधुनिक जीवन के मंच पर प्रतिष्ठित करती, उसकी अव्यवहारिकता, अकिचनता, अपंगता को अपनी अजस्र प्रेरणा शक्ति से दूर करके उसे दुनियादार बनाती है।

नयी कविता मे यौन प्रतीको के अधिक्य केवल मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव ही नही हैं, सत्य तो यह है कि इन प्रतीकों का सम्बन्ध व्यक्ति की काम वासना से उतना नहीं है जितना कि काव्य पर लगाये गये शुद्धतावादी निषेधो से है। काव्य क्योकि एक काल्पनिक स्वर्ग की अनुभूति देने वाला माना जाता रहा है। अत किसी भी प्रकार की अतृप्ति अभाव अथवा वैयक्तिक पीडा का

स्थान उसमे नही हो सकता था। छायावादी कविता मे अपनी बातो को कहने के लिए प्रकृति का माध्यम लिया गया, किन्तु नयी कविता हर बात को निरावृत कर प्रस्तुत करने लगी। जो कुछ कवि की अनुभूति थी उसे स्वर देने के लिए मेघ और सूर्य की छाया का आश्रय लेने की आवश्यकता नही पडी। इस अतृप्त, आभाव तथा वैयक्तिक भावो की अभिव्यक्ति के लिए मनोविश्लेषणवाद एक आधार के रूप मे अवश्य उपस्थित रहा।

धर्मवीर भारती की कविता प्रणय की किशोर भावना से भरी हुई है उसकी कोमलता को व्यक्त करने के लिए श्री भारती ने किन्ही सकोचमय प्रतीको और विम्बो को नही लिया है–

> "सोन जूही की पखुरियो पर पले
> ये दो मदन के बान मेरी गोद में।
> हो गये बेहोश दो नाजुक मृदुल तूफान मेरी गोद मे।"[51]

इसी प्रकार की भावना से भरी एक अन्य पक्ति श्री भारती जी की द्रष्टव्य है–

> "मृनालों सी मुलायम बॉह ने सीखी नही, उलझन,
> सुहागन लाज मे लिपटा शरद की धूप जैसा तन
> ॲधेरी रात मे खिलते हुए बेले सरीखा मन।
> पंखुरियों पर भॅवर के गीत सा मन टूटता जाता
> मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत
> बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद।"[52]

इन दोनो ही कविताओ को धर्मवीर भारती ने 'गुनाहो के गीत' कहा है। गुनाह सभवत इसलिए कि ऐसी निर्भीक और स्पष्ट उक्तिया द्विवेदी युगीन निर्देशो ने निाद्धि कर रखी थीं और उन निषेधो का उल्लघन गुनाह के अतिरिक्त और कुछ नहीं माना जाता।

नयी कविता मे बहुत सी कविताएँ फैंटेसी, शीर्षक देकर लिखी गई है, और इन कविताओं मे भी दमित यौन भावनाओ की अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। अजित कुमार की 'फैंटेसी' शीर्षक कविता का कुछ अश इस प्रकार है–

"एक सपना ऑख मे झलका
ऑसुओ से बनी, दुख के देश की लज्जावती रानी
थिरक कर किसी तारे से उतर आई बडे अनजान मे।
जगमगाता सा अतीन्द्रय रूप, स्वप्नो से रगा परिधान,
वह अज्ञातनामा राजकन्या प्राण मे घिरने लगी,
एक मण्डप मे अपरिचित वेदमत्रो बीच
गठबन्धन किये, छाया सलीखी, भॉवरे फिरने लगी।
\+ + + + + + +
शुभ्र वसना बधू आगे चली, पीछे मे विमोहित सा
नगर–पथ विजन वन सब छोडता बढता गया।
बडा कोहरा, राजकन्या खो गयी, छाया ॲधेरा,
मै शिलाओं पत्थरो पर दूर तक चढता गया।
एक पर्वत के हिमाच्छादित शिखर पर मैं खडा,
नीचे अतल सागर उफनता औ हिलोरे मारता
रह गया मैं चीख से अपनी, गुफाओ कन्दराओ मे
बसे निर्दय अदर्शित शून्य को गुजारता ...
फिर, अचानक प्रियतमा मेरी, गरजते अतल जल से,
जलपरी जैसी उभर कर पास मेरे आ गयी,
बॉह में भर कर, मुझे भी साथ ले कर, होंठ पर
रख होठ, फिर से लहर बीच समा गयी।"[53]

नयी कविता के कुछ कवियों ने अपनी रचना मे दमित भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए काम प्रतीको का भी प्रोग काफी मात्रा मे किया है। काम वृत्ति के प्रतीकात्मक विम्बो का प्रयोग कीर्ति चौधरी की कविताओ मे भी काफी दिखाई पडता है। उनकी 'बरसते है मेघ झर–झर" शीर्षक कविता मे बादल के झर–झार बरसने और धरती के भीगने का विम्ब काम प्रतीक हैं और यह कामना भी–

"चाहता मन, छोड दूँ, निर्बन्ध तन को
यही भीगे, भीग जाये देह का हर रन्ध्र
रन्ध्रों मे समाती स्निग्ध रस की धार
प्राणो मे अहर्निस जल रही ज्वाला बुझाये।
भीग जाये, भीगता रह जाय यह उत्ताप।"[54]

हिन्दी साहित्य मे रीतिकाल की निर्बाध श्रृगारिकता भारतीय नैतिकता की कठोरता की ही प्रतिक्रिया है। यह प्रतिक्रिया नयी कविता में मनोविश्लेषणवादी दार्शनिक आधार लेकर एक विद्रोह के रूप मे प्रकट हुई है। रघुवीर सहाय की कविताओ मे यौन वर्जनाओ से विद्रोह की भावना बहुत ही सामान्य और घरेलू बिम्बो के रूप मे अभिव्यक्त हुई है।

"थके–थके एक दूसरे को उघरे देखे और न शरमाये
कानो के पीछे का मैल निकल जाने दो।"[55]

अज्ञेय के काव्य मे भी यौन प्रतीको का अभाव नही है –

"घिर गया नभ उमड आये मेघ काले
भूमि के कंपित उरोजो पर झुका सा
विशद, स्वासाहर, चिरातुर छा गया इन्द्र का नील वक्ष –
बज्र सा, यदि तडित से झुलसा हुआ सा।"[56]

अपने वक्तव्य मे उन्होंने स्वीकार किया है कि, "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओ का पुज है।.. आज के मानव का मन यौन परिकल्पनाओ से लदा हुआ है और वे कल्पनायें सब दमित और कुण्ठित हैं। उसकी सौन्दर्य चेतना भी इससे आक्रान्त है उसके उपमान भी सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं।"

अज्ञेय का उपर्युक्त कथन नयी कविता पर मनोविश्लेषण दर्शन के प्रभाव के सन्दर्भ मे अक्षरशः सत्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 श्रीकान्त वर्मा 'मार्या दर्पण' शीर्षक कविता से उद्धृत।

2 रघुवीर सहाय एक अधेड भारतीय आत्मा' कविता से उद्धृत।

3 मुक्तिबोध चॉद का मुँह टेढा अधेरे मे, सम्पादक अशोक चक्रधर, पृष्ठ–52 से उद्धृत।

4 अज्ञेय 'हरी घास पर क्षण भर' शीर्षक कविता से उद्धृत।

5 कुवर नारायण आत्मजयी' शीर्षक कविता से उद्धृत।

6 सैय्यद सैफुद्दीन मोहन अवस्थी, हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, पृष्ठ–313 से उद्धृत।

7 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 'वह खिडकी' शीर्षक कविता से उद्धृत।

8 रघुवीर सहाय 'एक अधेड आत्मा' शीर्षक कविता से उद्धृत।

9 डॉ0 राम गोपाल सिह चौहान आधुनिक हिन्दी साहित्य राजनाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–668 से उद्धृत।

10 पत राजनाथ शर्मा–हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–668 से उद्धृत।

11 दिनकर वही, पृष्ठ–668 से उद्धृत।

12 नरेन्द्र शर्मा 'रक्तचन्दन' शीर्षक कविता राजनाथ शर्मा, हिन्दी साहित्य का वि0 इतिहास, पृष्ठ–669 से उद्धृत।

13 माखन लाल चतुर्वेदी 'युगचरण' राजनाथ शर्मा, पृष्ठ–669 से उद्धृत।

14 दिनकर 'नील कुसुम' राजनाथ शर्मा, वही पृष्ठ–669।

15 गोपाल दास 'नीरज' 'नील के बेटी के नाम पाती' शीर्षक कविता राजनाथ शर्मा हि0सा0 का विवेचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–670 से उद्धृत।

16 धर्मवीर भारती 'जिज्ञासा'' राजनाथ शर्मा, वही, पृष्ठ–672 से उद्धृत।

17 जगदीश गुप्त 'नॉव के पॉव' शीर्षक कविता राजनाथ शर्मा हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृष्ठ–673 से उद्धृत।

18 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना राजनाथ शर्मा, पृष्ठ–673।

19 श्रीमती शान्ता सिन्हा 'समानान्तर सुने' वही, पृष्ठ– 674 से उद्धृत।

20 घनश्याम अस्थाना वही पृष्ठ–675 से उद्धृत।

21 तीसरा सप्तक कुँवर नारायण, पृ० 273।

22 दूसरा सप्तक नरेश कुमार मेहता, पृ० 124।

23 नॉव के पॉव जगदीश गुप्त, पृ० 21।

24 इत्यलम अज्ञेय

25 आत्मजयी कुँवर नारायण पृ० 120।

26 चक्रव्यूह कुँवर नारायण, पृ० 125।

27 आलोचना नामवर सिह, 1968 जनवरी/मार्च अक से उद्धृत।

28 सक्रान्त कैलाश वाजपेयी, पृ० 1 ।

29 वही, पृ० 73।

30 एक सूनी नॉव सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० 31 ।

31 चॉद का मुॅह टेढा है मुक्तिबोध, पृ० 148।

32 माया दर्पण श्रीकान्त वर्मा पृ० 61 ।

33. वही, पृ० 18 ।

34 आत्मजयी कुँवर नारायण, पृ० 108।

35 विजय देव नारायण साही राम विलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद के पृ० 105 उद्धृत।

36 एक सूनी नॉव सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० 29—30।

37 देहान्त से हटकर कैलाश वाजपेयी पृ० 46।

38 अधेरे मे मुक्तिबोध

39 अधेरे मे मुक्तिबोध

40 अधेरे मे मुक्तिबोध

41 अधेरे मे मुक्तिबोध

42 अधेरे मे मुक्तिबोध

43 हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास डॉ० मोहन अवस्थी पृ० 323 से उद्धृत।

44 मेरी वारनाक एक्झिश्टेशियल एथिक्स, पृ० 14 से उद्धृत।

45 आत्मजीय : कुँवर नारायण, पृ० 42।

46 दूधानाथ सिह 'अपनी शताब्दी' के नाम, पृ० 4 ।

47 नेरश मेहता 'बोलने दो चीड को' पृ० 3 ।

48 गिरजा कुमार माथुर 'तारसप्तक', सम्पादक अज्ञेय, पृ० 44 ।

49 अज्ञेय 'इत्यलम' पृ० 157 ।

50 विपिन अग्रवाल 'एक आत्म कथन' नयी कविता अक 5–6 पृ० 150 ।

51 दूसरा सप्तक धर्मवीर भारती, पृ० 188 ।

52 वही, पृ० 184 ।

53 अजित कुमार 'फैटेशी' शीर्षक कविता अकेले कठ की पुकार पृ० 15 ।

54 कीर्ति चौधरी 'बरसते मेघ झर–झर' शीर्षक कविता से, शम्भू नाथ सिह, 'प्रयोगवाद और नयी कविता' पृ० 170 से उद्धृत।

55 रघुवीर सहाय 'आओ नहाये' सीढियो पर धूप मे शीर्षक कविता पृ० 126 ।

56 इत्यलम अज्ञेय, पृ० 144 ।

पंचम–अध्याय

नयी कविता के बाद की हिन्दी कविता

नयी कविता के बाद की हिन्दी कविता

कविता को काल खण्डो मे विभाजित करने के अपने खतरे होते है। कविता जिस काल मे स्थिति प्राप्त करती है उसकी एक लम्बी प्रवाहमान धारा होती है। जिस भाषा मे कविता लिखी जाती है उसे कोई एक कवि या कुछ आदमी मिलकर नही बनाते। शब्दो की एक बहुत लम्बी परम्परा है कवि जिन स्मृतियो और कल्पनाओ से काव्यानुभव को भाषा मे रचता है वह बरस दो बरस की नही होती है उनका भी एक लम्बा बहुत लम्बा सस्कार होता है, इसलिए जब हम कविता को किसी छोटे काल खण्ड मे बाट कर पहचानने की कोशिश करते है तो उसके खतरो के प्रति सचेष्ट रहना आवश्यक हो जाता है।

नयी कविता के बाद की हिन्दी कविता या साठोत्तर कविता मे केवल उन्ही कवियो को नही शामिल किया गया है जिन्होने सन् 1960 के बाद कलम पकडना शुरू किया, बल्कि इस काल खण्ड मे तीन–तीन पीढियां साथ–साथ लिख रही है। एक अज्ञेय, शमशेर, नागार्जुन और मुक्तिबोध की पीढी है, तो दूसरी सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, मोहन अवस्थी, तथा केदारनाथ सिह आदि के समकालीनो की तीसरी धूमिल और बाद के कवियों की।

नयी कविता के बाद हिन्दी कविता विविध आन्दोलनो की कविता रही है। अपने समसामयिक पत्र–पत्रिकाओ में वह अनेक चर्चित नामों के रूप मे सामने आयी। 'अकविता' न कविता 'अस्वीकृत कविता', 'युयुत्सवादी कविता', 'प्रतिबद्ध कविता', 'भूखी पीढी की कविता', 'नंगी पीढी आदि विभिन्न पीढियां उभरने लगी।

पीढी आधारित वर्गीकरण एक अवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। इसलिए इन सभी की चर्चा विषयान्तर होने के नाते करना व्यर्थ है। यहां फिर भी श्मशानी पीढी का एक नमूना देखा जा सकता है–

> "गगा पार करते हुए मुझे लग रहा है कि मै, पार
> पार कर रहा हूँ पृथ्वी की सार्वजनिक योनि से"[1]

ऐसी कविता को पढने से किसी दर्शन या विचार की अनुभूति नही होती सिवाय जुगुप्सा या घृणा के ऐसी कविताएं मानसिक दीवालिएपन एव विचार

शून्यता की प्रतीक है। इनका मुख्य उद्देश्य पाठको को चौकाने के लिए नये–नये हथियार इजाद करना था, पढने के पश्चात् पाठक को चाहे उल्टी ही क्यो न हो जाये। कुछ स्पर्धा, कुछ 'द्वेष और कुछ बीटनिक' तथा 'हिप्पी', 'सस्कारो के प्रभाव से अनेक प्रकार की कविताए सामने आईं।'

(क) युयुत्सावादी कविता :

सर्वप्रथम युयुत्सा पत्रिका मे युयुत्सावादी कविता की बात उठाई गई। इसके पश्चात् 'रूपाबरा' 1966 के अक मे उसे स्थापित करने की चेष्टा हुई। श्लभ श्री राम ने 'साहित्य सर्जन की मूल प्रेरणा' 'आदिम युयुत्सा' को ठहरा कर उसके विभिन्न आयामो को कविता मे विम्बित करने पर बल दिया। युयुत्सा के जिजीविषावादी, मुमूर्षावादी, विद्रोहात्मक आदि कितने ही रूप हो सकते है। युयुत्सावादी कविता इन सभी रूपो की कविता है। लेकिन इसे किसी दार्शनिक या वैचारिक निकष पर यदि परखा जाये तो इसमे इस प्रकार का कोई तत्व विद्यमान नही है जिसे कि दर्शन या उसका प्रभाव कहा जा सके।

(ख) अकविता :

डॉ० श्याम परमार ने 'अन्तर्विरोधों की अन्वेषक, कविता को 'अकविता' नाम दिया। सन् 1965 में 'अकविता' पत्रिका में इसका अनुमोदन हुआ। धीरे–धीरे उसको व्याख्यायित करके उसका दायरा और बढाया गया। निष्कर्ष यह कि अकविता व्यक्ति के अकेलेपन और उसकी काम, कुंठाओ का चित्रण करती है। जो कुरूप है उसे अनावृत्त करती है और जो अनावृत्त है उसे प्रस्तुत करती है। आत्म रति एवं विकृत सम्बन्धों पर टिका सभी कुछ 'अकविता' का दृश्य है।[2]

> "जोरू के गुलाम साले तमाम मर्द
> पतलूनों के ढीले पायचे चढाकर
> सडकों पर घूमते"[3]

राज कमल चौधरी, कैलाश वाजपेयी, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्र मोहन आदि अकवितावादी कवि है। राज कमल चौधरी इस दशक के अगुआ थे, एव इनमे आधुनिकता अपनी समग्रता मे दिखाई पडती है। इनका आक्रोश एव गुस्सा परवर्ती परम्पराओ एव मूल्यो को नकार यौन विद्रूपताओ की

अभिव्यक्ति रूप मे व्यक्त हुआ है। चौधरी के काव्य के अलबम मे वेश्या, बीमार, शहर, सडे गोश्तो वाली औरतो के सभोग के फूहड चित्रो की कमी नही है। इसके पूर्व की मनोविश्लेषण दर्शन से प्रभावित कविता की तुलना में इसमे घृणा व जुगुप्सा के भाव अधिक हैं। फ्रायड की काम भावना मे प्रेम सन्नहित था जबकि अकविता मे विक्षिप्त मनस् की हबस ही का चित्रण है जिसका प्रभाव पाठक के मन मे मिचली का भाव उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार यह कविता भी किसी दार्शनिक छवि को प्रस्तुत नही कर पाती है। राज कमल चौधरी की 'ककावती' और 'मुक्ति प्रसग' के अध्ययन द्वारा इस दशक की नब्ज को देखा जा सकता। श्री चौधरी ककावती की भूमिका मे स्वय लिखते है–"कका से विवेक हीन घृणा, आसक्ति, हिसा, सभोग, ईर्ष्या क्षमा विरति, हिसा सभोग आक्रमण घृणा, ईर्ष्या, पशुत्व सभोग करते हुए मैने प्रतिक्षण अपने अहम् और अस्तित्व को प्रमाणित किया है।"[4] ये प्रवृत्तिया ककावती की ही नही बल्कि पूरे दशक की है। सभोग को तीन बार दुहराया गया है। जाहिर है इसमे सभोगात्मक नोट्स अधिक है।

कैलाश वाजपेयी के 'संक्रान्त' मे समूचे पीढी की अनास्था अभिव्यक्त है–

"चिल्लाती धूप मे, बदहवास रात मे
कही किसी गटर पर
हम खुली पलके सो जायेगे
हमे अब किसी व्यवस्था मे डाल दो
–(जी जायेंगे)"[5]

स्वतन्त्रता के बारे में कवि कहता है–

"एक सिलकी तरह गिरी है स्वतन्त्रता
और पिचक गया है पूरा देश।"[6]

जगदीश चतुर्वेदी का एक काव्य सग्रह 'इतिहास हता' जिसमे भय, अजनबियत, भदेसपन, सेक्स आदि का वर्णन और सुन्दर लडकियों को रस्से मे बाधकर कोलतार की सडक पर घसीटते देखने मे सुखानुभव, स्तनों को दॉत से काटकर थूक देने मे आनन्द। ये सभी विक्षिप्त मानसिकता का पर्याय है। इनके पीछे कोई दार्शनिक आधार नही है।

(ग) अस्वीकृत कविता :

जुलाई सन् 1966 मे उत्कर्ष' पत्रिका के माध्यम से श्री राम शुक्ल ने सभोगानुभव को ही काव्योत्कर्ष का कारण मानते हुए 'अस्वीकृत कविता की पेश बन्दी की। उन्होने 'मरी हुई औरत के साथ सभोग' शीर्षक कविता लिखकर अपने सिद्धान्त की खुले दिल से व्याख्या करते हुए कहा "सभोग का अनुभव ही पर्याप्त है सात महाकाव्य लिखे जाने के लिए।" और उन्होने महाकाव्य सप्तक गर्भित अपने उस अनुभव की अभिव्यक्ति किस बेबाक ढग से की–

राज्य का तख्ता उलट कर
नये लडको ने किया देश पर अधिकार–दूसरी खबर

तीसरी खबर –

किसी ने आज अपनी प्रेमिका की योनि पर तेजाब छिडका।
अब आप पूरी खबरे सुनेगे।"[7]

इस प्रकार की कविताओ का भाव अकविता के समान ही हैं व इसमे भी कोई दार्शनिक तत्व हमें नहीं देखने को मिलता है।

'नयी कविता के बाद कई नाम आये जैसा कि जगदीश गुप्त ने नयी कविता अंक 8 के 'किसकम–किसिम की कविता' शीर्षक लेख मे इन कविताओ की एक लम्बी सूची दी थी लेकिन तब से अब तक न जाने कितने नारे गूजकर हवा मे उड चुके हैं।[8] इसी बीच सन् 1978 ई0 मे विचार कविता नामक नारा बुलन्द किया गया, इसके समर्थको का कहना था कि कविता शुष्क विचारो पर आधारित है, एव पाठक से तादात्म्य कर सकने मे समर्थ नहीं है। लेकिन विचार कविता जैसी कोई धारा हिन्दी साहित्य मे प्रतिष्ठापित नही हो सकी।

एक प्रकार से यदि देखा जाये तो ये सभी काव्यान्दोलन नयी कविता के उत्तरवर्ती विकास का ही प्रतिफल है। इनका बहुत कुछ नजरिया नयी कविता के समान ही है। गद्यात्मकता का विरोध नही करके बल्कि उसे अपनाये रखा। इन सभी का उद्देश्य अपनी कविता में विचित्रता उत्पन्न करके पाठको का ध्यानार्कर्षण प्राप्त करना भले ही इसके लिए इन्हें गाली या भौंडे शब्दावली का प्रयोग ही क्यो न करना पडे।

(घ) नयी कविता के बाद की (साठोत्तर) हिन्दी कविता पर मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव :

नयी कविता के बाद की हिन्दी कविता नवीन अभिरूचि नवीन सौन्दर्य बोध और नये सवेदन की कविता है। रोमाटिक भावुकता के स्थान पर यथार्थपरक बौद्धिकता, सयम सुरूचि, सतुलन और भद्रता के स्थान पर सच्चाई साहस और खरापन, मासृण और कोमल के स्थान पर अनगढ की स्वीकृति, समझौता और यथास्थितिवाद के स्थान पर सघर्ष और विद्रोह का आग्रह, परम्परागत मूल्यवादी दृष्टि के स्थान पर अनास्था और मूल्यहीनता का स्वर, अलकृत भाषा के स्थान पर बेलौस सपाट बयानी तथा आक्रोश, क्षोभ, उत्तेजना तनाव और छटपटाहट आदि सक्षेप मे साठोत्तर कविता की विशेषताए है। पर यथार्थ के नाम पर उच्छृखल अभिव्यक्ति, सच्चाई और साहस के नाम पर आक्रामक नग्नता, विद्रोह के नाम पर बडबोलापन, और यौन विकृतियो का प्रदर्शन, सपाट बयानी के स्थान पर सतही बयानबाजी, और तनाव के नाम पर अतिनाटकीय मुद्रा भी साठोत्तर कविता मे कम नही है, बल्कि ज्यादा ही है।[9]

(i) जनवादी कविता :

सन् 1970 के आस—पास आते—आते हिन्दी कविता अपने इस पुराने स्वर को त्यागने पर मजबूर हो जाती है। आजादी के बीस वर्षो के अनुभव, स्वतन्त्रता के समय के मूल्यों एव मानदण्डो का टूटना, जिन आदर्शों को जनमानस अपने हृदय मे सजोये था, उसका तिरस्कार, स्वतन्त्रता के समय निश्चित नीतियो, विकास योजनाओ आदि से जनता मे विश्वास था कि स्वतन्त्र भारत उनके सपनो का भारत होगा, लेकिन तथा कथित, राजनेता, एव नौकरशाही भ्रष्टाचारियो ने समूची व्यवस्था को व्यवस्थित भ्रष्ट्राचार द्वारा दीमक की तरह चाटकर खोखला बना दिया। इसी बीच चीन और पाकिस्तान से लडाई, एव 1967 के भयकर आकाल ने हमारी अर्थव्यवस्था की रही सही कसर भी निकाल ली, ऊपर से राजनेताओ एव नौकरशाही का शोषण, आदि कुछ ऐसे कारण रहे जिससे कि जनमानस में एक विद्रोहात्मक चेतना का सचार हो रहा था। जिसकी अभिव्यक्ति 'जनवादी' रचनाकारों द्वारा समय—समय पर अपनी रचनाओ मे किया गया है। ये जनवादी कवि चूकि प्रगतिशील चेतना से सम्बन्धित रहे इसलिए इन पर मार्क्स के विचारो का प्रभाव लाजमी था। सन् साठ तक

आते–आते हिन्दी कविता की मुख्यधारा मे जो स्थिरता आ गई थी प्रयोग का आग्रह लेकर बढने वाली हिन्दी नयी कविता ने भी जाने अनजाने अपना एक कविता सस्कार बना लिया था, साठ के बाद के कवियो ने इन काव्य सस्कारो से अपने को मुक्त करने का प्रयास किया तथा पुराने काव्य रूढियो को तोडा। अपनी कविता का पूर्ववर्ती कवि/कविताओ से अन्तर बताते हुए रघुवीर सहाय लिखते है।–

> "कितना अच्छा था छायावादी
> एक दुख लेकर वह एक गान देता था
> कितना कुशल था प्रगतिवादी
> हर दुख का कारण पहचान लेता था।
> कितना महान था गीतकार
> जो दुख के मारे अपनी जान देता था।
> कितना अकेला हूँ मै इस समाज मे
> जहां सदा मरता है एक और मतदाता।"[10]

मरते हुए मतदाता को कविता के केन्द्र मे लाने की कोशिश राजनीति को कविता के केन्द्र मे लाने की कोशिश थी जो साठोत्तर कविता की एक विशेष उल्लेखनीय प्रवृत्ति है। ये सब कुछ एकाएक नही हो गया कि अब तक जो कवि प्रेम एव यौवन/यौन के गीत गा रहे थे वे राजनीतिक कविताएँ लिखने लगे। इसके पीछे तत्कालीन परिस्थितिया और इन परिस्थितियों को उत्पन्न करने वाले तथाकथित भ्रष्ट राजनीतिज्ञ थे जो कि शोषण को बढावा दे रहे थे। दरअसल आज के युग मे राजनीति से जूझना कवि कर्म का एक महत्वपूर्ण अग है। राजनीति आज की मानव–नियति को नियन्त्रित करने वाली शक्तियों मे प्रमुख है अत उसे इन्कार करने का अर्थ सच्चाई को इनकार करना है, भारत जैसे अल्प विकसित लोकतन्त्र में रहने वाले कवि के लिए तो यह और भी आवश्यक है। नयी कविता के बाद की (साठोत्तर कविता) हिन्दी कविता अगर जुलूस, नारा, लाठी चार्ज, कर्फ्यू, चुनाव, मतदान, भीड और ससद की बात करती है तो वह इसीलिए कि वह मनुष्य को उसके सही परिवेश मे रखना चाहती है। हॉ इस प्रसग मे यह स्वीकार करना ईमानदारी होगी कि सातवे दशक मे ढेर सारी कविताओं मे उपर्युक्त शब्दो को चालू मुहावरों की तरह इस्तेमाल करके राजनीति को एक फैशन का रूप दिया गया जिससे कविता समर्थ होने की जगह भ्रष्ट भी कम नही हुई। वस्तुत. राजनीति के लिए कविता का इस्तेमाल

करने और कविता के लिए राजनीति का उपोग करने मे फर्क है। इस सन्दर्भ मे पहली पीढी के कवियो 'नागार्जुन' और बीच की पीढी के कवियो रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल और केदारनाथ सिह का उल्लेख प्रासगिक होगा।

साठोत्तर पीढी के कवियो मे 'धूमिल' जो एक महत्वपूर्ण कवि के रूप मे उभरे और अपने समय के कवियो पर जिनका सबसे अधिक प्रभाव पडा, की कविता सच्चे अर्थों मे 'सडक और ससद' अर्थात जनता और जनतन्त्र की कविता है। धूमिल की सारी शब्दावली सामाजिक राजनीतिक ससार की शब्दावली है। वह सही अर्थों मे सामाजिक राजनीतिक चेतना के कवि है। आजादी के पन्द्रह–बीस वर्षों बाद भी जब एक देश आत्मनिर्भर न बन सका उल्टे वह और भी समस्यापूर्ण बन गया, बढती हुई सामाजिक आर्थिक विसगतियो ने जनता का प्रजातत्र से मोह भग कर दिया। सन् साठ के बाद की इसी स्थिति का चित्रण रघुवीर सहाय ने अपनी निम्न पक्तियो मे किया है–

"बीस बरस बीत गये
लालसा मनुष्य की तिलमिलाकर मिट गई।"[11]

इसी मोह भग और वर्तमान व्यवस्था के प्रति असहमति व्यक्त करती हुई 'धूमिल' की कविता आगे बढती है–

"बीस साल बाद और इस शरीर मे
सुनसान गलियों से चोरो की तरह गुजरते हुए
अपने आप से सवाल करता हूँ–
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रगों का नाम है,
जिन्हे एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।"[12]

चौथे आम चुनाव मे कांग्रेस की पराजय से सत्ता हथियाने के लिए वह घुडदौड मची की पूंछिए मत गैर काग्रेसी सरकार ने छ महीने में वह सब कुछ कर दिखाया जो काग्रेसियो ने बीस वर्षों मे नही किया था। नयी पीढी के कवियो का लोकतन्त्र से विश्वास डिगना स्वाभाविक था–

लोकतन्त्र को जूते की तरह लाठी मे लटकाये,
भागे जा रहे सभी सीना फुलाये।[13]

सन् 1947 ई० की आजादी आर्थिक असमानता को दूर करने वाली न होकर मात्र राजनीतिक आजादी ही रही है। विदेशों के समानान्तर स्वदेशी विदेशियो ने राजसत्ता को सभाला। जिसमे मुख्य रूप से पूजीपतियो तथा जमीदारो का ही वर्चस्व रहा। जिसने अपने स्वार्थ से आम जनता के हितो को दूर रखा। जिससे सर्वहारा, सर्वहारा ही रह गया। पुराने जीवन के ढर्रे से नये जीवन के ढर्रे मे कोई बदलाव नही आया। धूमिल ने लिखा है–

"और हर बार मुझे लगा है कि कही,
कोई खास फर्क नही है
जिन्दगी उसी पुराने ढर्रे पर चल रही है
जिसके पीछे कोई तर्क नही है।"[14]

देशकी वर्तमान स्थिति से अच्छी तरह से परिचित धूमिल की कविताओ मे शोषण तत्र की शिकार मानवता के उज्ज्वल भविष्य की कामना के भी दर्शन होते है लेकिन यह सपना साकार न हो सका–

"मैंने इन्तजार किया–
अब कोई बच्चा भूखा रहकर, स्कूल नही जायेगा
अब कोई छत बारिश मे नही टपकेगी,
अब कोई आदमी कपडो की लाचारी मे
अपना नगा चेहरा नही पहनेगा।
अब कोई दवा के अभाव में
घुट–घुट कर नही मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नही छीनेगा
अब वह जमीन अपनी है, आसमान अपना है
जैसा पहले हुआ करता था–
सूर्य, हमारा सपना है
मै इन्तजार करता रहा।"[15]

परन्तु यह अभिलाषाा कवि के समक्ष विगत बीस वर्षों मे दम तोडती नजर आयी। आजादी झूठी प्रतीत होने लगी कुछ इसी प्रकार की मनोदशा का चित्रण लीलाधर जगूडी की निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है–

"सूचना विभाग के हर पोस्टर पर
खुशहाली है चारो ओर

कगाली के पास आटा नही गाली है
और जिस पर कोई नही खाना चाहता
आजादी एक जूठी थाली है।"[16]

निश्चित रूप से सन् 60 के बाद जागरूक जनता को मोहभग का तीखा एहसास होने लगा था और देश के कोने–कोने मे विद्रोह का स्वर सुनाई देने लगा था। एक तरफ जहा छठे दशक की युवा पीढी की कविता नयी कविता द्वारा स्थापित की गयी मूल्यो के साँचे को तोडती हुई जनवादी लेखन परम्परा को जीवन्त दिशा प्रदान करती है। वही पूजीवादी शोषण व्यवस्था के खिलाफ आवाज बुलन्द करने की अहम् भूमिका भी निभाती है और शोषणहीन समाज की स्थापना की दिशा में पहल करती हुई विद्रोहात्मक रूख अपनाती है। इनमे सामाजिक परिवर्तन की तीव्र उत्कठा थी। सामाजिक परिवर्तन के लिए जनता को जगाने की जरूरत पडती है। केदार नाथ सिह ने अपनी एक कविता मे लिखा है–

"यह समय है जब आदमी को
चमत्कार के बारे मे फिर से सोचना चाहिए।"

धूमिल जैसे विद्रोही कवि इस व्यवस्था की अनियमितताओ और कमियो को महसूस करते हैं और अपनी कविता मे विद्रोह का स्वर देते हुए जनता से सयुक्त मोर्चा बनाने के लिए और सही जनतन्त्र कायम करने के लिए कहते है–

"आओ यह नर्णय ले हम दोनों मिलकर
अपने जानने और अपने नकारने का
एक सयुक्त मोर्चा बनाये
आज की भूख से अगले पडाव तक लिख दे
यह रास्ता जनतन्त्र को जाता है।"[17]

धूमिल जनतन्त्र को बुर्जुआ वर्ग का नकाब मानते थे जिसे ओढकर वह अपने विष मुँही चेहरे को छिपाता है। गरीबो की गरीबी से खेलने वाले शोषकों की खबर लेते हुए धूमिल लिखते है–

"एक आदमी रोटी बेलता है, एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी है, जो न रोटी बेलता है और न खाता है।
वह सिर्फ रोटी से खेलता है, मैं पूछता हूँ–
"यह तीसरा आदमी कौन हैं?,
मेरे देश की संसद मौन है।"[18]

धूमिल की उपर्युक्त कविता सीधे पूजीवादी शोषण व्यवस्था पर प्रहार करती है, तथा वह तीसरे आदमी को लेकर ससद से सवाल करती है। इस कविता पर मार्क्सवादी दर्शन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

धूमिल की कविता समूचे देश और जनता को शोषण से मुक्ति दिलाने की राह तलाशती है। इस तलाश मे वह विद्रोह करती है। वर्ण–वर्गविहीन समाज की स्थापना हेतु धूमिल की कविता जनक्रान्ति का आह्वान करती है।

''इसलिए उठो अपने भीतर,
सोये हुए जगल को आवाज दो
उसे जगाओ और देखो–
कि तुम अकेले नही हो और न किसी के मुहताज हो,
लाखो है जो तुम्हारे इन्तजार मे, खडे है वहा चलो।''[19]

समूहगत चेतना पैदा करने वाली उपर्युक्त पक्तिया धूमिल की वर्ग चेतना एव मार्क्सवादी चेतना की प्रतीक हैं। धूमिल पूजीवादी शोषक मानसिकता से एव उसके छद्म वेश दोनो से ही भलीभाति परिचित थे। धूमिल आहिस्ता–आहिस्ता परिवर्तन के पक्ष मे न थे इस तरह का परिवर्तन उन्हे सदेहजनक लगता था। उन्होने लिखा है–

''यद्यपि यह सही है कि मैं, कोई ठण्डा आदमी नही हूँ
मुझमें भी आग है– मगर वह, भभक कर बाहर नही आती
क्योकि उसके चारो तरफ चक्कर काटता हुआ
एक ''पूजीवादी'' दिमाग है, जो परिवर्तन तो चाहता है
मगर आहिस्ता–आहिस्ता।''[20]

धूमिल की कविता शोषण से ग्रस्त जनता की मुक्ति मार्ग की खोज करती हुई सामूहिक मुक्ति चेतना के साथ आगे बढती है। धूमिल वर्ग विहीन समाज को स्थापित करने की बात पर जोर देते हैं। जिस नये समाज मे प्रत्येक व्यक्ति समान रहता है। वह ऊँच–नीच के भेदभाव और शोषण से मुक्त रहता है। जो साम्यवादी समाज मे ही सभव है। धूमिल ने लिखा हैं–

''सच कहूँ मेरी निगाह मे न कोई छोटा, न कोई बडा
मेरे लिए हर आदमी एक जोडी जूता है
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खडा है।''[21]

जनवादी कविता व प्रगतिवादी कविता का वर्ण विषय एक सा ही प्रतीत होता है दोनो मे सर्वहारा शोषित जनता की पीडा का चित्रण किया गया है, एव शोषण से मुक्ति का आग्रह जनक्रान्ति के माध्यम से किया गया है। कबीर, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमचन्द्र, निराला, मुक्तिबोध और धूमिल जैसे युग कवियो ने साधारण जनता को अपने काव्य का विषय बनाकर इनके पक्ष मे रचनाये की हे। जनवादी कविता एव प्रगतिवादी कविता दोनो ही मार्क्सवादी साम्यवादी दर्शन से प्रभावित अवश्य है किन्तु इनके बीच का मौलिक अन्तर रचना दृष्टि को लेकर है। प्रगतिवादी कवि मार्क्सवादी विचारधारा के बधे बधाये 'फ्रेम' मे अपनी रचनाओ को प्रस्तुत करता है जबकि जनवादी कवि नारेबाजी, प्रचार, से दूर जनता के दु ख, दर्द, एव सामाजिक, आर्थिक विसगतियो का चित्रण अपनी कविता मे करता है। वर्ग चेतना के साथ ही साथ इनमे प्रतिक्रियावादी शोषक शक्तियो का जवाब भी देने की शक्ति है।

आजादी के बाद निश्चित रूप से जनवादी कविता ने अपने को आगे बढाया और जनवादी हितो के लिए सघर्ष किया। मुक्तिबोध की यह कविता जनवाद को व्यापकता देती है–

"जिनके स्वभाव के गगा जल ने युगो–युगो को तारा है
जिनके कारण यह हिन्दुस्तान हमारा है
कल्याण व्यथाओं मे धुलकर
जिन लाखों हाथो पैरो ने यह दुनिया पार लगाई है
जिनके ही पूत–पावन चरणो मे हुलसे मन से
न्योछावर जा सकते सौ–सौ जीवन इन जन–जन का
दुर्दान्त रूधिर मेरे भीतर–मेरे भीतर।"[22]

इसी समूहगत चेतना और जन प्रतिबद्धता के साथ धूमिल का आगमन होता है। धूमिल के आगमन से जनवादी परम्परा को गति एव दिशा मिलती है। धूमिल की कविता जनवादी हितो को नई दिशा की ओर अग्रसारित करती है। मुक्ति बोध की ललकार धूमिल की कविता मे दिखाई देती है–

"मुझमें पूरे समूह का भय चीखता है।
दिग्विजय ! दिग्विजय !!"[23]

मोची राम कविता धूमिल की जनवादी चेतना को रेखांकित करती है। इसमे उन्होने लिखा है–

"चोट जब पेशे पर पडती है,
तो कही न कही एक चोर कील
दबी रह जाती है, जो मौका पाकर उभरती है,
और अगुली मे गडती है।"[24]

धूमिल का जनवादी चिन्तन ऐसे मूलभूत समस्याओ के प्रति बयान इगित करती है जो सीधे व्यवस्था की ढॉचे से जुडी रहती है। इसलिए बेरोजगारी और गरीबी की समस्या पैदा होती है तब जनता का सत्य रोटी से जुड जाता है–

'सुनो।
आज मै तुम्हे वह सत्य बतलाता हूँ
जिसके आगे हर सच्चाई छोटी है। इस दुनिया मे
भूखे आदमी का सबसे बडा तर्क रोटी है।"[25]

प्रगतिशील आन्दोलन के अधिकांश कवियो पर मार्क्सवाद का ही बोलबाला था वे मार्क्सवाद से प्रभावित होकर अपनी रचनाओ के माध्यम से शोषण व्यवस्था पर प्रहार कर रहे थे। हिन्दी कविता में जब धूमिल पदार्पण करते है तो उनका पूरा दौर भारतीय स्तर पर ही नही विश्व के स्तर पर भी वैचारिक सघर्ष का दौर था। वह स्पष्टत. अराजकता के दौर से गुजरने वाला समय था। जिसका एक तरफ निश्चित रूप से धूमिल पर गहरा प्रभाव पडता है तो दूसरी तरफ वे मार्क्सवाद से प्रभावित होते हैं। फिर भी किसी सक्रिय सगठन से न जुडकर ईमानदार कलाकार के रूप मे श्रमिक जनता के पक्ष मे और शोषण व्यवस्था के विरोध मे कविताए लिखते हैं। यद्यपि धूमिल की भाषा एव शब्दो के गठन की अतिरंजता एव अकवितावादी अश्लीलता भी दिखाई देती हैं–

"हर लडकी तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला बन जाती है,
और कविता तीसरे पाठ के बाद।"[26]

तथा–क्रान्ति–

यहा के असंग लोगो के लिए
किसी अबोध बच्चे के हाथों की जूजी है।"[27]

फिर भी इन नकारात्मक पहलुओं को सकारते हुए यह कहने मे कोई सकोच नही होना चाहिए कि निश्चित रूप से धूमिल व्यवस्था (शोषणवादी व्यवस्था) को बुनियादी रूप में बदलना चाहते थे।

(ii) दलित चेतना :

सन् 1970 के बाद दलित चेतना को केन्द्र मे रखकर कुछ रचनाये भी हुई है। इस सदर्भ मे डॉ० मोहन अवस्थी कृत 'अभिशप्त महारथी' खण्ड काव्य' दलित चेतना को अपूर्व प्रेरणा देने वाला काव्य है। इसकी भूमिका मे स्वय अवस्थी जी ने लिखा है, कर्ण को जीवन भर व्यक्ति से नही समाज से लडना पडा। जितना सघर्ष कर्ण ने किया महाभारत मे अन्य किसी पात्र को उतना सघर्ष नही करना पडा और इस सघर्ष के मूल मे उसका सूत जाति से सम्बद्ध होना था। आधुनिक युग मे उच्च जाति से इतर जाति मे उत्पन्न महान व्यक्तित्व को कर्ण की तरह ही सामज से लडना पडा रहा है अत ऐसे नायक मे ही वह अपना प्रतिरूप खोज सकेगा।'[28]

"इस समय हमारे देश के सामने जो प्रमुख समस्याये हैं उनमे राष्ट्र की अखडता के लिए राष्ट्रीयता की भावना जागृत करना प्रथम समस्या है। इसके लिए वर्ण व्यवस्था एक अभिशाप है। प्रतिभाशाली तरूणो की विद्रोहात्म्क प्रकृति का नियन्त्रण भी कम जटिल चुनौती नही है। यह विद्रोही प्रवृत्ति क्यो उत्पन्न होती है इसका स्वरूप समझना भी आवश्यक है। तीसरी विकट समस्या शिक्षा पद्धति की असंगति है शिक्षा की विकृतिया क्या हैं और शिक्षा का आदर्श क्या होना चाहिए? मेरी समझ मे कर्ण को इन सारी समस्याओं के विरूद्ध जूझना पडा होगा। अतैव मैने उसके अन्त सघर्ष को व्याख्यायित करने मे इन सभी समस्याओं की कल्पना की है। आशा है कि यह काव्य भारतीय संस्कृति का चित्र प्रस्तुत करते हुए देश की आधुनिक समस्याओं का समाधान खोज निकालने मे सहायक सिद्ध होगा।"[29]

इस प्रकार हम देखते है कि पौराणिक पात्र द्वारा आधुनिक युग की समस्याओ को स्वर देना ही कवि की मूल दृष्टि रही है। समाज मे व्याप्त शोषण, ऊॅच–नीच, वर्गभेद आदि का बडा ही सजीव चित्रण इस खण्ड काव्य मे मिलता है। इसकी संवाद शैली तो केशव की 'राम चन्द्रिका' की याद ताजा कर देती है।

यद्यपि कि कर्ण का जन्म कुती के गर्भ से हुआ लेकिन उसका पालन पोषण सूत अधिरथ एवं उसकी पत्नी राधा ने किया। प्रथम सर्ग मे इसके जन्म से लेकर युद्धाभ्यास तक की घटना का वर्णन किया गया है। युद्धाभ्यास के

समय कर्ण का अचानक उपस्थित होना एव अर्जुन के समान वाण चलाने की क्षमता का होना–

"हाय हाय। अरे यह अचानक विपत्ति कहा से आई?
सबको दिया रग मे मानो होता भग दिखाई।"[30]

एक बार तो कृपाचार्य भी सकते मे आ गये, अर्जुन को द्वन्द्व युद्ध के लिए कर्ण द्वारा ललकारने पर कृपाचार्य ने युद्ध से पहले कर्ण का वर्ण एव जाति जाननी चाही। यह सुनते ही कर्ण –

"यह कर श्रवण विवर्ण हुआ वह वीर तनिक सकुचाया
खेद प्रकट कर स्वेद त्वचा छिद्रो से बाहर आया।"[31]

और कहता है–

"लेना जन्म हाथ मे मेरे न था, मिला जो, पाया
किन्तु हाथ मे है पौरुष जो मैंने स्वय कमाया।
उसकी परख करे जो भी वह वीर सामने आये
वर्ण जन्म का शून्य बहाना लेकर मुँह न छिपाये।"
क्या पैतृक सम्पत्ति वर्ण है, या कोई बधन है?
\+ \+ \+ \+ \+ \+ \+
यह तो केवल सबल वर्ग का अपने मन का धन है।
कर प्रयत्न कोई भी क्षत्रिय, ब्राह्मण पद पा सकता
नीच कर्म रत होने पर है शूद्र कहा जा सकता।"[32]

कृपाचार्य द्वारा मर्यादा की बात की गई –

"मर्यादा वश समकुल वालों का संगर होता है,
हीन वर्ण से रण करने में वंशमान खोता है।
परम्परा है क्षत्रिय, क्षत्रिय या नृप से लडता है
अत प्रथम परिचय होना आवश्यक आ पडता है।"[33]

चूकि कर्ण निम्न कुल मे पला था और वह राजा भी नही था इस मन स्थिति से उसे उबारने के लिए दुर्योधन ने कर्ण को तत्काल अग देश का राजा बनाया। राज्याभिषेक के बाद जब लोगो को यह पता चला कि कर्ण अधिरथ का ही सुत है तो भीम ने कर्ण को ताना मारा–

"कश लेकर रथ हॉको, तुमको शस्त्र न शोभा देते
तुम जैसो के साथ युद्ध कर वीर न अपयश लेते।"[34]

आज के वर्तमान समय मे भी इस प्रकार की जातीय अयोग्यता द्वारा योग्य व्यक्तियो को उनके योग्य स्थान से वचित होना पड रहा है। निम्न कुल से सम्बद्ध होने के कारण जो अपमान कर्ण ने झेला वह आज का दलित वर्ग भी झेल रहा है।

अर्जुन द्वारा अपमान के शब्द बाण कर्ण के हृदय को बेध रहे थे—

"अर्जुन बोले—"व्यर्थ यह कॉव—कॉव करता है?
क्या सियार को देख सामने सिह कभी डरता है।"[35]

इस प्रकार की भावनाये आज भी दृष्टिगोचर होती है। शूद्रो के लिए (चमार—सियार) शब्दो का ही प्रयोग लोग प्राय करते देखे जाते है। कर्ण के प्रति अपमान जनक शब्दो को सुन दुर्योधन को क्रोध होता है और समस्त मानव मे समानता की बात करता है—

मानव है मानव, समान रक्त अस्थिमास,
आत्म बल जिसमे है आगे बढ जायेगा।
कायरता वश आवरण मे नही छिपती है,
वचक अवश्य करनी का फल पायेगा।
झूठ ऊॅच—नीच का करेगा भेद जो समाज,
तीव्र द्रोह—ज्वाल में गिरेगा जल जायेगा
भौं—भौं करते जो करे, उच्च ही रहेगा उच्च
भौकने से कुत्तो के, न हाथी रूक पायेगा।"[36]

इस प्रकार श्री अवस्थी जी ने अपने खण्ड काव्य के माध्यम से दलित चेतना को उभारने का प्रयास किया है, एव साथ ही साथ उनमे, हमे मानवता का सदेश, समानता, व साम्यवाद का आग्रह प्रबल रूप मे हमे दिखाई देता है। 'अभिशप्त महारथी दलित चेतना से प्रेरित उत्तर भारत का प्रथम खण्ड काव्य' है। इसकी रचना 1975 की है। इसके परवर्ती कवियो पर इसका स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ मे नागार्जुन की बलछी काण्ड पर लिखी गई 'हरिजन गाथा' कविता भी हिन्दी साहित्य में अभूतपूर्व है। ऐसी कल्पना शायद ही किसी अन्य कवि ने की हो कि अपने जनको पर जो अत्याचार हो रहे थे, उसकी पीडा से उनकी सतान भ्रूण उद्वेलित होकर पेट मे दौडने लगे—

"एक अपूर्व आकुलता उनके गर्भ कुच्छियो के अदर बार—बार,
उठने लगी टीसें लगाने लगे, दौड उनके भ्रूण अदर ही अंदर।"[37]

''हरिजन गाथा' के नायक हरिजन शिशु का भाग्य उन हथियारो से नियत हो गया जिनसे उनके पिता को मारा गया था–

''देख रहा था नव जातक के दाये कर की नरम हथेली
सोच रहा था, इस गरीब ने सूक्ष्म रूप से विपदा झेली।
आडी तिरछी रेखाओ हथियारो के ही निशान है
खुखरी है, बम है, असि भी है गडासा भाला प्रधान है।''[38]

समाज मे व्याप्त अन्याय एव शोषण का समूचा नाश एक दिन अवश्य होगा, क्रान्ति की भावना का चित्रण डॉ० मोहन अवस्थी जी की निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है–

''जिस समाज मे धन पर निर्भर न्याय, प्रताप प्रतिष्ठा,
लोग अपात्रो की प्रति ही दिखलाते सेवा निष्ठा
उस समाज मे खोटे सिक्के धूम धाम से चलते,
स्वाभिमान पीसा जाता है, दुष्ट फूलते–फलते।
जिस समाज मे पक्षपात, अन्याय, अनीति खराबी,
वह सड चुका समूचा उसका नाश अवश्य संभावी।''[39]

इस प्रकार जिस दलित चेतना के बीज हम अवस्थी जी के 'अभिशप्त महारथी' खण्ड काव्य मे पाते हैं उसका विकास नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' कविता के रूप मे दिखाई देता है। इस प्रकार नागार्जुन जन कवि है। वह प्रगतिशील भी है जनवादी कवि भी, नव जनवादी कवि भी और राष्ट्रीय कवि भी। वह किसी राजनीतिक दल की प्रशसा कर सकते हैं तो किसी की आलोचना भी–

''आये दिन बहार के खिले हैं दांत ज्यो दाने अनार के
दिल्ली से लौटे है अभी टिकट मार के।''

यहॉ खिले है दॉत, नेता के मुखमण्डल का वीभत्स शोषक रूप दर्शाता है। 'अभिशप्त महारथी' एव 'हरिजन गाथा' मार्क्सवाद के नारे या प्रचार स्वरूप लक्षित करके नही लिखी गई है फिर भी मार्क्सवादी साम्यवादी आदर्श की प्रति ध्वनि इसमे स्पष्ट सुनाई देती है।

आठवे दशक की जनवादी कविता का स्वर उतना आक्रामक नही रहा जितना कि इसके पूर्व था। इसमे उत्तेजना, खीझ, बडबोलापन कम है। यह कविता केवल इशारा करती है–

> "आप विश्वास करे मै कविता नही कर रहा
> सिर्फ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ
> वह पक रही है और आप देखेगे–यह भूख के बारे मे
> आग का बयान है जो दीवारों पर लिखा जा रहा है।"[40]

आठवे दशक की कविता मामूली आदमी और आदमी के बुनियादी प्रश्नो को अपना विषय बनाती है पर एक गहरे काव्यानुशासन के साथ वह अधिक बोलती नही गभीर अर्थ सकेत देती है। आठवे दशक की कविता मे जहा एक ओर रोटी, भूख, चूल्हा पतीली है वही दूसरी ओर चिडिया फूल पत्ती भी एक ओर आग है तो दूसरी ओर आग भी।

नयी कविता के बाद की साठोत्तर कविता के बारे मे हम पाते है कि सन् साठ के बाद के अधिकाश कवि बामपथी विचारधारा (मार्क्सवादी विचारधारा) के कवि है। यद्यपि की मार्क्सवादी एव गैर मार्क्सवादी दोनो ही विचारो से प्रभावित कविताए इस काल मे मिलती है, लेकिन चाहे मार्क्सवादी हो या गैर–मार्क्सवादी उनकी कविता मे एक गहरी सामाजिक चेतना प्राप्त होती है। उनकी कविता मामूली आदमी के सघर्षों को चित्रित करने वाली पक्षधर कविता है।

नवे दशक के मुख्य कवियो मे राजेश जोशी, अरूण कमल, मगलेश डबराल और असद जैदी। इन कवियो मे जोशी और अरूण कमल प्रतिबद्ध कवि है। निसदेह ये कवि अच्छी रचनाये कर हरे हैं, किन्तु विषयान्तर होने के कारण हम यहा उनका उल्लेख नही कर पा रहे हैं। इस दशक के कुछ कवि जो कि जनवादी। नव जनवादी परम्परा के हैं उनकी रचनाओ मे मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है, स्वर्गीय मान बहादुर सिह की निम्न पंक्तियो मे सर्वहारा वर्ग का प्रतीक रिक्शे वाले की व्यथा का सतही वर्णन है–

> "धीरे–धीरे गहरा गई है रात डाट पुल के नीचे
> रिक्शे पर सो गया रिक्शेवान टाग सिकोड
> सिवा सपनों के बन्द हो गया है हर किसी का आना जाना।"[41]

इसी प्रकार इनकी "सुर्ती" कविता मे भी वर्ग चेतना की भावना अभिव्यक्त पा रही है–

"सुर्ती अपनी सच्ची साथी
सस्ती साथी
+ + + +
जहॉ सफेद अभिजन हो,
बडी महीन बात करते हो
इसको मलकर उनके आगे जब करता हूॅ
मुॅह बिचकाते
मै बस हॅसता
उनसे कहता–
छोटा होना बडी बात है
बडा तो कोई भी हो सकता
जिसमें थोडा छल फरेब है,
वह अपना इमान बेचकर कुछ पा सकता है।
जब शराब के दौर चल रहे
या सिगरेट फका फक उडते
अंग्रेजी में शेखी भरते
तब यह सुर्ती अवधी, भोज पुरी में उडकर
उनकी सांसो के सग घुसकर
उनके अहकार के ठसकों को,
आदिम छीको से भरती।"[42]

सोवियत रूस मे साम्यवादी शासन के समाप्ति के अनिवार्य परिणाम स्वरूप मार्क्सवादी विचारधारा का सकट ग्रस्त होना तथा कम्युनिस्ट पार्टियो के विघटन ने पूजीवादी अमेरिकी शोषण को बढावा दिया है। विश्व व्यापार सगठन के मसौदे पर हस्ताक्षर से भारत भी उसकी गिरफ्त से बच नही पायेगा कुछ ऐसी ही भावना भारत यायावार की निम्न पंक्तियो मे व्यक्त हुई हैं–

"हजारो मील से बढा आ रहा है एक अदृश्य पजा
उसने पहले लातीनी देशों को दबोचा
खाडी देशों को अपनी गिरफ्त मे ले चुका है
अब हम तक भी पहॅुचना ही चाहता है

उसका है एक विशाल उदर
और असख्य लम्बे अदृश्य हाथ
वह दबोचता है दुनिया के कमजोरो को
और उदरस्थ कर लेता है
वह कबन्ध का आधुनिक अवतार – – – –
क्या तुमने कभी सोचा है
जब छीन ली जायेगी तुम्हारे निवाले की रोटी
और गली के कुत्तो की तरह
रह जायेगी तुम्हारी स्वाधीनता
कभी तुमने सोचा है?[43]

पूजीवादी अर्थ प्रधान युग मे मानवीय सवेदनाये मरती जा रही है, इसी का चित्रण निम्न पंक्तियो देखा जा सकता है–

''आदमी की भीड मे तनहा खडा है आदमी
प्यार का घर खोजता ये फिर रहा है आदमी।
एक चेहरे पर कई चेहरे लगाते लोग जब
आज रहबर दोस्त भी रहजन हुआ है आदमी।
देश क्या है, धर्म क्या, भाषा न भाई है कही
चद सिक्को के लिए जब बिक रहा है आदमी।''[44]

मानवीय मूल्यों के ह्रास का जो चित्रण उपर्युक्त पक्तियो मे किया गया हैं उसका कारण पूजीवादी व्यवस्था ही है। इसी पूजी वादी व्यवस्था की धज्जिया निम्न पक्तियो मे उडती नजर आती है–

''अरमानो की लटकती लाश आपका एहसान है,
रोटी नही कुछ नही, यही धर्म ईमान है
मरने–से जिन्दा है आपका एहसान है।[45]

पूजीवादी शोषण का शिकार आम आदमी मुर्दे के समान ही अपने अस्तित्व को ढो रहा है। और ये शोषक वर्ग अपने ऐश एवं आराम मे मस्त हैं। इसी पर यह पंक्ति तीखा व्यग करती है।

पूजीवादी शोषण को व्यजित करने वाली डॉ० मोहन अवस्थी के अनुगीत की निम्न पक्तिया दृष्टव्य है।

"भोग सग्रह स्वर निनादि उच्च वैभव सोध मे
वासना नाचे विषम, शोषण न हो सभव नही।"[46]

तथा कथित एव पूजीवादी होड ने देश को खोखला कर दिया है, एक प्रवासी की स्वदेश वापसी कविता मे कवि इस शोषण व शोषको के विरूद्ध क्रान्ति व विद्रोह का आवाहन करता है—

"पालम हवाई अड्डे पर जब उतरा मेरा विमान
वर्षों बाद पाया अपना बिछुडा हिन्दुस्तान
राष्ट्र की दुर्दशा देख हो गया मन खिन्न
अग्रेज तो गये पर राष्ट्र हो भिन्न
धर्मराजो के बदले दुर्योधनो का बोलबाला है।
अपनी—अपनी छोड औरो की कौन सुनने वाला है।
सदाचार के द्वार पर मरघट सी नीरवता है
हे आकुल मन जागो,
और ऐसी नीरवता का अन्तः स्थल चीर दो
परिवर्तन का शंखनाद करो
जीवन में नव जागरण का मन्त्र भरो।"[47]

इस प्रकार हम देखते है कि छायावाद के बाद प्रवाहित होने वाली प्रगतिशील चेतना, व मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित रचनायें आज भी हो रही हैं, भले ही उनका स्वरूप कुछ बदल गया है लेकिन उनके मूल मे वही शोषक और सर्वहारा वर्ग ही है। जब तक यह असमानता समाज में व्याप्त रहेगी तब तक इसकी अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप मे कवि द्वारा होती रहेगी।

(ङ) नवगीत :

नयी कविता के बाद मार्क्सवादी विचारधारा से अलग छाठोत्तरी हिन्दी कविता मे एक धारा प्रवाहित हुई। इसके मूल मे नयी कविता की गद्यात्मकता को त्याग कर कविता में विचार के साथ—साथ गेयात्मकता भी होना था। नयी कविता की तरह ही गीतकारो ने अपनी पहचान बनाने के लिए आन्दोलन चलाया। नवगीत एक यौगिक शब्द है जिसमे नव (नयी कविता) और गीत (गीत विधा) का समावेश है। "नवगीत ने नयी कविता से प्रेरणा ली थी लेकिन बाद मे अपनी पहचान प्रथक स्थापित करने के लिए वह नयी कविता द्वारा ग्रहीत प्रचार ढंग का अनुकरण भी करने लगी 'सप्तको के पैटर्न पर सन् 1982 मे शभूनाथ

सिह द्वारा सम्पादित 10 कवियो (नईम, सोमठाकुर, देवेन्द्र ठाकुर, भगवान स्वरूप, उमाकान्त मालवीय, शिव सिह भदौरिया, रामचन्द्र, चन्द्र भूषण, ठाकुर प्रसाद सिह, शभूनाथ सिह) का सकलन 'नवगीत दशक'–1 नाम से सामने आया। नवगीत दशक–2 तथा नवगीत दशक तीन क्रमश 1983 और 1984 मे प्रकाशित हुए। इनके कवि है कुमार शिव, अनूप अवशेष, रामसेगर, ओम प्रभावकर, उमाशकर तिवारी, गुलाब सिह, श्रीकृष्ण तिवारी, अमरनाथ श्रीवास्तव, एव अखिलेश कुमार सिह, राजेन्द्र गौतम, डॉ० सुरेश, योगेन्द्र दत्त शर्मा, जहीर कुरैशी, दिनेश सिह, विनोद निगम, ब्रज किशोर, सुधाशु उपाध्याय, बुद्धिनाथ मिश्र।''[48]

नवगीत का काव्य नयी कविता की आरोपित आधुनिकता से ग्रस्त नही होने पाया है यहा भोगा यथार्थ है लेकिन है भारतीय–

> ''खाली जेबे जो ढीले दो हाथ लिए
> शोर के कुहासे में किस क्षण के साथ जिए।''[49]

शभूनाथ सिह की काव्य यात्रा काफी लम्बी है छायावादी संस्कारो से चलकर ये नये सस्कारो को समेटे हुए पुन नवगीतो की सीमा तक जा पहुचते है। वे मूलत. गीतकार हैं। उनके प्रारम्भिक गीत संग्रहो रूप रश्मि, छायालोक, मे रूमानी रूपासक्ति और तरल प्रणयोद्गार है। 'उदयाचल' मे वे उपरले स्तर की प्रगति शील चेतना से अक्रान्त है। शभूनाथ सिंह की भाषा मे अद्‌भुत लोच एव मादलय, लोक धुन, आचलिक शब्दावली विरोधाभास एक दूसरे में रच पच कर उनके गीतो को सश्लिष्ट बना देते है–

> ''किसकी यह छॉह और किसके यह गीत रे?
> बरगद की छांह और चैता के गीत रे।
> सिहर रहा जिया तुम कहॉ?
> टेर रही प्रिया तुम कहॉ?
> किसके ये कांटे है, किसके ये पात रे?
> बेरी के कॉटे है केले के पात रे।
> बिहर रहा हिया, तुम कहॉ?
> टेर रही प्रिया तुम कहॉ?[50]

इस प्रकार हम देखते है कि नवगीत मे गेयात्मकता है, आचलिकता है, लेकिन दार्शनिकता नही है। इनमे किसी भी प्रकार की दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव नही देखा जा सकता है।

(च) अनुगीत :

नयी कविता के बाद के काल मे कुछ ऐसी रचनायें भी हुई है जो किसी एक दार्शनिक विचारधारा से आबद्ध न होते हुए भी अपने आप मे व्यापक जीवन दर्शन लिए हुए है। इनमे कही नैतिक मीमासा दर्शन है तो कही अद्वैत वेदान्त। कही पर प्रगतिशील चेतना तो कही वैयक्तिकता के साथ–साथ सार्व भौमिकता का आग्रह भी है। 'कविता लय भाव बिम्बित मनोरम वाणी है।'[51] यदि भाव एव बिम्बो के साथ मनोरमता भी हो तो उस पद्य को कविता कहते है। कविता शब्द साधना की चरमावस्था है। जिस प्रकार योग की अन्तिम स्थिति प्राप्ति हो जाने पर पुरूष कर्म न करता हुआ भी कर्म करता है एव करने पर भी नही करता, उसी प्रकार शब्द साधना की पराकाष्ठा पर स्थित कवि लिखने पर भी कुछ नही लिखता और न लिखने पर भी सब कुछ लिखता है।

अनुगीत के प्रणेता डॉ० मोहन अवस्थी के अनुगीतो में शब्द साधना की इस उदात्त भावना के दर्शन किए जा सकते है। अनुगीत, अनु+गीत शब्दो से बना है अनु का अर्थ जो देखा, परखा एव अनुभूत किया गया हो और गीत से गेयात्मकता का तात्पर्य व्यंजित होता है। इस प्रकार अनुगीत मे भाषा की सुसवेद्यता, भावो की गंभीरता और विचारों की प्रौढता के साथ लय का आकर्षण अनुगीत की विशेषताये है।

अनुगीतो की रचना का उद्देश्य किसी दर्शन या विचारधारा का प्रतिपादन या लक्ष्य नही रहा है, बल्कि ये विचार स्वत ही इसमे प्रस्फुटित व व्यजित हो जाते है। निराला की भाति श्री अवस्थी जी ने शब्दो की मणियो को पिरोकर अनुगीत की माला तैयार की है जिसका–

"हर शब्द व्यग्र धडकन, हर अर्थ इशारा है।"[52]

जहा तक दर्शन और विचारधारा का प्रश्न है उनके प्रत्येक अनुगीत मे कुछ न कुछ दार्शनिक या वैचारिक भाव व्यंजित अवश्य होता है–

"कौन गिनता है किसे लाख अकडते रहिए
हम कि तुम, तुम नही हम, खूब झगडते रहिए।
मोरचा लग न सके और चमक बढ जाए
दृष्टि सौन्दर्य के चरणो पर रगडते रहिए।"[53]

इस पक्ति से अद्वैत वेदान्त दर्शन का भाव व्यजित हो रहा है। व्यक्ति को सासारिक माया, मोह हम तुम के झगडो से परे हटकर उस परम तत्व सत्य शिवम् सुन्दरम् मे अपना ध्यान रमाना चाहिए।

इसी प्रकार की भावनाओ का दर्शन एक अन्य पक्ति मे भी देखे—

"सर बहुत मारा जगत का रूप खुल पाया नही
फस गया कुछ जीभ मे, कुछ आख मे कुछ कान मे
कीजिए क्या और उनको व्यर्थ क्या समझाइए
हाथ से यदि थक गये तो रम गये व्याख्यान मे।"[54]

ब्रह्माण्ड के वास्तविक स्वरूप का बोध सामान्य बुद्धि, अनुभव व वाणी से परे है। यहां पर वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

अपने ज्ञातता का ज्ञान तो सभी को होता है लेकिन अपने अज्ञान का ज्ञान विरलो को ही होता है।

"क्या करें इस जिन्दगी मे दूसरी संभव नही
ज्ञान मुश्किल से हुआ इतना, कि है अज्ञान मे।"[55]

यहां पर सुकरात की विचारधारा—

"I know the only thing that I know nothing"

'सुकरात' से उपर्युक्त पक्तियो की साम्यता देखी जा सकती है।

माया और भ्रम में व्यक्ति सारा जीवन बिता देता हैं—

केचुली समझे कि मैं हूँ साप को साधे हुए
यो बिता दी उम्र हमने पूर्ण इत्मिनान मे।"[56]

यहा पर भी वेदान्त दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है। श्री अवस्थी जी की प्रगति शील चेतना निम्नलिखित अनुगीत मे अपने ही ढंग से व्यजित हो रही है—

"भस्म है कुछ अंग तो कुछ अधजले हैं

हम जहा जिस हाल मे अच्छे भले है
भूख की ज्वाला जलन भी रोशनी भी
क्या समझ सकते कि टुकडो पर पले है।''[57]

उन्हे कभी भी उस भूख और गरीबी का आभास नही हो सकता जो स्वय इन गरीबो के श्रम व शोषण से अपना पेट पाल रहे हो। इसमे मार्क्सवादी विचार प्रतिध्वनित हो रही है।

अद्वैत वेदान्त दर्शन मे परम तत्व ब्रम्ह, सच्चिदानन्द सत्यम् शिवम् सुन्दरम, सभी के अन्दर व्याप्त है, किन्तु उसे किसी ने देखा और छुआ नही है, पर उसे महसूस सभी करते हैं–

''प्रणाम सौन्दर्य तुझे हमारे कि तू सदा है हुआ नही है
रचा बसा तो हरेक मे, पर कभी किसी ने छुआ नही है।''[58]

अद्वैत वेदान्त का प्रभाव यहा स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। सृष्टि का सब विधान नियत है इसी नियतवाद का प्रभाव निम्न पंक्तियो मे देखा जा सकता है–

''अगर रवि न छिपता, अंधेरा न आता,
न चन्दा चमकता न तारे निकलते
न यदि नाचती भूमि, थोडी न झुकती
न दिन रात होते न मौसम बदलते
हुआ न गत न अपना, अनागत न वश में
न तो रोक सकते कि जो हो रहा है
मगर हर जगह सर खपाये पडे हैं
किसी पर उबलते, कही पर पिघलते
न यदि नाचती भूमि, थोडी न झुकती
न दिन रात होते न मौसम बदलते।''[59]

हथौडा, हसिया मार्क्सवाद का प्रतीक है। इन प्रतीको का प्रयोग निम्न पक्तियो मे देखा जा सकता है।

''हथौडा, कि हंसिया किताबो के बडल
लिए योजनायें कि झण्डे उठाये खुला रास्ता,
चल रहे सब रहेगा
अगर याद वह कि जो मजिल मिलाए।''[60]

उपर्युक्त पक्तियो मे मार्क्सवादी नारे, और ढिढोरे को त्याग एक ऐसे रास्ते की बात की गई है जो की मानवता के मजिल तक जाता है। समानता के पक्षधरता इसमे है लेकिन नारेबाजी नही।

इस प्रकार हमे अनुगीतो मे व्यापक दार्शनिकता का पुट मिलता है। यह श्री मोहन अवस्थी जी के व्यापक जीवन दृष्टि का प्रभाव है। सही अर्थों मे अनुगीत मन्त्र कविता है, जो अपने छोटे से कलेवर मे गभीर भावों एव विचारो को समेटे हुए है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 निर्भय मलिक हिन्दी सा0 का अद्यतन इतिहास डॉ० मोहन अवस्थी पृ० 316 से उद्धृत।

2 डॉ० मोहन अवस्थी– हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास पृ० 316 से उद्धृत।

3 जगदीश चतुर्वेदी वही, पृ० 317।

4 बच्चन सिह आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 297।

5 कैलाश वाजपेयी सक्रान्त बच्चन सिह आ0हि0 सा0 का इतिहास, पृ० 297 से उद्धृत।

6 वही, पृ० 297

7 डॉ० मोहन अवस्थी, हिन्दी सा0 का अद्यतन इतिहास, पृ० 317 से उद्धृत।

8 वही, पृ० 317

9 विश्वनाथ प्रसाद, त्रिपाठी साठोत्तर हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य पृ० 2 से उद्धृत।

10 वही, रघुवीर सहाय पृ० 3 से उद्धृत।

11 आत्म हत्या के विरूद्ध रघुवीर सहाय, पृ० 86।

12 ससद से सडक तक, धूमिल, पृ० 10।

13 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना साठोत्तर हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य, पृ० 5 से उद्धृत।

14 ससद से सडक तक धूमिल, पृ० 123।

15 वही, पृ० 101

16 साठोत्तर हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, पृ० 5 से उद्धृत।

17 सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र धूमिल– पृ० 34।

18 धूमिल कल सुनना मुझसे, पृ० 33।

19 धूमिल ससद से सडक तक, पृ० 110।

20 वही, पृ० 115।

21 वही, पृ० 36।

22 मुक्तिबोध रचनावली भाग–5, पृ० 76।

23 धूमिल कल सुनना मुझे, पृ० 10।

24 धूमिल ससद से सडक तक, पृ० 38–39।

25 वही, पृ० 113।

26 वही, पृ० 7।

27 वही, पृ० 17।

28 डॉ० मोहन अवस्थी अभिशप्त महारथी की भूमिका से उद्धृत।

29 वही, ।

30 वही, पृ० 28।

31 वही, पृ० 28।

32 वही, पृ० 29।

33 वही, पृ० 29।

34 वही, पृ० 30।

35 वही, पृ० 33।

36 वही, पृ० 35।

37 नागार्जुन हरिजन गाथा, आजकल पत्रिका जून 1996 के पृ0 8 से उद्धृत।

38 वही पृ० 8।

39 डॉ० मोहन अवस्थी- अभिशप्त महारथी, पृ० 40–41।

40 केदार नाथ सिह 'साठोत्तर हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य–विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, पृ० 9 से उद्धृत।

41 मान बहादुर सिह आवाजो का उजाला, वर्तमान साहित्य कविता विशेषाक/ (अप्रैल, मई सयुक्ताक) 1992 पृ० 79–80 से उद्धृत।

42 मान बहादुर सिह, की 'सुर्ती शीर्षक कविता' वर्तमान साहित्य कविता विशेषाक/ (अप्रैल, मई सयुक्ताक) 1992 पृ० 81–82–83।

43 वही, भरत यायावर 'कबन्ध'' पृ० 217–18।

44 राधेश्याम बधु 'आदमी की भीड मे' कादम्बनी जनवरी, 1997 अक पृ० 59 से उद्धृत।

45 केदार नाथ कोमल गीतिका, कादम्बनी वर्ष अस्त, 1997 अक पृ० 173।

46 नवनीत, फरवरी 1996 (मोहन अवस्थी अनुगीत) पृ० 44।

47 बद्री प्रसाद गुप्त एक प्रवासी की स्वदेश वापसी नवनीत मासिक पत्रिका जून–1999 पृ० 49।

48 डॉ० मोहन अवस्थी हि0सा0 का अद्यतन इतिहास, पृ० 329 से उद्धृत।

49 नईम, (हि0सा0 का अद्यतन इतिहास मोहन अवस्थी, पृ० 328 से उद्धृत)।

50 शभूनाथ सिह, वही, पृ० 328 से उद्धृत।

51 डॉ० मोहन अवस्थी हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, पृ० 329।

52 डॉ० मोहन अवस्थी हलचल के पख, पृ० 1।

53 वही, पृ० 46।

54 वही, पृ० 50।

55 वही, पृ० 50।

56 वही, पृ० 50।

57 डॉ० मोहन अवस्थी 'नवनीत' हिन्दी पत्रिका अगस्त 1996, पृ० 96।

58 डॉ० मोहन अवस्थी 'कादम्बनी' हिन्दी पत्रिका अगस्त 1997, पृ० 15।

59 डॉ० मोहन अवस्थी 'नवनीत' नवम्बर, 1999, पृ० 60।

60 डॉ० मोहन अवस्थी कादम्बिनी मार्च 2001, पृ० 54।

सहायक ग्रन्थ सूची

1 हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, डॉ० मोहन अवस्थी, सरस्वती प्रेस–इलाहाबाद 1994।

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ० नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिग हाउस, 1995

3 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास रामस्वरूप चतुर्वेदी लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998

4 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास बच्चन सिह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 1997

5 हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास राज नाथ वर्मा विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 1968

6 हिन्दी साहित्य, युग और प्रवृत्तियॉ, डॉ० शिव कुमार शर्मा अशोक प्रकाशन दिल्ली, 1980

7 हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिध कवि डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1993

8 हिन्दी साहित्य का इतिहास, लक्ष्मी सागर वार्षणेय, प्रकाशक।

9 हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास विश्वनाथ त्रिपाठी, एन०सी०ई०आर०टी० प्रकाशन 1993

10 मार्क्सवाद लेनिनवाद क्या है? व बुजुयेव, व गोरादनोव प्रगति प्रकाशन मास्को, हिन्दी 1988।

11 कम्युनिज्म क्या है? ह० सबीरोव प्रगति प्रकाशन मास्को, हिन्दी 1988

12 पाश्चात्य दर्शन का इतिहास भाग–1 सम्पादक प्रो० दयाकृष्ण राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1993

13 पाश्चात्य दर्शन का इतिहास खण्ड दो सम्पादक प्रो० दयाकृष्ण राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1990।

14 पाश्चात्य दर्शन का उद्भव और विकास डॉ० हरिशकर उपाध्याय दर्शन अनुशीलन केन्द्र इलाहाबाद 1999।

15 समकालीन पाश्चात्य दर्शन बसन्त कुमार लाल, मोतीलाल बनारसी दास, 1990

16 समाकालीन दर्शन का वैज्ञानिक इतिहास जगदीश सहाय श्रीवास्तव अभिव्यक्ति प्रकाशन 1996

17 सामाजिक विचारधारा – रवीन्द्र नाथ मुखर्जी विवेक प्रकाशन दिल्ली 1999।

18 समाज दर्शन एक विमर्श डॉ० दुर्गादत्त पाण्डेय इण्डिया बुक ऐजेन्सी इलाहाबाद, 2000

19 समाज दर्शन शिवभानु सिह शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1999।

20 धर्म दर्शन की रूप रेखा डॉ० लक्ष्मी निधि शर्मा अभिव्यक्ति प्रकाशन इलाहाबाद, 1997

21 उपनिषद् – चक्रवर्ती राज गोपालचार्य (अनुवादक सीताचरण दीक्षित) सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन – 1995।

22 भारतीय दर्शन आलोचना और अनुशीलन – चन्द्रधर शर्मा मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली 1995।

23 आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉ नामवर सिह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1998।

24 राग विराग निराला लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद 1997।

25 सुमित्रानन्दन पत कृष्ण दत्त पालीवाल साहित्य अकादेयी 1990।

26 निराला की दो लम्बी कविताऍ डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद 1997।

27 आधुनिक काव्य कला और दर्शन डॉ० राम मूर्ति त्रिपाठी साहित्यभवन – इलाहाबाद 1973।

28 छायावाद काव्य तथा दर्शन – डॉ० हर नरायाण सिह ग्रथ कानपुर 1964।

29 पत काव्य कला और दर्शन गोपाल दास नीरज और सुधा सक्सेना– आत्मा राम एण्ड सस 1963।

30 प्रगतिवादी कविता श्री उमेश चन्द्र मिश्र ग्रथम कानपुर, 1966।

31 स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी और गुजराती नयी कविता (शोध प्रबन्ध) डॉ० मजू सिन्हा। नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली, 1998।

32 कवियो का कवि शमशेर डॉ० रजना अरगडे वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 1998।

33 मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन इतिहास तथा सिद्धान्त, डॉ० शिवकुमार मिश्र मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 1973।

34 प्रयोगवाद और नई कविता शभूनाथ सिह समकालीन प्रकाशक 1966।

35 मुक्तिबोध की कविताई (आलोचना) अशोक चक्रधर राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1998।

36 चॉद का मुँह टेढा है और अधेरे मे सम्पादक अशोक चक्रधर सनीता प्रकाशन दिल्ली 1998।

37 प्रयोगवाद नरेन्द्र देव वर्मा अनुसधान प्रकाशन कानपुर 1964।

38 प्रयोगवाद और अज्ञेय शैल सिन्हा।

39 प्रयोगवाद और मुक्तिबोध नरेन्द्र शर्मा सजय बुक सेटर वारणसी 1964।

40 प्रयोगवादी काव्य धारा रमाशकर तिवारी चौखम्बा विद्याभवन, वारणसी 1964।

41 अस्तित्व वाद और नयी कविता डॉ० राम विलाश शर्मा राजकमल नई दिल्ली, 1978।

42 क्रान्ति दर्शी कवि धूमिल डॉ० वी० कृष्ण प्रकाशक – अशोक भारती हाथरस 1994।

43 धूमिल और उनका काव्य सघर्ष डॉ० मालती तिवारी प्रतिमा प्रकाशन इलाहाबाद, 1966।

44 समकालीन कविता, डॉ० मालती तिवारी प्रतिमा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966।

45 साठोत्तर हिन्दी साहित्य का परिप्रेक्ष्य – विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, पुणे, 1988।

46 अभिशप्त महारथी डॉ० मोहन अवस्थी . साहित्य पीठ इलाहाबाद 1991।

47 हलचल के पंख (अनुगीत स०) डॉ० मोहन अवस्थी अनुगतो का सकलन 1995।

48 हलचल के पख (अनुगीतो का सकलन) 1995 प्रकाश नीरजा अवस्थी वितरक– सतोष प्रिटर्स जवाहर लाल नेहरू रोड इलाहाबाद।

49 नयी कविताओ मे प्रेम सम्बन्ध डॉ० सुषमा भटनागर प्रेम प्रकाशन मन्दिर, 1989।

50 हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य रामकमल राय लोकभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद 1991।

51 आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद डॉ० शिव प्रसाद सिह नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली 1988।

52 नयी कविता की भूमिका डॉ० प्रेमशकर नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली 1998।

53 प्रथम तार सप्तक भाग 1, 2, 3, 4, – सम्पादक – अज्ञेय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

54 पत्र पत्रिकाएँ

55 वर्तमान साहित्य सम्पादक विभूति नरायण राय नोयडा,

56 आजकल प्रकाशन विभाग पाठशाला हाउस नई दिल्ली।

57 नवनीत बम्बई।

58 कादम्बिनी दिल्ली ।